साभार : सुनील जाना

कलकत्ता, 1947 :
दंगा प्रभावित क्षेत्रों में शांति स्थापित करने के लिए हिंदू और मुस्लिम समुदाय के लोग, भारत और पाकिस्तान का झंडा फहराते हुए। शहर में गश्त कर रहे ट्रकों पर चढ़े इन लोगों का यह चित्र विभाजन की खुशी और त्रासदी, दोनों को एक साथ बयान करता है।

इस अध्याय में...

आज़ाद हिंदुस्तान के शुरुआती कुछ साल चुनौतियों से भरे थे। सबसे बड़ी चुनौती राष्ट्रीय एकता और अखंडता की थी। आज़ाद हिंदुस्तान राजनीति के इतिहास की इस चर्चा की शुरुआत हम इन्हीं चुनौतियों के जिक्र से करेंगे। इस अध्याय में हम देखेंगे कि कैसे 1947 के बाद के पहले दशक में राष्ट्र-निर्माण की चुनौती से सफलतापूर्वक निपटा गया:

- आज़ादी मिली लेकिन देश का बँटवारा भी हुआ। बँटवारे के कारण बड़े पैमाने पर हिंसा हुई; लोग विस्थापित हुए। इस घटना से धर्मनिरपेक्ष भारत की धारणा पर ही आँच आने लगी थी।
- देसी रियासतों को भारत संघ में शामिल करने का मसला तुरंत हल करना ज़रूरी था।
- देश के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों की भाषाएँ अलग-अलग थीं। लोगों की आकांक्षाओं का खयाल रखते हुए देश की अंदरूनी सीमा-रेखाएँ फिर से तय करनी थीं।

अगले दो अध्यायों में हम दूसरी चुनौतियों की भी चर्चा करेंगे। शुरुआती दौर में देश को इन चुनौतियों से निपटना पड़ा था।

Reprint 2025-26

अध्याय 1

राष्ट्र-निर्माण की चुनौतियाँ

12122CH01

नए राष्ट्र-राज्य की चुनौतियाँ

सन् 1947 के 14-15 अगस्त की मध्यरात्रि को हिंदुस्तान आज़ाद हुआ। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इस रात संविधान सभा के एक विशेष सत्र को संबोधित किया था। उनका यह प्रसिद्ध भाषण 'भाग्यवधू से चिर-प्रतीक्षित भेंट' या 'ट्रिस्ट विद् डेस्टिनी' के नाम से जाना गया।

हिंदुस्तान की जनता इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रही थी। आपने इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में पढ़ा है कि हमारी आज़ादी की लड़ाई में कई आवाज़ें बुलंद थीं। बहरहाल, दो बातों पर सबकी सहमति थी—पहली बात यह कि आज़ादी के बाद देश का शासन लोकतांत्रिक सरकार के जरिए चलाया जाएगा और दूसरी यह कि सरकार सबके भले के लिए काम करेगी। इस शासन में गरीबों और कमज़ोरों का खास खयाल रखा जाएगा। देश अब आज़ाद हो चुका था और आज़ादी से जुड़े इन सपनों को साकार करने का वक्त आ गया था।

यह कोई आसान काम नहीं था। राष्ट्र-राज्य के रूप में, आजाद हिंदुस्तान का जन्म कठिन परिस्थितियों में हुआ। हिंदुस्तान सन् 1947 में जिन हालात के बीच आज़ाद हुआ, शायद उस वक्त तक कोई भी मुल्क वैसे हालात में आज़ाद नहीं हुआ था। आज़ादी मिली लेकिन देश के बँटवारे के साथ। सन् 1947 का साल अभूतपूर्व हिंसा और विस्थापन की त्रासदी का साल था। आज़ाद हिंदुस्तान को इन्हीं परिस्थितियों में अपने बहुविध लक्ष्यों को हासिल करने की यात्रा शुरू करनी पड़ी। आज़ादी के उन उथल-पुथल भरे दिनों में हमारे नेताओं का ध्यान इस बात से नहीं भटका कि यह नया राष्ट्र चुनौतियों की चपेट में है।

साभार : पी.आई.बी.

15 अगस्त, 1947 : लाल किले की प्राचीर से भाषण देते प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू

© NCERT not to be republished

KAY

The Hindustan Times

LARGEST CIRCULATION IN NORTHERN, NORTH-WESTERN AND CENTRAL INDIA

Regd. No. L. 1732.

VOL. XXIV. NO. 198 — NEW DELHI: SATURDAY, JULY 19, 1947. — PRICE TWO ANNAS.

END OF 200-YEAR-OLD BRITISH RULE IN INDIA

ROYAL ASSENT TO INDEPENDENCE BILL

BRIEF BUT COLOURFUL CEREMONY IN LORDS

Two Dominions Created

LONDON, July 18.—Precisely at 10-40 a.m. G.M.T. today (4-10 p.m. I.S.T.) the great new Dominions of India and Pakistan were born and the 400,000,000 people of India came into their inheritance of full political freedom, when in the House of Lords, a Royal Commission of Peers with ceremony and ritual dating back to William the Conqueror's time, announced the Royal Assent to the Indian Independence Bill.

The ceremony which transferred Britain's 200-year-old responsibility for India to the people of that country took barely 15 minutes. The Royal Commission, indeed, within the brief space of time, passed 18 Bills of which the Indian Independence Bill, sandwiched between a penicillin measure and the National Service Act authorizing peace-time compulsion came ...

KING GEORGE VI

ATTLEE

Provisional Govt. For Burma

ANNOUNCEMENT LIKELY NEXT WEEK

FREE INDIA FLAG

MESSAGE FROM PREMIER

Return Of Bollaert To Viet-Nam Welcomed

CONSTITUENT ASSEMBLY

UNION'S RELATIONSHIP WITH RULERS

PROVISION FOR PROVINCES' JURISDICTION IN STATES

(By Our Special Representative)

NEW DELHI, Friday.—An important clause providing for a province exercising jurisdiction in the legislative, executive or judicial sphere in the territory of an Indian State under an agreement approved by the Federal Government was adopted by the Constituent Assembly today on the recommendation of a representative sub-committee.

The sub-committee consists of Sir B. L. Mitter (Chairman), Sir Alladi Krishnaswami Ayyar, Mr Ismail Chundrigar, Sir A. Ramaswami Mudaliar, Dr B. R. Ambedkar and Mr K. M. Munshi.

Sir Shafaat Ahmed Khan Dead

SIMLA, July 18.—The death occurred in Simla today of Sir Shafaat Ahmed Khan, ...

हिंदुस्तान टाइम्स, 19 जुलाई, 1947

तीन चुनौतियाँ

मुख्य तौर पर भारत के सामने तीन तरह की चुनौतियाँ थीं। पहली और तात्कालिक चुनौती एकता के सूत्र में बँधे एक ऐसे भारत को गढ़ने की थी जिसमें भारतीय समाज की सारी विविधताओं के लिए जगह हो। भारत अपने आकार और विविधता में किसी महादेश के बराबर था। यहाँ अलग-अलग बोली बोलने वाले लोग थे, उनकी संस्कृति अलग थी और वे अलग-अलग धर्मों के अनुयायी थे। उस वक्त आमतौर पर यही माना जा रहा था कि इतनी विविधताओं से भरा कोई देश ज़्यादा दिनों तक एकजुट नहीं रह सकता। देश के विभाजन के साथ लोगों के मन में समाई यह आशंका एक तरह से सच साबित हुई थी। भारत के भविष्य को लेकर गंभीर सवाल खड़े थे : क्या भारत एक रह पाएगा? क्या ऐसा करने के लिए भारत सिर्फ़ राष्ट्रीय एकता की बात पर सबसे ज़्यादा ज़ोर देगा और बाकी उद्देश्यों को तिलांजलि दे देगा? क्या ऐसे में हर क्षेत्रीय और उप-क्षेत्रीय पहचान को खारिज कर दिया जाएगा? उस वक्त का सबसे तीखा और चुभता हुआ एक सवाल यह भी था कि भारत की क्षेत्रीय अखंडता को कैसे हासिल किया जाए?

> *कल हम अंग्रेज़ी-राज की गुलामी से आज़ाद हो जाएँगे लेकिन आधी रात को भारत का बँटवारा भी होगा। इसलिए कल का दिन हमारे लिए खुशी का दिन होगा और गम का भी।*
>
> **महात्मा गाँधी**
> 14 अगस्त 1947
> कलकत्ता

दूसरी चुनौती लोकतंत्र को कायम करने की थी। आप भारतीय संविधान के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। आप जानते हैं कि संविधान में मौलिक अधिकारों की गारंटी दी गई है और हर नागरिक को मतदान का अधिकार दिया गया है। भारत ने संसदीय शासन पर आधारित प्रतिनिधित्वमूलक लोकतंत्र को अपनाया। इन विशेषताओं से यह बात सुनिश्चित हो गई कि

लोकतांत्रिक ढाँचे के भीतर राजनीतिक मुकाबले होंगे। लोकतंत्र को कायम करने के लिए लोकतांत्रिक संविधान जरूरी होता है लेकिन इतना भर ही काफ़ी नहीं होता। चुनौती यह भी थी कि संविधान से मेल खाते लोकतांत्रिक व्यवहार-बरताव चलन में आएँ।

तीसरी चुनौती थी ऐसे विकास की जिससे समूचे समाज का भला होता हो न कि कुछ एक तबकों का। इस मोर्चे पर भी संविधान में यह बात साफ़ कर दी गई थी कि सबके साथ समानता का बरताव किया जाए और सामाजिक रूप से वंचित तबकों तथा धार्मिक-सांस्कृतिक अल्पसंख्यक समुदायों को विशेष सुरक्षा दी जाए। संविधान ने 'राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों' के अंतर्गत लोक-कल्याण के उन लक्ष्यों को भी स्पष्ट कर दिया था जिन्हें राजनीति को ज़रूर पूरा करना चाहिए। अब असली चुनौती आर्थिक विकास तथा गरीबी के खात्मे के लिए कारगर नीतियों को तैयार करने की थी।

मेरे मन में हमेशा यह इच्छा रही कि एक टाइम-मशीन मिल जाए तो मैं थोड़ा पीछे लौटूँ और 15 अगस्त, 1947 के जश्न में शिरकत करूँ। लेकिन, यहाँ तो मामला कुछ अलग ही नज़र आ रहा है।

आज़ाद हिंदुस्तान ने इन चुनौतियों के आगे क्या रुख अपनाया? संविधान में तय किए गए विभिन्न लक्ष्यों को हासिल करने की दिशा में कहाँ तक सफलता मिली? इस पूरी किताब में इन्हीं सवालों को खँगालने की कोशिश की गई है। इस किताब में आज़ादी के बाद के दौर की भारतीय राजनीति की कथा लिखी गई है ताकि आप खुद इन जैसे बड़े सवालों के अपने उत्तर तलाश पाने के काबिल हो सकें। शुरुआत के तीन अध्यायों में हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि ऊपर जिन तीन चुनौतियों का जिक्र किया गया है उनका आज़ादी के बाद शुरुआती सालों में कैसे सामना किया गया।

आज़ादी के तुरंत बाद राष्ट्र-निर्माण की चुनौती सबसे प्रमुख थी। इस पहले अध्याय में हम इसी चुनौती पर ध्यान केंद्रित करेंगे। शुरुआत में उन घटनाओं की चर्चा की जाएगी जिन्होंने आज़ादी को एक संदर्भ प्रदान किया। इससे हमें यह समझने में मदद मिलेगी कि आज़ादी के समय राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा का सवाल सबसे प्रमुख चुनौती के रूप में क्यों उभरा। इसके बाद हम यह देखेंगे कि भारत ने एक राष्ट्र के रूप में अपने को किस तरह एक साझे इतिहास तथा साझी नियति के फ़लक पर गढ़ा। अगले दो अध्यायों में हम लोकतंत्र कायम करने और बराबरी तथा इंसाफ पर आधारित आर्थिक-विकास हासिल करने की चुनौतियों पर विचार करेंगे।

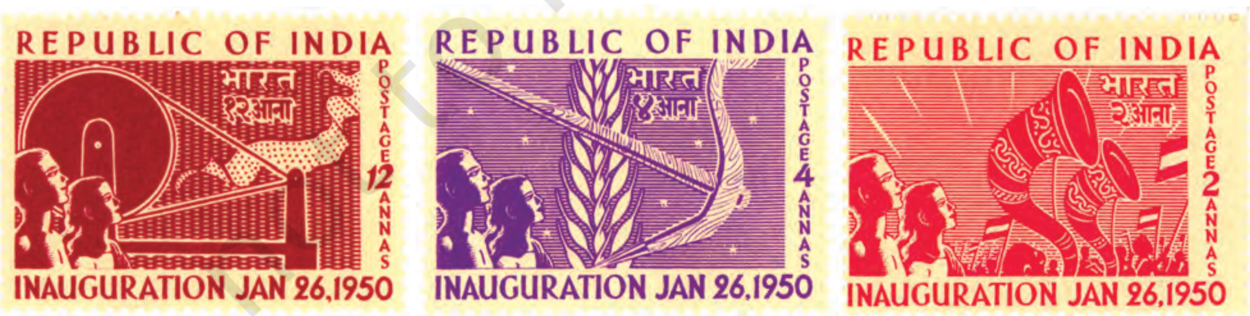

यहाँ प्रदर्शित तीन डाक-टिकटों को प्रथम गणतंत्र दिवस, 26 जनवरी 1950, के अवसर पर जारी किया गया था। इन टिकटों पर छपे चित्र से आपको नए गणतंत्र के सामने खड़ी किन-किन चुनौतियों के बारे में जानकारी मिलती है? अगर आपको 1950 में इन डाक-टिकटों का डिज़ाइन तैयार करने के लिए कहा जाता तो आप इन टिकटों पर किस तरह के चित्र उकेरते?

© NCERT not to be republished

...SPONDENCE ABOUT
...AARIF-UL-QURAN
...please be made at the following address:—
...blisher, MAARIF-UL-QURAN,
C/o Mr. PARVEZ
HOME DEPARTMENT
GOVERNMENT OF PAKISTAN
KARACHI

Dawn

Founded By QAED-E-AZAM MOHAMMAD ALI JINNAH
Edited by ALTAF H. SA...

WHILE IN KARACHI
VISIT
MANCHESTER HOUSE
TAILORS
The Authority on Style & Clothes
(Sherwani Specialists)
Phone: 7331
ELPHINSTONE STREET
KARACHI

...AED-E-AZAM'S TRIBUTE TO BRITISH PEOPLE

...bsolute Transfer Of Power Unknown In World History

...AKISTAN TO MAINTAIN FRIENDSHIP WITH BRITAIN AND HINDUSTAN

...NNAH'S SPEECH AT STATE DINNER TO LORD & LADY MOUNTBATTEN

साभार : 'डॉन' कराची, 14 अगस्त 1947

सुब्ह-ए-आज़ादी

– फ़ैज़ अहमद फ़ैज़

ये दाग़-दाग़ उजाला, ये शब-गज़ीदा सहर[1]
वो इंतज़ार था जिसका, ये वो सहर तो नहीं
ये वो सहर तो नहीं कि जिसकी आरज़ू लेकर
चले थे यार कि; मिल जाएगी कहीं ना कहीं
फ़लक[2] के दश्त में तारों की आख़िरी मंजिल
कहीं तो होगा शब-ए-सुस्त मौज का साहिल
कहीं तो जाके रुकेगा सफीन-ए-ग़म-ए-दिल[3]

1. अंधियारी सुबह, 2. आकाश, 3. दिल के ग़म की नाव

फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ (1911–1984) सियालकोट में जन्म; विभाजन के बाद पाकिस्तान में ही रहे। वामपंथी रुझान के कारण उनका पाकिस्तानी शासन तंत्र से हमेशा टकराव बना रहा। लंबा समय कारावास में गुजरा। 'नक्शे फ़रियादी', 'दस्त-ए-सबा' तथा 'जिंदानामा' उनके प्रमुख कविता संग्रह हैं। बीसवीं शताब्दी के दक्षिण एशियाई कवियों में फ़ैज़ बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं।

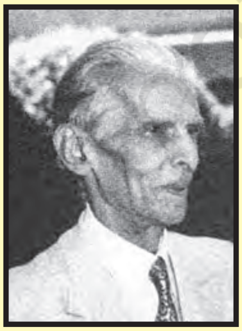

हमें बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों की इन जटिलताओं को दूर करने की भावना से काम करना चाहिए। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक–दोनों ही समुदायों में तरह-तरह के लोग शामिल हैं। अगर मुसलमान पठान, पंजाबी, शिया और सुन्नी आदि में बँटे हैं तो हिंदू भी ब्राह्मण, वैष्णव, खत्री तथा बंगाली, मद्रासी आदि समुदायों में...। पाकिस्तान में आप आज़ाद हैं, आप अपने मंदिर में जाने के लिए आज़ाद हैं, आप अपनी मस्जिद में जाने या किसी भी अन्य पूजास्थल पर जाने के लिए आज़ाद हैं। आपके धर्म, आपकी जाति या विश्वास से राज्य को कुछ लेना-देना नहीं है।

– 11 अगस्त, 1947 को कराची में, पाकिस्तान की संविधान सभा में अध्यक्षीय भाषण देते हुए मुहम्मद अली ज़िन्ना

The Times of India
ESTABLISHED 1838
NO. 195. VOL. CIX. BOMBAY: FRIDAY, AUGUST 15, 1947 PRICE TWO ANNAS

BIRTH OF INDIA'S FREEDOM

NATION WAKES TO NEW LIFE

Mr. Nehru Calls For Big Effort From People

"INCESSANT STRIVING TASK OF FUTURE"

Assembly Members Take Solemn Pledge

WILD SCENES OF JUBILATION IN DELHI

From Our Special Representative

NEW DELHI, AUGUST 14.

ENTIRE DELHI KEPT AWAKE TO WITNESS THE HISTORIC EVENT OF USHERING IN THE FREEDOM OF INDIA AT THE HOUR OF MIDNIGHT.

Unprecedented scenes of enthusiasm were witnessed both inside and outside the Constituent Assembly Chamber, where seething, swaying humanity wildly cheered the momento... heralded with the blow...

Pandit Nehru

NEW CABINET OF INDIA

Fourteen Members

PANDIT NEHRU TO BE PREMIER

NEW DELHI, August 14.
The new Cabinet of India, which will function from August 15, announced tonight, will consist of the following:
Pandit Jawaharlal Nehru—prime Minister, External and Commonwealth Relations and Scientific Research.

STATE VISIT TO KARACHI

Their Excellencies Lord and Lady Mountbatten speaking to Service representatives at the Mauripur Airport on their arrival in Karachi from Delhi on Wednesday

LORD MOUNTBATTEN GREETS PAKISTAN

Mr. Jinnah Re-Affirms Firm Friendship With Britain

From Our Staff Correspondent

FRENZIED ENTHUSIASM IN BOMBAY

Crowds In Festive Mood

THE national flag was hoisted over the 74-year-old Bombay Civil Secretariat at midnight when the citizens of Bombay greeted the dawn of independence with solemn invocation and frenzied rejoicing.

"Citizens of free India—you are now free",—said the Prime Minister, Mr. B. G. Kher, in raising the flag at the midnight ceremony, which was attended by all Ministers and departmental heads and employees of the Bombay Government.

"MAY BOMBAY PROSPER"

Governor's Message

GOOD WISHES TO FREE INDIA

Sir John Colville, Governor of Bombay, has sent greetings to the people of Bombay Province on the occasion of India's emergence as a full-fledged Dominion.

साभार: टाइम्स ऑफ इंडिया, बंबई 15 अगस्त 1947

वारिस शाह से!

आज वारिस शाह से कहती है–अपनी कब्र में से बोलो।
और इश्क की किताब का कोई नया वर्क़ खोलो!
पंजाब की एक बेटी रोई थी, तू ने उस की लंबी दास्तान लिखी,
आज लाखों बेटियाँ रो रही हैं वारिस शाह! तुम से कह रही हैं:
ऐ दर्दमंदों के दोस्त, पंजाब की हालत देखो
चौपाल लाशों से अटा पड़ा है, चनाब लहू से भर गया है
किसी ने पाँचों दरियाओं में ज़हर मिला दिया है
और यही पानी धरती को सींचने लगा है
इस ज़रखेज़ धरती से ज़हर फूट निकला है
देखो, सुर्खी कहाँ तक आ पहुँची! और क़हर कहाँ तक आ पहुँचा!
फिर ज़हरीली हवा वन-जंगलों में चलने लगी
उसने हर बाँस की बाँसुरी जैसे एक नाग बना दी...

अमृता प्रीतम: चुनी हुई कविताएँ (1991 चौथा संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ)

अमृता प्रीतम (1919–2005) : पंजाबी भाषा की प्रमुख कवयित्री और कथाकार, साहित्यिक उपलब्धियों के लिए साहित्य अकादमी, पदमश्री और ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित। विभाजन के बाद दिल्ली में निवास। जीवन के अंतिम समय तक पंजाबी की साहित्यिक पत्रिका 'नागमणि' का संपादन।

भारत में मुसलमान अल्पसंख्यकों की तादाद इतनी ज़्यादा है कि वे चाहें तब भी यहाँ से कहीं और नहीं जा सकते। यह एक बुनियादी तथ्य है और इस पर कोई अँगुली नहीं उठाई जा सकती। पाकिस्तान चाहे जितना उकसावा दे या वहाँ के गैर-मुस्लिमों को अपमान और भय के चाहे जितने भी घूँट पीने पड़ें, हमें अपने अल्पसंख्यकों के साथ सभ्यता और शालीनता के साथ पेश आना है। लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था में हमें उन्हें नागरिक के अधिकार देने होंगे और उनकी रक्षा करनी होगी। अगर हम ऐसा करने में कामयाब नहीं होते तो यह एक नासूर बन जाएगा जो पूरी राज-व्यवस्था में ज़हर फैलाएगा और शायद उसको तबाह भी कर दे।

– जवाहरलाल नेहरू, मुख्यमंत्रियों को एक पत्र में, 15 अक्तूबर 1947

not to be republished © NCERT

विभाजन : विस्थापन और पुनर्वास

14-15 अगस्त 1947 को एक नहीं बल्कि दो राष्ट्र–भारत और पाकिस्तान–अस्तित्व में आए। ऐसा 'विभाजन' के कारण हुआ; ब्रिटिश इंडिया को 'भारत' और 'पाकिस्तान' के रूप में बाँट दिया गया। आपने इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में उस राजनीतिक घटनाक्रम के बारे में पढ़ा है जिसके फलस्वरूप दोनों देशों के भू-भाग को रेखांकित करते हुए सीमा-रेखा खींच दी गई। मुस्लिम लीग ने 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' की बात की थी। इस सिद्धांत के अनुसार भारत किसी एक कौम का नहीं बल्कि 'हिंदू' और 'मुसलमान' नाम की दो कौमों का देश था और इसी कारण मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के लिए एक अलग देश यानी पाकिस्तान की माँग की। कांग्रेस ने 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' तथा पाकिस्तान की माँग का विरोध किया। बहरहाल, सन् 1940 के दशक में राजनीतिक मोर्चे पर कई बदलाव आए; कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच राजनीतिक प्रतिस्पर्धा तथा ब्रिटिश-शासन की भूमिका जैसी कई बातों का ज़ोर रहा। नतीजतन, पाकिस्तान की माँग मान ली गई।

विभाजन की प्रक्रिया

फ़ैसला हुआ कि अब तक जिस भू-भाग को 'इंडिया' के नाम से जाना जाता था उसे 'भारत' और 'पाकिस्तान' नाम के दो देशों के बीच बाँट दिया जाएगा। यह विभाजन दर्दनाक तो था ही, इस पर फ़ैसला करना और अमल में लाना और भी कठिन था। तय किया गया कि धार्मिक बहुसंख्या को विभाजन का आधार बनाया जाएगा। इसके मायने यह थे कि जिन इलाकों में मुसलमान बहुसंख्यक थे वे इलाके 'पाकिस्तान' के भू-भाग होंगे और शेष हिस्से 'भारत' कहलाएँगे।

यह बात थोड़ी आसान जान पड़ती है लेकिन असल में इसमें कई किस्म की दिक्कतें थीं। पहली बात तो यह कि 'ब्रिटिश इंडिया' में कोई एक भी इलाका ऐसा नहीं था जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक हों। ऐसे दो इलाके थे जहाँ मुसलमानों की आबादी ज़्यादा थी। एक इलाका पश्चिम में था तो दूसरा इलाका पूर्व में। ऐसा कोई तरीका न था कि इन दोनों इलाकों को जोड़कर एक जगह कर दिया जाए। इसे देखते हुए फ़ैसला हुआ कि पाकिस्तान में दो इलाके शामिल होंगे यानी पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान तथा इनके बीच में भारतीय भू-भाग का एक बड़ा विस्तार रहेगा। दूसरी बात यह कि मुस्लिम-बहुल हर इलाका पाकिस्तान में जाने को राजी हो, ऐसा भी नहीं था। खान अब्दुल गफ्फार खान पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के निर्विवाद नेता थे। उनकी प्रसिद्धि 'सीमांत गाँधी' के रूप में थी और वे 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' के एकदम खिलाफ़ थे। संयोग से, उनकी आवाज़ की अनदेखी की गई और 'पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत' को पाकिस्तान में शामिल मान लिया गया।

अच्छा। तो मुझे अब पता चला कि पहले जिसे 'पूर्वी' बंगाल कहा जाता था वही आज का बांग्लादेश है। तो क्या यही कारण है कि हमारे वाले बंगाल को 'पश्चिमी' बंगाल कहा जाता है। जाता है।

तीसरी समस्या और भी विकट थी। 'ब्रिटिश-इंडिया' के मुस्लिम-बहुल प्रांत पंजाब और बंगाल में अनेक हिस्से बहुसंख्यक गैर-मुस्लिम आबादी वाले थे। ऐसे में फ़ैसला हुआ कि इन दोनों प्रांतों में भी बँटवारा धार्मिक बहुसंख्यकों के आधार पर होगा और इसमें जिले अथवा उससे निचले स्तर के प्रशासनिक हलके को आधार माना जाएगा। 14-15 अगस्त 1947 की मध्यरात्रि तक यह फ़ैसला नहीं हो पाया था। इसका मतलब यह हुआ कि आज़ादी के दिन तक अनेक लोगों को यह पता नहीं था कि वे भारत में हैं या पाकिस्तान में। पंजाब और बंगाल का बँटवारा विभाजन की सबसे बड़ी त्रासदी साबित हुआ।

© NCERT not to be republished

इसी समस्या से जुड़ी हुई चौथी और विभाजन की सबसे अबूझ कठिनाई 'अल्पसंख्यकों' की थी। सीमा के दोनों तरफ़ 'अल्पसंख्यक' थे। जो इलाके अब पाकिस्तान में हैं वहाँ लाखों की संख्या में हिंदू और सिख आबादी थी। ठीक इसी तरह पंजाब और बंगाल के भारतीय भू-भाग में भी लाखों की संख्या में मुस्लिम आबादी थी। दिल्ली और उसके आस-पास के इलाकों में भी मुसलमानों की एक बड़ी आबादी थी। ये सब लोग एक तरह से साँसत में थे। इन लोगों ने पाया कि हम तो अपने ही घर में विदेशी बन गए। जिस ज़मीन पर वे और उनके पुरखे सदियों से आबाद रहे उसी जमीन पर वे 'विदेशी' बन गए थे। जैसे ही यह बात साफ हुई कि देश का बँटवारा होने वाला है वैसे ही हिंसा, उन समुदायों के खिलाफ अभूतपूर्व स्तर पर शुरू हुई जो अपने-अपने क्षेत्रों में संख्या में कम थे। इस कठिनाई से उबरने के लिए किसी के पास कोई योजना भी नहीं थी। शुरू-शुरू में लोग-बाग और नेता यही मानकर चल रहे थे कि हिंसा की घटनाएँ अस्थाई हैं और जल्दी ही इनको काबू में कर लिया जाएगा। लेकिन, बड़ी जल्दी हिंसा नियंत्रण से बाहर हो गई। सीमा के दोनों ओर के ऐसे समुदायों को प्रायः कुछ घंटों की सूचना पर अपने घरों को छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा।

विभाजन के परिणाम

सन् 1947 में बड़े पैमाने पर एक जगह की आबादी दूसरी जगह जाने को मज़बूर हुई थी। आबादी का यह स्थानांतरण आकस्मिक, अनियोजित और त्रासदी से भरा था। मानव-इतिहास के अब तक ज्ञात सबसे बड़े स्थानांतरणों में से यह एक था। धर्म के नाम पर एक समुदाय

साभार : डी.पी.ए.

शरणार्थियों से भरी एक ट्रेन, 1947

मेहमाननवाजी में कसर

दंगाइयों ने चलती ट्रेन को रोक लिया। गैर-मज़हब के लोगों को खींच-खींच के निकाला और तलवार तथा गोली से मौत के घाट उतार दिया।

बाकी यात्रियों को हलवा, फल और दूध दिया गया। आयोजकों के मुखिया ने कहा- "बहनो-भाइयो! ट्रेन के आने की खबर देर से मिली। इसी कारण हम आपका स्वागत पुरज़ोर तरीके से नहीं कर सके-जैसा कि आप सब चाहते होंगे।"

— सआदत हसन मंटो

मंटो की कहानी *कस्र-ए-नफ्सी* के हिंदी रूपांतर से लिया गया एक अंश।

के लोगों ने दूसरे समुदाय के लोगों को बेरहमी से मारा। लाहौर, अमृतसर और कलकत्ता जैसे शहर सांप्रदायिक अखाड़े में तब्दील हो गए। जिन इलाकों में ज़्यादातर हिंदू अथवा सिख आबादी थी, उन इलाकों में मुसलमानों ने जाना छोड़ दिया। ठीक इसी तरह मुस्लिम-बहुल आबादी वाले इलाकों से हिंदू और सिख भी नहीं गुजरते थे।

लोग अपना घर-बार छोड़ने के लिए मजबूर हुए। वे सीमा के एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ गए और इस क्रम में लोगों को बड़ी से बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा। दोनों ही तरफ़ के अल्पसंख्यक अपने घरों से भाग खड़े हुए और अकसर अस्थाई तौर पर उन्हें शरणार्थी शिविरों में पनाह लेनी पड़ी। कल तक जो लोगों का अपना वतन हुआ करता था, वहीं की पुलिस अथवा स्थानीय प्रशासन अब इन लोगों के साथ रुखाई का बरताव कर रहा था। लोगों को सीमा के दूसरी तरफ़ जाना पड़ा और ऐसा उन्हें हर हाल में करना था। अकसर लोगों ने पैदल चलकर यह दूरी तय की। हज़ारों की तादाद में औरतों को अगवा कर लिया गया। उन्हें जबरन शादी करनी पड़ी और अगवा करने वाले का धर्म भी अपनाना पड़ा। कई मामलों में यह भी हुआ कि खुद परिवार के लोगों ने अपने 'कुल की इज़्ज़त' बचाने के नाम पर घर की बहू-बेटियों को मार डाला। बहुत-से बच्चे अपने माँ-बाप से बिछड़ गए। जो लोग सीमा पार करने में किसी तरह सफल रहे उन्होंने पाया कि अब वे बेठिकाना हो गए हैं। इन लाखों शरणार्थियों के लिए देश की आज़ादी का मतलब था महीनों और कभी-कभी सालों तक किसी शरणार्थी शिविर में ज़िंदगी काटना।

साभार: नेहरू मेमोरियल म्यूज़ियम एंड लाइब्रेरी

नोआखली (अब बांग्लादेश में) की यात्रा पर गाँधी, 1947

भारत और पाकिस्तान के लेखक, कवि तथा फिल्म-निर्माताओं ने अपने उपन्यास, लघुकथा, कविता और फिल्मों में इस मार-काट की नृशंसता का जिक्र किया; विस्थापन और हिंसा से पैदा दुखों को अभिव्यक्ति दी। विभाजन की विपदा का जिक्र करते हुए रचनाकारों ने अकसर वही जुमला इस्तेमाल किया जो इस विपत्ति को झेलने वाले 'बँटवारे' का जिक्र करते हुए करते थे। इन सबों के लिए बँटवारे का मतलब था 'दिल के दो टुकड़े हो जाना'। 'विभाजन' में सिर्फ़ संपदा, देनदारी और परिसंपत्तियों का ही बँटवारा नहीं हुआ। इस

© NCERT not to be republished

परिसंपत्तियों का ही बँटवारा नहीं हुआ। इस 'विभाजन' में दो समुदाय जो अब तक पड़ोसियों की भाँति रहते आ रहे थे, हिंसक अलगाव का शिकार हुए।

वित्तीय संपदा के साथ-साथ टेबुल, कुर्सी, टाईपराइटर और पुलिस के वाद्ययंत्रों तक का बँटवारा हुआ था। सरकारी और रेलवे के कर्मचारियों का भी बँटवारा हुआ। अब तक साथ-साथ रहते आए दो समुदायों का यह एक हिंसक और भयावह विभाजन था। अनुमान किया जाता है कि विभाजन के कारण 80 लाख लोगों को अपना घर-बार छोड़कर सीमा-पार जाना पड़ा। विभाजन की हिंसा में तकरीबन पाँच से दस लाख लोगों ने अपनी जान गँवाई।

प्रशासनिक मुश्किल और वित्तीय कठिनाई के अतिरिक्त विभाजन के साथ कुछ और ज़्यादा गहरे मुद्दे जुड़े हुए थे। भारत के नेता द्वि-राष्ट्र सिद्धांत में यकीन नहीं करते थे। बहरहाल, विभाजन तो धर्म के आधार पर ही हुआ था। क्या इस वज़ह से भारत अपने-आप एक हिंदू राष्ट्र बन गया? विभाजन के दौरान बड़ी संख्या में मुस्लिम आबादी पाकिस्तान चली गई। इसके बावजूद 1951 के वक्त भारत की कुल आबादी में 10-12 फीसदी मुसलमान थे। ऐसे में सवाल यह था कि भारत अपने मुसलमान नागरिकों तथा दूसरे धार्मिक अल्पसंख्यकों मसलन सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी और यहूदियों के साथ क्या बरताव करे? बँटवारे के कारण हिंदू और मुसलमानों के बीच तनाव पहले से ही कायम था।

इन संघर्षों के साथ प्रतिस्पर्धी राजनीतिक हित जुड़े थे। मुस्लिम लीग का गठन मुख्य रूप से औपनिवेशिक भारत में मुसलमानों के हितों की रक्षा के लिए हुआ था। मुस्लिम लीग मुसलमानों के लिए अलग राष्ट्र की माँग करने के एतबार से अग्रणी थी। ठीक इसी तरह कुछ और संगठन भी थे जो भारत को हिंदू राष्ट्र बनाने के लिए हिंदुओं को लामबंद करने की कोशिश में लगे थे। बहरहाल, भारत की कौमी सरकार के अधिकतर नेता सभी नागरिकों को समान दर्ज़ा देने के हामी थे चाहे नागरिक किसी भी धर्म का हो। वे भारत को एक ऐसे राष्ट्र के रूप में नहीं देखना चाहते थे जहाँ किसी एक धर्म के अनुयायियों को दूसरे धर्मावलंबियों

सिने-संसार

गर्म हवा

सलीम मिर्ज़ा आगरा में रहते हैं और जूते का व्यवसाय करते हैं। विभाजन के बाद सलीम अपने ही लोगों के बीच अजनबी बन जाते हैं। विभाजन के बाद बदले माहौल में सलीम अपने आसपास की दुनिया से संबंध नहीं बिठा पाते। धीरे-धीरे उनका व्यवसाय भी चौपट होने लगता है। देश के दूसरी तरफ़ से आया एक शरणार्थी परिवार उनके पुश्तैनी मकान पर कब्ज़ा कर लेता है। घटनाओं की इस गहमागहमी में सलीम की बेटी मौत को गले लगा लेती है। लेकिन सलीम फिर भी उम्मीद नहीं छोड़ते। उन्हें यकीन है कि हालात दुबारा सामान्य हो जाएँगे।

सलीम की इस सोच से उनके परिवार वाले ही इत्तेफाक नहीं रखते। परिवार के कई सदस्यों ने पाकिस्तान जाने का फ़ैसला कर लिया है। सलीम पाकिस्तान जाने की विवशता और भारतीय रहने की इच्छा के बीच फँस गए हैं। कहानी में सलीम के सामने एक निर्णायक क्षण आता है जब वह छात्रों के एक जत्थे को सड़क से गुज़रता हुआ देखते हैं। आंदोलनकारी छात्र, सरकार से बेहतर सुविधाओं की माँग कर रहे हैं। छात्रों के इस जत्थे में सलीम का बेटा सिकंदर भी शामिल है। आपकी राय में मिर्ज़ा सलीम का फिल्म के अंत में क्या रुख रहा होगा? ऐसी परिस्थितियों में आप क्या करते?

वर्ष : 1973
निर्देशक : एम.एस. सथ्यु
पटकथा : कैफ़ी आज़मी
अभिनय : बलराज साहनी, जलाल आगा, फ़ारूख शेख, गीता सिद्धार्थ

© NCERT not to be republished

महात्मा गाँधी की शहादत

महात्मा गाँधी ने 15 अगस्त, 1947 के दिन आज़ादी के किसी भी जश्न में भाग नहीं लिया। वे कोलकाता के उन इलाकों में डेरा डाले हुए थे जहाँ हिंदुओं और मुसलमानों के बीच भयंकर दंगे हुए थे। सांप्रदायिक हिंसा से उनके मन पर गहरी चोट लगी थी। यह देखकर उनका दिल टूट चुका था कि 'अहिंसा' और 'सत्याग्रह' के जिन सिद्धांतों के लिए वे आजीवन समर्पित भाव से काम करते रहे वे ही सिद्धांत इस कठिन घड़ी में लोगों को एकसूत्र में पिरो सकने में नाकामयाब हो गए थे। गाँधीजी ने हिंदुओं और मुसलमानों से ज़ोर देकर कहा कि वे हिंसा का रास्ता छोड़ दें। कोलकाता में गाँधी की मौजूदगी से हालात बड़ी हद तक सुधर चले थे और आज़ादी का जश्न लोगों ने सांप्रदायिक सद्‌भाव के जज़्बे से मनाया। लोग सड़कों पर पूरे हर्षोल्लास के साथ नाच रहे थे। गाँधी की प्रार्थना-सभा में बड़ी संख्या में लोग जुटते थे। बहरहाल, यह स्थिति ज़्यादा दिनों तक कायम नहीं रही। हिंदुओं और मुसलमानों के बीच दंगे एक बार फिर से भड़क उठे और गाँधीजी अमन कायम करने के लिए 'उपवास' पर बैठ गए।

अगले महीने गाँधीजी दिल्ली पहुँचे। दिल्ली में भी बड़े पैमाने पर हिंसा हुई थी। गाँधीजी दिल से चाहते थे कि मुसलमानों को भारत में गरिमापूर्ण जीवन मिले और उन्हें बराबर का नागरिक माना जाए। इस बात को सुनिश्चित करने के लिए वे बड़े चिंतित थे। भारत और पाकिस्तान के आपसी संबंधों को लेकर भी उनके मन में गहरी चिंताएँ थीं। उन्हें लग रहा था कि भारत की सरकार पाकिस्तान के प्रति अपनी वित्तीय वचनबद्धताओं को पूरा नहीं कर रही है। इस बात से वे नाखुश थे। इन सारी बातों को सोचकर उन्होंने 1948 की जनवरी में एक बार फिर 'उपवास' रखना शुरू किया। यह उनका अंतिम 'उपवास' साबित हुआ। कोलकाता की ही तरह दिल्ली में भी उनके 'उपवास' का जादुई असर हुआ। सांप्रदायिक तनाव और हिंसा में कमी हुई। दिल्ली और उसके आस-पास के इलाके के मुसलमान सुरक्षित अपने घरों में लौटे। भारत की सरकार पाकिस्तान को उसका देय चुकाने पर राजी हो गई।

बहरहाल, गाँधीजी के कामों से हर कोई खुश हो, ऐसी बात नहीं थी। हिंदू और मुसलमान दोनों ही समुदायों के अतिवादी अपनी स्थिति के लिए गाँधीजी पर दोष मढ़ रहे थे। इसके बावजूद गाँधीजी ने सशस्त्र सुरक्षा हासिल करने से मना कर दिया और अपनी प्रार्थना-सभा में हर किसी से मिलना जारी रखा। आखिरकार, 30 जनवरी 1948 के दिन ऐसा ही एक हिंदू अतिवादी नाथूराम विनायक गोडसे, गाँधीजी की संध्याकालीन प्रार्थना के समय उनकी तरफ़ चलता हुआ नज़दीक पहुँच गया। उसने गाँधीजी पर तीन गोलियाँ चलाईं और गाँधीजी को तत्क्षण मार दिया। इस तरह न्याय और सहिष्णुता को आजीवन समर्पित एक आत्मा का देहावसान हुआ।

© NCERT not to be republished

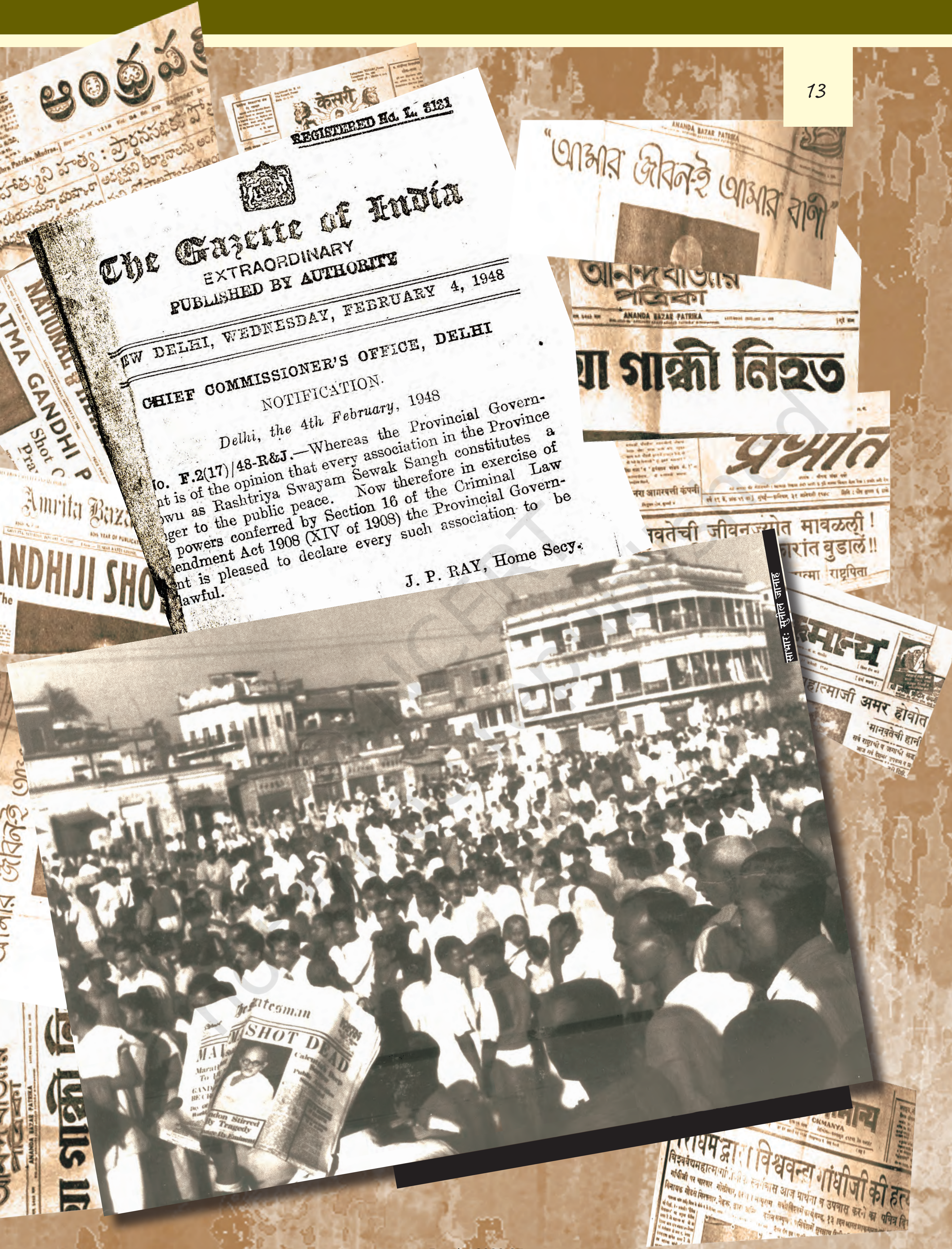

REGISTERED No. L. 8121
The Gazette of India
EXTRAORDINARY
PUBLISHED BY AUTHORITY
EW DELHI, WEDNESDAY, FEBRUARY 4, 1948
CHIEF COMMISSIONER'S OFFICE, DELHI
NOTIFICATION.
Delhi, the 4th February, 1948
o. F.2(17)/48-R&J.—Whereas the Provincial Govern-
nt is of the opinion that every association in the Province
own as Rashtriya Swayam Sewak Sangh constitutes a
ger to the public peace. Now therefore in exercise of
powers conferred by Section 16 of the Criminal Law
endment Act 1908 (XIV of 1908) the Provincial Govern-
nt is pleased to declare every such association to be
awful.
J. P. RAY, Home Secy.
"আমার জীবন-ই আমার বাণী"
আনন্দবাজার পত্রিকা
ANANDA BAZAR PATRIKA
া গান্ধী নিহত
प्रभात
वतेची जीवनज्योत मावळली !
ारांत बुडालें !!
Amrita Baza
NDHIJI SHO
ATMA GANDHI
केसरी
Statesman
SHOT DEAD
London Stirred by Tragedy
हात्माजी अमर होवोत
विश्वबन्द्य गांधीजी की हत
साभार: सुनील जानाह

के ऊपर वरीयता दी जाए अथवा किसी एक धर्म के विश्वासियों के मुकाबले बाकियों को हीन समझा जाता हो। वे मानते थे कि नागरिक चाहे जिस धर्म को माने, उसका दर्ज़ा बाकी नागरिकों के बराबर ही होना चाहिए। नागरिकता की कसौटी धर्म को नहीं बनाया जाना चाहिए। हमारे नेतागण धर्मनिरपेक्ष राज्य के आदर्श के हिमायती थे। उनके इस आदर्श की अभिव्यक्ति भारतीय संविधान में हुई।

खोज-बीन

श्वेता ने गौर किया था कि जब भी कोई पाकिस्तान का जिक्र छेड़ता था तो उसके नाना एकदम चुप हो जाते थे। एक दिन उसने नाना से इसके बारे में पूछने का फ़ैसला किया। उसके नाना ने बताया कि बँटवारे के वक्त उन्हें लाहौर से लुधियाना आना पड़ा था। उनके माता-पिता मार दिए गए थे। श्वेता के नाना भी नहीं बच पाते लेकिन खैर यह हुई कि पड़ोस के मुस्लिम परिवार ने उन्हें पनाह दी और कई दिनों तक छुपाकर रखा। इन्हीं पड़ोसियों की मदद से श्वेता के नाना को अपने सगे-संबंधियों का पता-ठिकाना मालूम पड़ा और वे किसी तरह बच-बचा के सीमा पार कर भारत पहुँचे। यहाँ आकर उन्होंने नयी ज़िंदगी शुरू की। इसी तरह हिंदू परिवारों और अन्य लोगों के भी कई उदाहरण हैं, जिन्होंने विभाजन के कारण उत्पन्न संकट और हिंसा के समय मुस्लिम परिवारों की मदद की, उन्हें आश्रय दिया और उनकी जान बचाई। यह दोनों समुदायों में धार्मिक आधार पर करुणा और एकजुटता के महत्व को दर्शाता है।

क्या आपने भी ऐसा ही कोई वाकया सुना है। अपने दादा-दादी अथवा इस पीढ़ी के किसी और से पूछिए कि आज़ादी के दिन क्या हुआ था, कैसे जश्न मनाया गया था, बँटवारे का सदमा कितना गहरा था और देश की आज़ादी से इन लोगों की क्या अपेक्षाएँ थीं?

कम से कम ऐसे दो वाकयों को लिखिए।

रजवाड़ों का विलय

ब्रिटिश इंडिया दो हिस्सों में था। एक हिस्से में ब्रिटिश प्रभुत्व वाले भारतीय प्रांत थे तो दूसरे हिस्से में देसी रजवाड़े। ब्रिटिश प्रभुत्व वाले भारतीय प्रांतों पर अंग्रेजी सरकार का सीधा नियंत्रण था। दूसरी तरफ़ छोटे-बड़े आकार के कुछ और राज्य थे। इन्हें रजवाड़ा कहा जाता था। रजवाड़ों पर राजाओं का शासन था। राजाओं ने ब्रिटिश-राज की अधीनता या कहें कि सर्वोच्च सत्ता स्वीकार कर रखी थी और इसके अंतर्गत वे अपने राज्य के घरेलू मामलों का शासन चलाते थे। अंग्रेजी प्रभुत्व के अंतर्गत आने वाले भारतीय साम्राज्य के एक-तिहाई हिस्से में रजवाड़े कायम थे। प्रत्येक चार भारतीयों में से एक किसी न किसी रजवाड़े की प्रजा था।

समस्या

आज़ादी के तुरंत पहले अंग्रेजी-शासन ने घोषणा की कि भारत पर ब्रिटिश-प्रभुत्व के साथ ही रजवाड़े भी ब्रिटिश-अधीनता से आज़ाद हो जाएँगे। इसका मतलब यह था कि सभी रजवाड़े (रजवाड़ों की संख्या 565 थी) ब्रिटिश-राज की समाप्ति के साथ ही कानूनी तौर पर आज़ाद हो जाएँगे। अंग्रेजी-राज का नज़रिया यह था कि रजवाड़े अपनी मर्जी से चाहें तो भारत या पाकिस्तान में शामिल हो जाएँ या फिर अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखें। भारत अथवा पाकिस्तान में शामिल होने या स्वतंत्र हैसियत बनाए रखने का फ़ैसला रजवाड़ों की प्रजा को नहीं करना था। यह फ़ैसला लेने का अधिकार राजाओं को दिया गया था। यह अपने आप में बड़ी गंभीर समस्या थी और इससे अखंड भारत के अस्तित्व पर ही खतरा मँडरा रहा था।

Reprint 2026-27

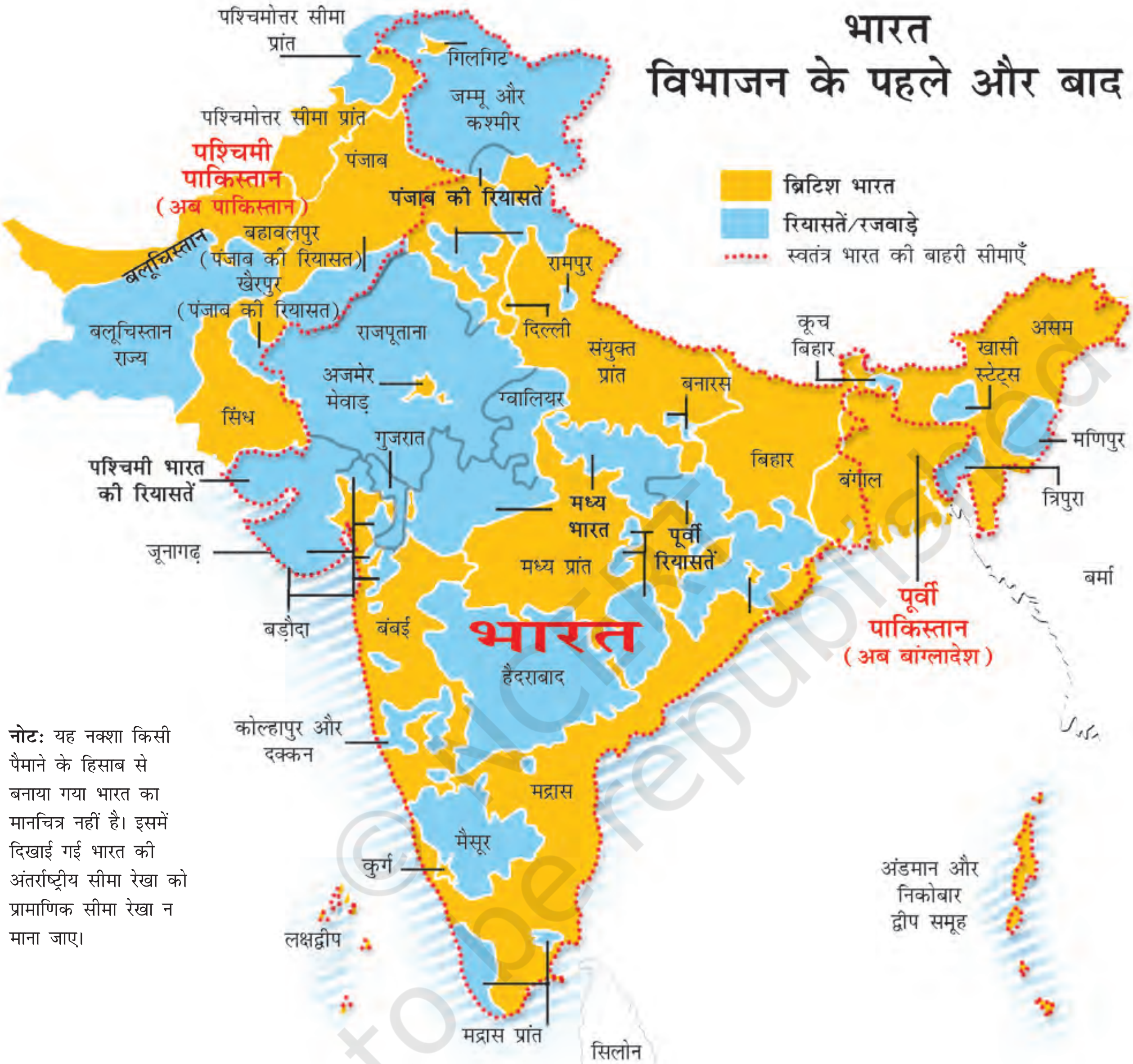

नोटः यह नक्शा किसी पैमाने के हिसाब से बनाया गया भारत का मानचित्र नहीं है। इसमें दिखाई गई भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को प्रामाणिक सीमा रेखा न माना जाए।

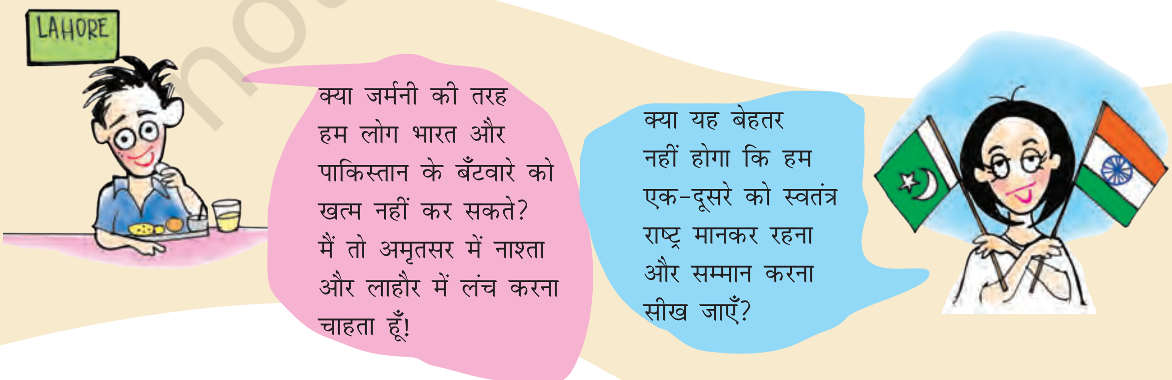

© NCERT not to be republished

समस्या ने जल्दी ही अपने तेवर दिखाने शुरू किए। सबसे पहले त्रावणकोर के राजा ने अपने राज्य को आज़ाद रखने की घोषणा की। अगले दिन हैदराबाद के निज़ाम ने ऐसी ही घोषणा की। कुछ शासक मसलन भोपाल के नवाब संविधान-सभा में शामिल नहीं होना चाहते थे। रजवाड़ों के शासकों के रवैये से यह बात साफ़ हो गई कि आज़ादी के बाद हिंदुस्तान कई छोटे-छोटे देशों की शक्ल में बँट जाने वाला है। लोकतंत्र का भविष्य अंधकारमय जान पड़ रहा था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का लक्ष्य एकता और आत्मनिर्णय के साथ-साथ लोकतंत्र का रास्ता अख्तियार करना था। इसे देखते हुए यह स्थिति अपने आप में बड़ी विचित्र थी। अधिकतर रजवाड़ों में शासन अलोकतांत्रिक रीति से चलाया जाता था और रजवाड़ों के शासक अपनी प्रजा को लोकतांत्रिक अधिकार देने के लिए तैयार नहीं थे।

"हम भारत के इतिहास के एक यादगार मुकाम पर खड़े हैं। साथ मिलकर चलें तो देश को हम महानता की नयी बुलंदियों तक पहुँचा सकते हैं, जबकि एकता के अभाव में हम अप्रत्याशित विपदाओं के घेरे में होंगे। मैं उम्मीद करता हूँ कि भारत की रियासतें इस बात को पूरी तरह से समझेंगी कि अगर हमने सहयोग नहीं किया और सर्व-सामान्य की भलाई में साथ मिलकर कदम नहीं बढ़ाया तो अराजकता और अव्यवस्था हम में से सबको चाहे कोई छोटा हो या बड़ा, घेर लेगी और हमें बर्बादी की तरफ़ ले जाएगी..."

सरदार पटेल
रियासतों के शासकों को एक पत्र में (1947)

सरकार का नज़रिया

छोटे-बड़े विभिन्न आकार के देशों में बँट जाने की इस संभावना के विरुद्ध अंतरिम सरकार ने कड़ा रुख अपनाया। माउंटबेटन योजना के तहत, रियासतें भारत या पाकिस्तान में शामिल होने के लिए स्वतंत्र थीं। रजवाड़ों के शासकों को मनाने-समझाने में सरदार पटेल ने ऐतिहासिक भूमिका निभाई और अधिकतर रजवाड़ों को उन्होंने भारतीय संघ में शामिल होने के लिए राजी कर लिया। आज यह आसान जान पड़ सकता है लेकिन अपने आप में यह बड़ा जटिल काम था। इसके लिए बड़ी चतुराई और युक्तिपूर्ण पहलकदमी की ज़रूरत थी। मिसाल के तौर पर आज के उड़ीसा में ही तब 26 और छत्तीसगढ़ में 15 छोटे-छोटे रजवाड़े थे। सौराष्ट्र में 14 बड़े और 119 छोटे रजवाड़े और अन्य अनेक प्रशासनिक तंत्र थे।

देसी रजवाड़ों की इस चर्चा से तीन बातें सामने आती हैं। पहली बात तो यह कि अधिकतर रजवाड़ों के लोग भारतीय संघ में शामिल होना चाहते थे। दूसरी बात यह कि भारत सरकार का रुख लचीला था और वह कुछ इलाकों को स्वायत्तता देने के लिए तैयार थी जैसा कि जम्मू-कश्मीर में हुआ। भारत सरकार ने विभिन्नताओं को सम्मान देने और विभिन्न क्षेत्रों की माँगों को संतुष्ट करने के लिए यह रुख अपनाया था। तीसरी बात, विभाजन की पृष्ठभूमि में विभिन्न इलाकों के सीमांकन के सवाल पर खींचतान ज़ोर पकड़ रही थी और ऐसे में देश की क्षेत्रीय अखंडता—एकता का सवाल सबसे ज़्यादा अहम हो उठा था।

शांतिपूर्ण बातचीत के ज़रिए लगभग सभी रजवाड़े जिनकी सीमाएँ आज़ाद हिंदुस्तान की नयी सीमाओं से मिलती थीं, 15 अगस्त 1947 से पहले ही भारतीय संघ में शामिल हो गए। अधिकतर रजवाड़ों के शासकों ने भारतीय संघ में अपने विलय के एक सहमति-पत्र पर हस्ताक्षर किए। इस सहमति-पत्र को 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ एक्सेशन' कहा जाता है। इस पर हस्ताक्षर का अर्थ था कि रजवाड़े भारतीय संघ का अंग बनने के लिए सहमत हैं। जूनागढ़, हैदराबाद, कश्मीर और मणिपुर की रियासतों का विलय बाकियों की तुलना में थोड़ा कठिन साबित हुआ। इस अध्याय में हम हैदराबाद और मणिपुर की रियासतों के विलय के मामले पर गौर करेंगे। कश्मीर के विलय के बारे में आप अध्याय 8 में पढ़ेंगे।

© NCERT not to be republished

साभार: पत्र सूचना कार्यालय

हैदराबाद के निज़ाम के साथ सरदार पटेल

हैदराबाद

हैदराबाद की रियासत बहुत बड़ी थी। यह रियासत चारों तरफ़ से हिंदुस्तानी इलाके से घिरी थी। पुराने हैदराबाद के कुछ हिस्से आज के महाराष्ट्र तथा कर्नाटक में और बाकी हिस्से आंध्रप्रदेश में हैं। हैदराबाद के शासक को 'निज़ाम' कहा जाता था और वह दुनिया के सबसे दौलतमंद लोगों में शुमार किया जाता था। निज़ाम चाहता था कि हैदराबाद की रियासत को आज़ाद रियासत का दर्जा दिया जाए। निज़ाम ने सन् 1947 के नवंबर में भारत के साथ यथास्थिति बहाल रखने का एक समझौता किया। यह समझौता एक साल के लिए था। इस बीच भारत सरकार से हैदराबाद के निज़ाम की बातचीत जारी रही।

इसी दौरान हैदराबाद की रियासत के लोगों के बीच निज़ाम के शासन के खिलाफ़ एक आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा। तेलंगाना इलाके के किसान निज़ाम के दमनकारी शासन से खासतौर पर दुखी थे। वे निज़ाम के खिलाफ़ उठ खड़े हुए। महिलाएँ निज़ाम के शासन में सबसे ज़्यादा जुल्म का शिकार हुई थीं। महिलाएँ भी बड़ी संख्या में इस आंदोलन से आ जुड़ीं। हैदराबाद शहर इस आंदोलन का गढ़ बन गया। कम्युनिस्ट और हैदराबाद कांग्रेस इस आंदोलन की अग्रिम पंक्ति में थे। आंदोलन को देख निज़ाम ने लोगों के खिलाफ़ एक अर्द्ध-सैनिक बल रवाना किया। इसे रज़ाकार कहा जाता था। रज़ाकार अव्वल दर्जे के सांप्रदायिक और अत्याचारी थे। रज़ाकारों ने गैर-मुसलमानों को खासतौर पर अपना निशाना

सरदार वल्लभभाई पटेल (1875–1950) : आज़ादी के आंदोलन के नेता; कांग्रेस के नेता; महात्मा गाँधी के अनुयायी; स्वतंत्र भारत के उप-प्रधानमंत्री और प्रथम गृहमंत्री; देसी रियासतों को भारत संघ में मिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका; मौलिक अधिकार, अल्पसंख्यक, प्रांतीय संविधान आदि से संबंधित संविधान सभा की महत्त्वपूर्ण समितियों के सदस्य।

© NCERT not to be republished

बनाया। रज़ाकारों ने लूटपाट मचायी और हत्या तथा बलात्कार पर उतारू हो गए। 1948 के सितंबर में भारतीय सेना, निज़ाम के सैनिकों पर काबू पाने के लिए हैदराबाद आ पहुँची। कुछ रोज तक रुक-रुक कर लड़ाई चली और इसके बाद निज़ाम ने आत्मसमर्पण कर दिया। निज़ाम के आत्मसमर्पण के साथ ही हैदराबाद का भारत में विलय हो गया।

मैं सोचता हूँ कि आखिर उन सैकड़ों राजा-रानी, राजकुमार और राजकुमारियों का क्या हुआ होगा। आखिर आम नागरिक बनने के बाद उनका जीवन कैसा रहा होगा?

मणिपुर

आज़ादी के चंद रोज पहले मणिपुर के महाराजा बोधचंद्र सिंह ने भारत सरकार के साथ भारतीय संघ में अपनी रियासत के विलय के एक सहमति-पत्र पर हस्ताक्षर किए थे। इसकी एवज में उन्हें यह आश्वासन दिया गया था कि मणिपुर की आंतरिक स्वायत्तता बरकरार रहेगी। जनमत के दबाव में महाराजा ने 1948 के जून में चुनाव करवाया और इस चुनाव के फलस्वरूप मणिपुर की रियासत में संवैधानिक राजतंत्र कायम हुआ। मणिपुर भारत का पहला भाग है जहाँ सार्वभौम वयस्क मताधिकार के सिद्धांत को अपनाकर चुनाव हुए।

मणिपुर की विधानसभा में भारत में विलय के सवाल पर गहरे मतभेद थे। मणिपुर की कांग्रेस चाहती थी कि इस रियासत को भारत में मिला दिया जाए जबकि दूसरी राजनीतिक पार्टियाँ इसके खिलाफ थीं। भारत सरकार ने महाराजा को राजी किया कि वे भारतीय संघ में शामिल होने के समझौते पर हस्ताक्षर कर दें। 1949 के सितंबर में, भारत सरकार को इसमें सफलता मिली।

साभार: आर.के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ़ इंडिया

यह कार्टून रज़वाड़ों की जनता और वहाँ के शासकों के आपसी संबंधों पर टिप्पणी करता है। पटेल रजवाड़ों की समस्या को जिस ढंग से हल करना चाहते थे उसकी भी एक झलक इस कार्टून में देखी जा सकती है।

© NCERT not to be republished

राज्यों का पुनर्गठन

बँटवारे और देसी रियासतों के विलय के साथ ही राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया का अंत नहीं हुआ। भारतीय प्रांतों की आंतरिक सीमाओं को तय करने की चुनौती अभी सामने थी। यह महज प्रशासनिक विभाजन का मामला न था। प्रांतों की सीमाओं को इस तरह तय करने की चुनौती थी कि देश की भाषाई और सांस्कृतिक बहुलता की झलक मिले, साथ ही राष्ट्रीय एकता भी खंडित न हो।

औपनिवेशिक शासन के समय प्रांतों की सीमाएँ प्रशासनिक सुविधा के लिहाज से तय की गई थीं या ब्रिटिश सरकार ने जितने क्षेत्र को जीत लिया हो उतना क्षेत्र एक अलग प्रांत मान लिया जाता था। प्रांतों की सीमा इस बात से भी तय होती थी कि किसी रजवाड़े के अंतर्गत कितना इलाका शामिल है।

हमारी राष्ट्रीय सरकार ने ऐसे सीमांकन को बनावटी मानकर खारिज कर दिया। उसने भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का वायदा किया। सन् 1920 में कांग्रेस का नागपुर अधिवेशन हुआ था। दरअसल, इसके बाद से ही इस सिद्धांत को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने मान लिया था कि राज्यों का पुनर्गठन भाषा के आधार पर होगा। अनेक प्रांतीय कांग्रेस-समितियों को भाषाई इलाके के आधार पर बनाया गया था और ये समितियाँ ब्रिटिश इंडिया के प्रशासनिक विभाजन को अपने कामकाज में नहीं बरतती थीं।

आज़ादी और बँटवारे के बाद स्थितियाँ बदलीं। हमारे नेताओं को चिंता हुई कि अगर भाषा के आधार पर प्रांत बनाए गए तो इससे अव्यवस्था फैल सकती है तथा देश के टूटने का खतरा पैदा हो सकता है। हमारे नेताओं को यह भी लग रहा था कि भाषावार राज्यों के गठन से दूसरी सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों से ध्यान भटक सकता है जबकि देश इन चुनौतियों की चपेट में है। केंद्रीय नेतृत्व ने इस मसले को स्थगित करने का फ़ैसला किया। रजवाड़ों का मसला अभी हल नहीं हुआ था। बँटवारे की यादें अभी ताज़ा थीं

केंद्रीय नेतृत्व के इस फ़ैसले को स्थानीय नेताओं और लोगों ने चुनौती दी। पुराने मद्रास प्रांत के तेलुगु-भाषी क्षेत्रों में विरोध भड़क उठा। पुराने मद्रास प्रांत में आज के तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश शामिल थे। इसके कुछ हिस्से मौजूदा केरल एवं कर्नाटक में भी हैं। विशाल आंध्र आंदोलन (आंध्र प्रदेश नाम से अलग राज्य बनाने के लिए चलाया गया आंदोलन) ने माँग की कि मद्रास प्रांत के तेलुगुभाषी इलाकों को अलग करके एक नया राज्य आंध्र प्रदेश बनाया जाए। तेलुगु-भाषी क्षेत्र की लगभग सारी राजनीतिक शक्तियाँ मद्रास प्रांत के भाषाई पुनर्गठन के पक्ष में थीं।

केंद्र सरकार 'हाँ-ना' की दुविधा में थी और उसकी इस मनोदशा से इस आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा। कांग्रेस के नेता और दिग्गज गाँधीवादी, पोट्टी श्रीरामुलु, अनिश्चितकालीन भूख-हड़ताल पर बैठ गए। 56 दिनों की भूख-हड़ताल के बाद उनकी मृत्यु हो गई। इससे बड़ी अव्यवस्था फैली और आंध्र प्रदेश में जगह-जगह हिंसक घटनाएँ हुईं। लोग बड़ी संख्या में सड़कों पर निकल आए। पुलिस फायरिंग में अनेक लोग घायल हुए या मारे गए। मद्रास में अनेक विधायकों ने विरोध जताते हुए अपनी सीट से इस्तीफा दे दिया। आखिरकार 1952 के दिसंबर में प्रधानमंत्री ने आंध्र प्रदेश नाम से अलग राज्य बनाने की घोषणा की।

> *...यदि प्रांतों का गठन भाषावार हुआ तो क्षेत्रीय भाषाओं का ज़ोर बढ़ेगा। हिंदुस्तानी को सभी प्रांतों में शिक्षा का माध्यम बनाने का कोई अर्थ न रह जाएगा और अंग्रेज़ी को इस उद्देश्य के लिए इस्तेमाल करना तो और भी व्यर्थ है।*
>
> **महात्मा गाँधी**
> जनवरी 1948

© NCERT not to be republished

नोटः यह नक्शा किसी पैमाने के हिसाब से बनाया गया भारत का मानचित्र नहीं है। इसमें दिखाई गई भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को प्रामाणिक सीमा रेखा न माना जाए।

राज्यों के पुनर्गठन के बाद भारत का प्रशासनिक मानचित्र-1961

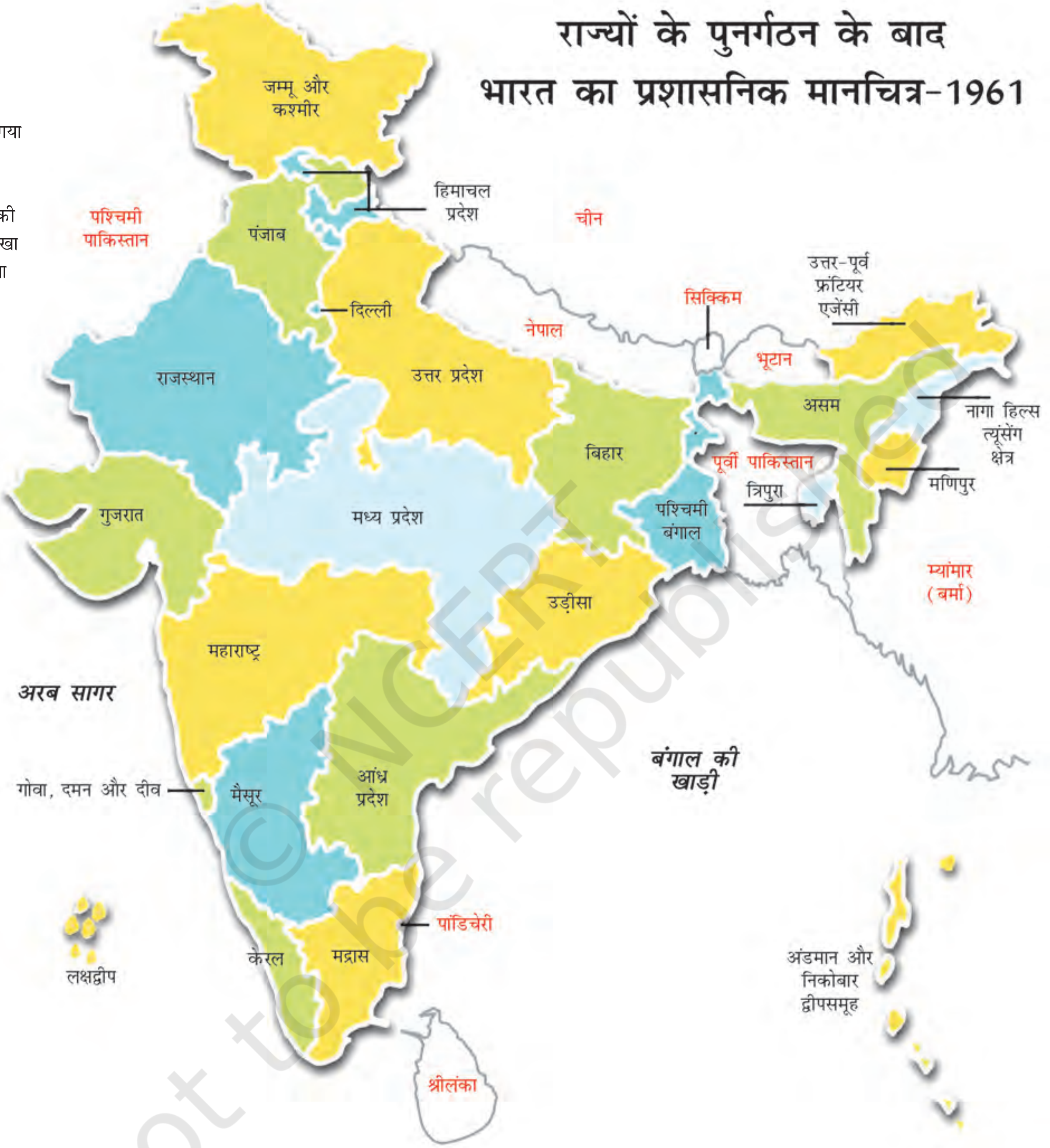

मानचित्र को ध्यान से देखें और निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें:

1. स्वतंत्र राज्य बनने से पहले निम्नलिखित राज्य किन मूल राज्यों के अंग थे?
   (क) गुजरात (ख) हरियाणा
   (ग) मेघालय (घ) छत्तीसगढ़
2. देश के विभाजन से प्रभावित दो राज्यों के नाम बताएँ?
3. दो ऐसे राज्यों के नाम बताएँ जो पहले संघ-शासित राज्य थे?

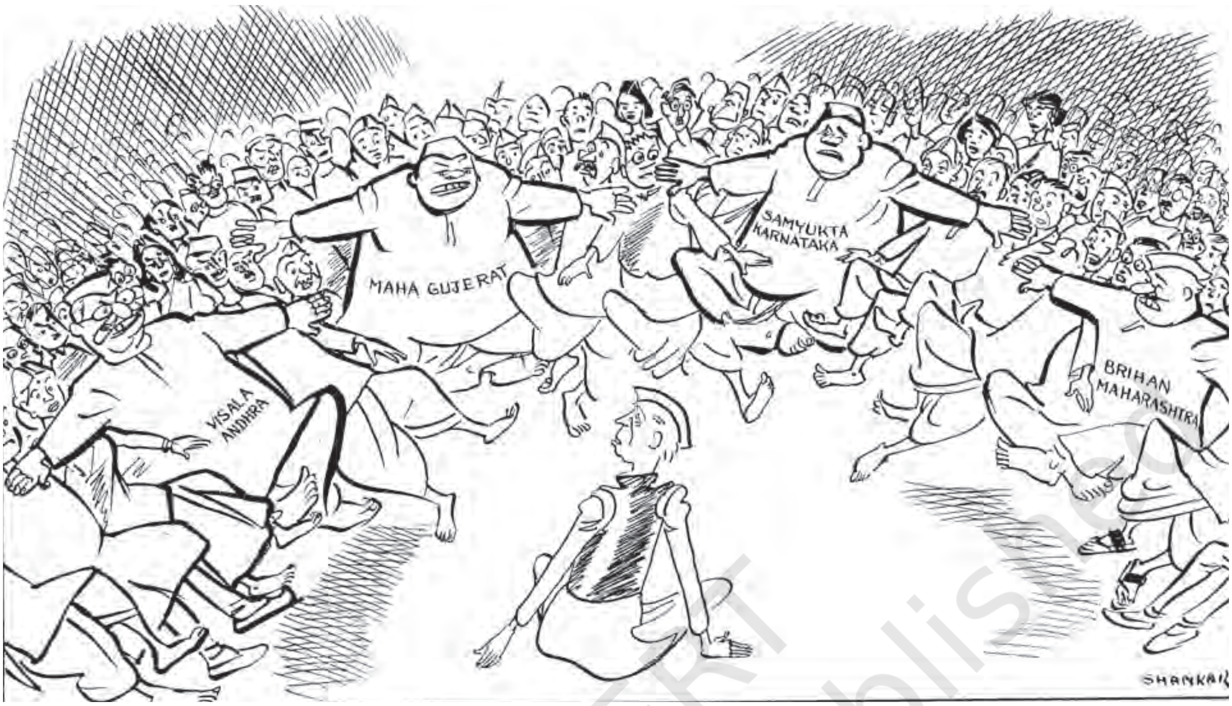

साभार : शंकर

'स्ट्रगल फॉर सरवाइवल' (26 जुलाई 1953) शीर्षक यह कार्टून उस दौर के माहौल को दर्शाता है जब राज्यों को भाषाई आधार पर गठित करने की माँग ज़ोर पकड़ रही थी।

आंध्र के गठन के साथ ही देश के दूसरे हिस्सों में भी भाषाई आधार पर राज्यों को गठित करने का संघर्ष चल पड़ा। इन संघर्षों से बाध्य होकर केंद्र सरकार ने 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग बनाया। इस आयोग का काम राज्यों के सीमांकन के मामले पर गौर करना था। इसने अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया कि राज्यों की सीमाओं का निर्धारण वहाँ बोली जाने वाली भाषा के आधाार पर होना चाहिए। इस आयोग की रिपोर्ट के आधार पर 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम पास हुआ। इस अधिनियम के आधार पर 14 राज्य और 6 केंद्र-शासित प्रदेश बनाए गए।

पोट्टी श्रीरामुलु (1901-1952): गाँधीवादी कार्यकर्ता; नमक सत्याग्रह में भाग लेने के लिए सरकारी नौकरी छोड़ी; वैयक्तिक सत्याग्रह में भी भागीदारी; 1946 में इस माँग को लेकर उपवास पर बैठे कि मद्रास प्रांत के मंदिर दलितों के लिए खोल दिए जाएँ; आंध्र नाम से अलग राज्य बनाने की माँग को लेकर 19 अक्तूबर 1952 से आमरण अनशन; 15 दिसम्बर 1952 को अनशन के दौरान मृत्यु।

है न दिलचस्प बात? नेहरू और बाकी नेता बड़े लोकप्रिय थे तो भी भाषाई राज्य की माँग को लेकर लोग उनकी इच्छा के विरुद्ध आंदोलन करने से नहीं हिचकिचाए।

© NCERT not to be republished

साभार: शंकर

'कोक्सिंग द जेनी' (5 फरवरी, 1956) शीर्षक इस कार्टून में राज्य पुनर्गठन आयोग की भाषाई विवाद को सुलझाने की क्षमता पर सवाल उठाया गया है।

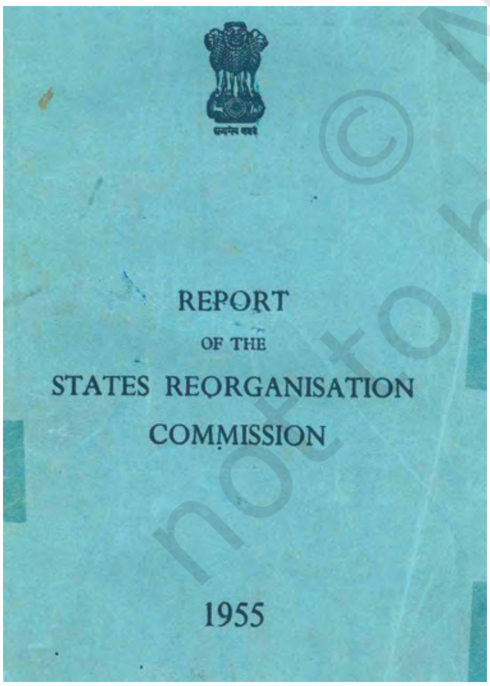

आज़ादी के बाद के शुरुआती सालों में एक बड़ी चिंता यह थी कि अलग राज्य बनाने की माँग से देश की एकता पर आँच आएगी। आशंका थी कि नए भाषाई राज्यों में अलगाववाद की भावना पनपेगी और नव-निर्मित भारतीय राष्ट्र पर दबाव बढ़ेगा। जनता के दबाव में आखिरकर नेतृत्व ने भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का मन बनाया। उम्मीद थी कि अगर हर इलाके के क्षेत्रीय और भाषाई दावे को मान लिया गया तो बँटवारे और अलगाववाद के खतरे में कमी आएगी। इसके अलावा क्षेत्रीय माँगों को मानना और भाषा के आधार पर नए राज्यों का गठन करना एक लोकतांत्रिक कदम के रूप में भी देखा गया।

भाषावार राज्यों के पुनर्गठन की घटना को आज 50 साल से भी अधिक समय हो गया। हम कह सकते हैं कि भाषाई राज्य तथा इन राज्यों के गठन के लिए चले आंदोलनों ने लोकतांत्रिक राजनीति तथा नेतृत्व की प्रकृति को बुनियादी रूपों में बदला है। राजनीति और सत्ता में भागीदारी का रास्ता अब एक छोटे-से अंग्रेजीभाषी अभिजात तबके के लिए ही नहीं, बाकियों के लिए भी खुल चुका था। भाषावार पुनर्गठन से राज्यों के सीमांकन के लिए

© NCERT not to be republished

एक समरूप आधार भी मिला। बहुतों की आशंका के विपरीत इससे देश नहीं टूटा। इसके विपरीत देश की एकता और ज़्यादा मज़बूत हुई। सबसे बड़ी बात यह कि भाषावार राज्यों के पुनर्गठन से विभिन्नता के सिद्धांत को स्वीकृति मिली। जब हम कहते हैं कि भारत ने लोकतंत्र अपनाया है तो इसका सीधा-सा मतलब इतना भर नहीं होता कि भारत में लोकतांत्रिक संविधान पर अमल होता है अथवा भारत में चुनाव करवाए जाते हैं। भारत के लोकतांत्रिक होने का एक वृहत्तर अर्थ है। लोकतंत्र को चुनने का अर्थ था विभिन्नताओं को पहचानना और उन्हें स्वीकार करना। साथ ही, यह मानकर चलना कि विभिन्नताओं में आपसी विरोध भी हो सकते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो भारत में लोकतंत्र की धारणा विचारों और जीवन-पद्धतियों की बहुलता की धारणा से जुड़ी हुई थी। आगे के दिनों में अधिकतर राजनीति इसी दायरे में चली।

कुछ आगे की...

नए राज्यों का निर्माण

भाषावार राज्यों को पुनर्गठित करने के सिद्धांत को मान लेने का अर्थ यह नहीं था कि सभी राज्य तत्काल भाषाई राज्य में तब्दील हो गए। एक प्रयोग द्विभाषी राज्य बंबई के रूप में किया गया जिसमें गुजराती और मराठी भाषा बोलने वाले लोग थे। एक जन-आंदोलन के बाद सन् 1960 में महाराष्ट्र और गुजरात राज्य बनाए गए।

पंजाब में भी हिन्दी-भाषी और पंजाबी-भाषी दो समुदाय थे। पंजाबी-भाषी लोग अलग राज्य की माँग कर रहे थे। बहरहाल, बाकी राज्यों की तरह उनकी माँग 1956 में नहीं ही मानी गई। दस साल बाद यानी 1966 में पंजाबी-भाषी इलाके को पंजाब राज्य का दर्ज़ा दिया गया और वृहत्तर पंजाब से अलग करके हरियाणा और हिमाचल प्रदेश नाम के राज्य बनाए गए।

1972 में एक बार फिर राज्यों के पुनर्गठन का एक बड़ा प्रयास पूर्वोत्तर में हुआ। असम से अलग करके 1972 में मेघालय बनाया गया। इसी साल मणिपुर और त्रिपुरा भी अलग राज्य के रूप में अस्तित्व में आए। मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश 1987 में वजूद में आए जबकि नगालैंड इससे कहीं पहले यानी 1963 में ही राज्य बन गया था।

बहरहाल, राज्यों के पुनर्गठन में सिर्फ़ भाषा को आधार बनाया गया हो, ऐसी बात नहीं। बाद के वर्षों में अनेक उप-क्षेत्रों ने अलग क्षेत्रीय संस्कृति अथवा विकास के मामले में क्षेत्रीय असंतुलन के सवाल उठाकर अलग राज्य बनाने की माँग की। ऐसे तीन राज्य—छत्तीसगढ़, उत्तराखंड और झारखंड—सन् 2000 में बने। 2 जून 2014 को तेलंगाना भी एक नए राज्य के रूप में जुड़ गया है। राज्यों के पुनर्गठन की कथा अभी समाप्त नहीं हुई है। देश के अनेक इलाकों में छोटे-छोटे अलग राज्य बनाने की माँग को लेकर आंदोलन चल रहे हैं। महाराष्ट्र में विदर्भ, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हरित प्रदेश और पश्चिम बंगाल के उत्तरी भाग में राज्य बनाने के ऐसे आंदोलन चल रहे हैं।

प्रश्नावली

1. भारत-विभाजन के बारे में निम्नलिखित कौन-सा कथन गलत है?
   (क) भारत-विभाजन "द्वि-राष्ट्र सिद्धांत" का परिणाम था।
   (ख) धर्म के आधार पर दो प्रांतों–पंजाब और बंगाल–का बँटवारा हुआ।
   (ग) पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान में संगति नहीं थी।
   (घ) विभाजन की योजना में यह बात भी शामिल थी कि दोनों देशों के बीच आबादी की अदला-बदली होगी।

2. निम्नलिखित सिद्धांतों के साथ उचित उदाहरणों का मेल करें :

(क) धर्म के आधार पर देश की सीमा का निर्धारण	1. पाकिस्तान और बांग्लादेश
(ख) विभिन्न भाषाओं के आधार पर देश की सीमा का निर्धारण	2. भारत और पाकिस्तान
(ग) भौगोलिक आधार पर किसी देश के क्षेत्रों का सीमांकन	3. झारखंड और छत्तीसगढ़
(घ) किसी देश के भीतर प्रशासनिक और राजनीतिक आधार पर क्षेत्रों का सीमांकन	4. हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड

3. भारत का कोई समकालीन राजनीतिक नक्शा लीजिए (जिसमें राज्यों की सीमाएँ दिखाई गई हों) और नीचे लिखी रियासतों के स्थान चिह्नित कीजिए–

   (क) जूनागढ़ (ख) मणिपुर
   (ग) मैसूर (घ) ग्वालियर

4. नीचे दो तरह की राय लिखी गई है :

   विस्मय : रियासतों को भारतीय संघ में मिलाने से इन रियासतों की प्रजा तक लोकतंत्र का विस्तार हुआ।

   इंद्रप्रीत : यह बात मैं दावे के साथ नहीं कह सकता। इसमें बलप्रयोग भी हुआ था जबकि लोकतंत्र में आम सहमति से काम लिया जाता है।

   देशी रियासतों के विलय और ऊपर के मशविरे के आलोक में इस घटनाक्रम पर आपकी क्या राय है?

5. नीचे 1947 के अगस्त के कुछ बयान दिए गए हैं जो अपनी प्रकृति में अत्यंत भिन्न हैं :

   आज आपने अपने सर पर काँटों का ताज पहना है। सत्ता का आसन एक बुरी चीज़ है। इस आसन पर आपको बड़ा सचेत रहना होगा... आपको और ज़्यादा विनम्र और धैर्यवान बनना होगा... अब लगातार आपकी परीक्षा ली जाएगी।

   –मोहनदास करमचंद गाँधी

   ...भारत आज़ादी की जिंदगी के लिए जागेगा... हम पुराने से नए की ओर कदम बढ़ाएँगे... आज दुर्भाग्य के एक दौर का खात्मा होगा और हिंदुस्तान अपने को फिर से पा लेगा... आज हम जो जश्न मना रहे हैं वह एक कदम भर है, संभावनाओं के द्वार खुल रहे हैं...

   –जवाहरलाल नेहरू

   इन दो बयानों से राष्ट्र-निर्माण का जो एजेंडा ध्वनित होता है उसे लिखिए। आपको कौन-सा एजेंडा जँच रहा है और क्यों?

© NCERT not to be republished

6. भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बनाने के लिए नेहरू ने किन तर्कों का इस्तेमाल किया। क्या आपको लगता है कि ये केवल भावनात्मक और नैतिक तर्क हैं अथवा इनमें कोई तर्क युक्तिपरक भी है?
7. आज़ादी के समय देश के पूर्वी और पश्चिमी इलाकों में राष्ट्र-निर्माण की चुनौती के लिहाज़ से दो मुख्य अंतर क्या थे?
8. राज्य पुनर्गठन आयोग का काम क्या था? इसकी प्रमुख सिफारिश क्या थी?
9. कहा जाता है कि राष्ट्र एक व्यापक अर्थ में 'कल्पित समुदाय' होता है और सर्वसामान्य विश्वास, इतिहास, राजनीतिक आकांक्षा और कल्पनाओं से एकसूत्र में बँधा होता है। उन विशेषताओं की पहचान करें जिनके आधार पर भारत एक राष्ट्र है।
10. नीचे लिखे अवतरण को पढ़िए और इसके आधार पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

राष्ट्र-निर्माण के इतिहास के लिहाज से सिर्फ़ सोवियत संघ में हुए प्रयोगों की तुलना भारत से की जा सकती है। सोवियत संघ में भी विभिन्न और परस्पर अलग-अलग जातीय समूह, धर्म, भाषाई समुदाय और सामाजिक वर्गों के बीच एकता का भाव कायम करना पड़ा। जिस पैमाने पर यह काम हुआ, चाहे भौगोलिक पैमाने के लिहाज़ से देखें या जनसंख्यागत वैविध्य के लिहाज़ से, वह अपनेआप में बहुत व्यापक कहा जाएगा। दोनों ही जगह राज्य को जिस कच्ची सामग्री से राष्ट्र-निर्माण की शुरुआत करनी थी वह समान रूप से दुष्कर थी। लोग धर्म के आधार पर बँटे हुए और कर्ज़ तथा बीमारी से दबे हुए थे।

–रामचंद्र गुहा

(क) यहाँ लेखक ने भारत और सोवियत संघ के बीच जिन समानताओं का उल्लेख किया है, उनकी एक सूची बनाइए। इनमें से प्रत्येक के लिए भारत से एक उदाहरण दीजिए।

(ख) लेखक ने यहाँ भारत और सोवियत संघ में चली राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रियाओं के बीच की असमानता का उल्लेख नहीं किया है। क्या आप दो असमानताएँ बता सकते हैं?

(ग) अगर पीछे मुड़कर देखें तो आप क्या पाते हैं? राष्ट्र-निर्माण के इन दो प्रयोगों में किसने बेहतर काम किया और क्यों?

खुद करें-खुद समझें

किसी भारतीय अथवा पाकिस्तानी/बांग्लादेशी कथाकार की लिखी कोई कहानी या उपन्यास पढ़ें जिसमें बँटवारे का जिक्र आया हो। सीमा के इस तरफ़ के लोगों और सीमा के उस तरफ़ के लोगों के अनुभव कैसे एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं?

'खोजबीन' शीर्षक के अंतर्गत इस अध्याय में सुझाई गई तमाम कथाओं को एकत्र करें। एक वॉलपेपर तैयार करें और इसमें मिलते-जुलते अनुभवों वाले स्थल को रेखांकित करें। साथ ही, किसी अनूठे अनुभव को भी इसमें स्थान दें।

© NCERT not to be republished

साभार: शंकर

शंकर का यह मुखपृष्ठ प्रसिद्ध कार्टून उनके संग्रह 'डॉन्ट स्पेयर मी शंकर' के मुखपृष्ठ से लिया गया है। मूल कार्टून भारत की चीन नीति पर बनाया गया था लेकिन यहाँ यह कार्टून एक-दलीय प्रभुत्व के समय कांग्रेस द्वारा निभाई जा रही सत्ता पक्ष और विपक्ष की दोहरी भूमिका और दोहरी नीति को भी दर्शाता है।

इस अध्याय में...

पिछले अध्याय में हमने राष्ट्र-निर्माण की चुनौती के बारे में चर्चा की थी। राष्ट्र-निर्माण की चुनौती के तुरंत बाद हमारे सामने एक और चुनौती लोकतांत्रिक राजनीति की ज़मीन तैयार करने की थी। राजनीतिक दलों के बीच चुनावी प्रतिस्पर्धा आज़ादी के तुरंत बाद शुरू हो गई थी। इस अध्याय में हम चुनावी राजनीति के पहले दशक की बातों पर गौर करेंगे। इस चर्चा से हम निम्नलिखित बातों को समझ सकेंगे :

- एक स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव-प्रणाली की स्थापना;
- आज़ादी के बाद के शुरुआती सालों में कांग्रेस पार्टी का दबदबा;
- विपक्षी दलों और उनकी नीतियों का उद्भव।

© NCERT not to be republished

अध्याय 2

एक दल के प्रभुत्व का दौर

12122CH02

लोकतंत्र स्थापित करने की चुनौती

आपको अब अंदाज़ा लग चुका होगा कि स्वतंत्र भारत का जन्म किन कठिन परिस्थितियों में हुआ। अपने देश के सामने शुरुआत से ही राष्ट्र-निर्माण की चुनौती थी और इन गंभीर चुनौतियों के बारे में आप पढ़ चुके हैं। ऐसी चुनौतियों की चपेट में आकर कई अन्य देशों के नेताओं ने फ़ैसला किया कि उनके देश में अभी लोकतंत्र को नहीं अपनाया जा सकता है। इन नेताओं ने कहा कि राष्ट्रीय एकता हमारी पहली प्राथमिकता है और लोकतंत्र को अपनाने से मतभेद और संघर्ष को बढ़ावा मिलेगा। उपनिवेशवाद के चंगुल से आज़ाद हुए कई देशों में इसी कारण अलोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था कायम हुई। इस अलोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था के कई रूप थे। कहीं पर थोड़ा-बहुत लोकतंत्र रहा, लेकिन प्रभावी नियंत्रण किसी एक नेता के हाथ में था तो कहीं पर एक दल का शासन कायम हुआ और कहीं-कहीं पर सीधे-सीधे सेना ने सत्ता की बागडोर सँभाली। अलोकतांत्रिक शासन व्यवस्थाओं की शुरुआत इस वायदे से हुई कि जल्दी ही लोकतंत्र कायम कर दिया जाएगा। बहरहाल, एक बार कहीं अलोकतांत्रिक शासन के पाँव जम गए तो फिर उसे बदल पाना मुश्किल होता गया।

भारत में भी परिस्थितियाँ बहुत अलग नहीं थीं, लेकिन आज़ाद भारत के नेताओं ने अपने लिए कहीं ज़्यादा कठिन रास्ता चुनने का फ़ैसला किया। नेताओं ने कोई और रास्ता चुना होता तो वह आश्चर्य की बात होती क्योंकि हमारे स्वतंत्रता-संग्राम की गहरी प्रतिबद्धता लोकतंत्र से थी। हमारे नेता लोकतंत्र में राजनीति की निर्णायक भूमिका को लेकर सचेत थे। वे राजनीति को समस्या के रूप में नहीं देखते थे; वे राजनीति को समस्या के समाधान का उपाय मानते थे। हर समाज के लिए यह फ़ैसला करना ज़रूरी होता है कि उसका शासन कैसे चलेगा और वह किन कायदे-कानूनों पर अमल करेगा। चुनने के लिए हमेशा कई नीतिगत विकल्प मौजूद होते हैं। किसी भी समाज में कई समूह होते हैं। इनकी आकांक्षाएँ अकसर अलग-अलग और एक-दूसरे के विपरीत होती हैं। ऐसे में हम विभिन्न समूहों के हितों के आपसी टकराव से कैसे निपट सकते हैं? इसी सवाल का जवाब है–लोकतांत्रिक राजनीति। सत्ता और प्रतिस्पर्धा राजनीति की दो सबसे ज़्यादा ज़ाहिर चीज़ें हैं। लेकिन, राजनीतिक गतिविधि का उद्देश्य जनहित का फ़ैसला करना और उस पर अमल करना होता है और ऐसा होना भी चाहिए। हमारे नेताओं ने इसी रास्ते को चुनने का फ़ैसला किया।

पिछले साल आपने पढ़ा कि हमारा संविधान कैसे बना। आपको याद होगा कि हमारा संविधान 26 नवम्बर 1949 को अंगीकृत किया गया और 24 जनवरी 1950 को इस पर हस्ताक्षर हुए। यह संविधान 26 जनवरी 1950 से अमल में आया। उस वक्त देश का शासन अंतरिम सरकार चला रही थी। वक्त का तकाज़ा था कि देश का शासन लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित सरकार द्वारा चलाया जाए। संविधान ने नियम तय कर दिए थे और अब इन्हीं नियमों पर अमल करने की ज़रूरत थी। शुरू-शुरू में ख्याल था कि यह काम महज चंद महीनों का है। भारत के चुनाव आयोग का गठन 1950 के जनवरी में हुआ। सुकुमार सेन पहले चुनाव आयुक्त बने। उम्मीद की जा रही थी कि देश का पहला आम चुनाव 1950 में ही किसी वक्त हो जाएगा।

"हिंदुस्तान की राजनीति में नायक-पूजा जितनी बड़ी भूमिका अदा करती है, उसकी तुलना दुनिया के किसी भी देश की राजनीति में मौजूद नायक-पूजा के भाव से नहीं की जा सकती... लेकिन राजनीति में नायक-पूजा का भाव सीधे पतन की ओर ले जाता है और यह रास्ता तानाशाही की तरफ़ जाता है..."

डॉ. भीमराव अंबेडकर
संविधान सभा में भाषण
25 नवंबर, 1949

हमारे लोकतंत्र में ही ऐसी कौन-सी खूबी है? आखिर देर-सबेर हर देश ने लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपना ही लिया है। है न?

© NCERT not to be republished

बहरहाल, चुनाव आयोग ने पाया कि भारत के आकार को देखते हुए एक स्वतंत्र और निष्पक्ष आम चुनाव कराना कोई आसान मामला नहीं है। चुनाव कराने के लिए चुनाव क्षेत्रों का सीमांकन ज़रूरी था। फिर, मतदाता-सूची यानी मताधिकार प्राप्त वयस्क व्यक्तियों की सूची बनाना भी आवश्यक था। इन दोनों कामों में बहुत सारा समय लगा। मतदाता-सूचियों का जब पहला प्रारूप प्रकाशित हुआ तो पता चला कि इसमें 40 लाख महिलाओं के नाम दर्ज़ होने से रह गए हैं। इन महिलाओं को 'अलां की बेटी' 'फलां की बीवी'.... के रूप में दर्ज़ किया गया था। चुनाव आयोग ने ऐसी प्रविष्टियों को मानने से इनकार कर दिया। आयोग ने फ़ैसला किया कि संभव हो तो इसका पुनरावलोकन किया जाए और ज़रूरी लगे तो ऐसी प्रविष्टियों को हटाया जाए। यह अपने आप में हिमालय की चढ़ाई जैसा दुष्कर काम था। इतने बड़े पैमाने का ऐसा काम दुनिया में अब तक नहीं हुआ था। उस वक्त देश में 17 करोड़ मतदाता थे। इन्हें 3200 विधायक और लोकसभा के लिए 489 सांसद चुनने थे। इन मतदाताओं में महज 15 फीसदी साक्षर थे। इस कारण चुनाव आयोग को मतदान की विशेष पद्धति के बारे में भी सोचना पड़ा। चुनाव आयोग ने चुनाव कराने के लिए 3 लाख से ज्यादा अधिकारियों और चुनावकर्मियों को प्रशिक्षित किया।

देश के विशाल आकार और मतदाताओं की भारी-भरकम संख्या के लिहाज़ से ही पहला आम चुनाव अनूठा नहीं था, बल्कि मतदाताओं की एक बड़ी तादाद गरीब और अनपढ़ लोगों की थी और ऐसे माहौल में यह चुनाव लोकतंत्र के लिए परीक्षा की कठिन घड़ी था। इस वक्त तक लोकतंत्र सिर्फ धनी देशों में ही कायम था। उस समय यूरोप के बहुतेरे देशों में महिलाओं को मताधिकार नहीं मिला था। ऐसे में हिंदुस्तान में सार्वभौम मताधिकार पर अमल

साभार : शंकर, 20 मई 1951

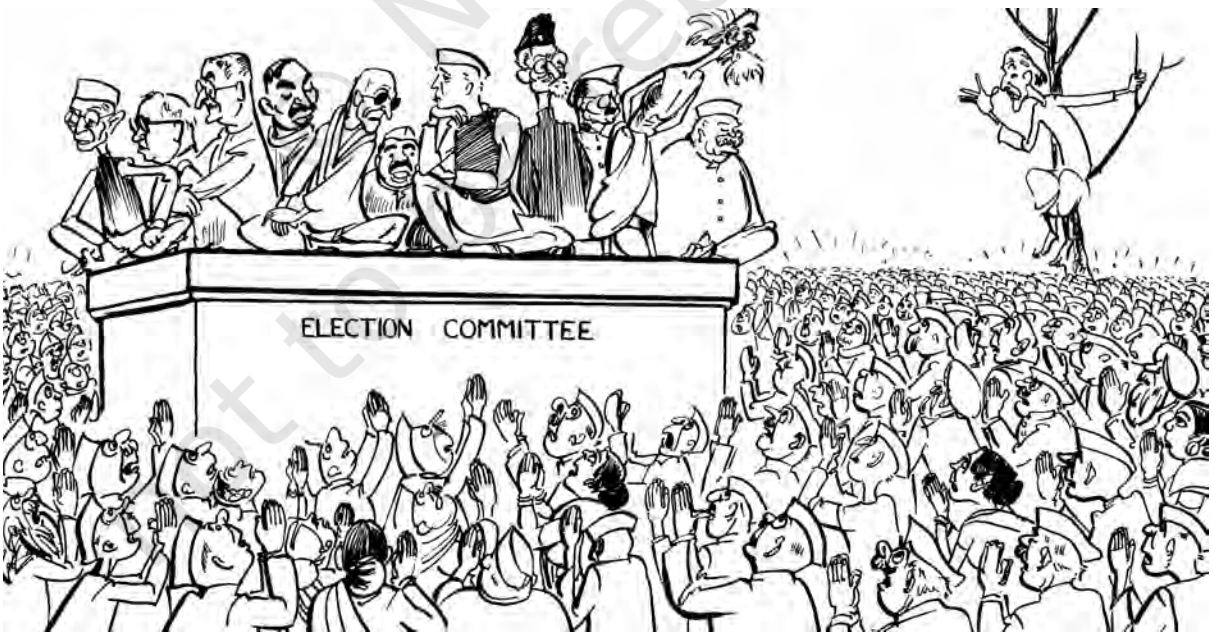

1951 में कांग्रेस द्वारा पार्टी उम्मीदवार चुनने के लिए बनाई गई चुनाव समिति पर कार्टूनिस्ट का एक नज़रिया। समिति में नेहरू के अलावा मोरारजी देसाई, रफ़ी अहमद किदवई, डॉ. बी.सी. रॉय, कामराज नाडार, राजगोपालाचारी, जगजीवन राम, मौलाना आज़ाद, डी.पी. मिश्रा, पी.डी. टंडन और गोविन्द बल्लभ पंत दिखाई दे रहे हैं।

© NCERT not to be republished

मतदान के बदलते तरीके

लोकसभा के तीसरे आम चुनाव से तेरहवें आम चुनाव तक इस्तेमाल किए गए बैलट पेपर का एक नमूना

इन दिनों इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का इस्तेमाल होता है। इसके जरिए मतदाता उम्मीदवारों के बारे में अपनी पसंद जाहिर करते हैं। लेकिन शुरू-शुरू में इसके लिए दूसरा तरीका अपनाया गया था। पहले आम चुनाव में फ़ैसला किया गया था कि हर एक मतदान केंद्र में प्रत्येक उम्मीदवार के लिए एक मतपेटी रखी जाएगी और मतपेटी पर उम्मीदवार का चुनाव-चिह्न अंकित होगा। प्रत्येक मतदाता को एक खाली मतपत्र दिया जाएगा जिसे वह अपने पसंद के उम्मीदवार की मतपेटी में डालेगा। इस काम के लिए तकरीबन 20 लाख स्टील के बक्सों का इस्तेमाल हुआ। पंजाब के एक पीठासीन पदाधिकारी ने मतपेटियों की तैयारी का ब्यौरा कुछ इस तरह बयान किया है : ''हर एक मतपेटी के भीतर और बाहर संबद्ध उम्मीदवार का चुनाव-चिह्न अंकित करना था और मतपेटी के बाहर किसी एक तरफ़ उम्मीदवार का नाम उर्दू, हिंदी और पंजाबी में लिखना था। इसके साथ-साथ चुनाव-क्षेत्र, चुनाव-केंद्र और मतदान-केंद्र की संख्या भी यहीं दर्ज करनी थी। उम्मीदवार के आंकिक ब्यौरे वाला एक कागज़ी मुहरबंद पीठासीन पदाधिकारी के दस्तखत के साथ मतपेटी में लगाना था। मतपेटी के ढक्कन को तार के सहारे बाँधना था और इसी जगह पर मुहरबंद लगाना था। यह सारा काम चुनाव की नियत तारीख से ठीक एक दिन पहले करना था। चुनाव-चिह्न और बाकी ब्यौरों को दर्ज करने के लिए मतपेटी को पहले सरेस कागज या ईंट के टुकड़े से रगड़ना पड़ता था। कुल छह लोगों ने पाँच घंटे लगातार काम किया तब कहीं जाकर यह काम पूरा हुआ। इस काम में मेरी दो बेटियाँ भी लगी हुई थीं। यह सारा काम मेरे घर पर ही हुआ।''

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन

शुरुआती दो चुनावों के बाद यह तरीका बदल दिया गया। अब मतपत्र पर हर उम्मीदवार का नाम और चुनाव-चिह्न अंकित किया जाने लगा। मतदाता को इस मतपत्र पर अपने पसंद के उम्मीदवार के नाम पर मुहर लगानी होती थी। यह तरीका अगले चालीस सालों तक अमल में रहा। सन् 1990 के दशक के अंत में चुनाव आयोग ने इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) का इस्तेमाल शुरू किया। 2004 तक पूरे देश में ईवीएम का इस्तेमाल चालू हो गया।

खोज-बीन

अपने परिवार और पड़ोस के बुजुर्गों से चुनाव में भागीदारी के उनके अनुभवों के बारे में पूछिए।

- क्या इनमें से किसी ने पहले या दूसरे आम चुनाव में भाग लिया था? इन लोगों ने किसको वोट दिया और वोट देने का कारण क्या था?
- क्या इनमें कोई ऐसा व्यक्ति है जिसने तीनों तरीके से मतदान किया हो? कौन-सा तरीका उसे सबसे ज्यादा पसंद आया?
- उस दौर के चुनावों की तुलना में आज के समय के चुनावों में इन्हें क्या-क्या फ़र्क नजर आते हैं?

© NCERT not to be republished

मौलाना अबुल क़लाम आज़ाद (1888-1958): मूल नाम – अबुल कलाम मोहियुद्दीन अहमद; इस्लाम के विद्वान; स्वतंत्रता सेनानी और कांग्रेस के नेता; हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रतिपादक; विभाजन के विरोधी; संविधान सभा के सदस्य; स्वतंत्र भारत में बने पहले मंत्रिमंडल में शिक्षामंत्री

हुआ और यह अपने आप में बड़ा जोखिम भरा प्रयोग था। एक हिंदुस्तानी संपादक ने इसे "इतिहास का सबसे बड़ा जुआ" करार दिया। 'आर्गनाइजर' नाम की पत्रिका ने लिखा कि जवाहरलाल नेहरू "अपने जीवित रहते ही यह देख लेंगे और पछताएँगे कि भारत में सार्वभौम मताधिकार असफल रहा।" इंडियन सिविल सर्विस के एक अँग्रेज़ नुमाइंदे का दावा था कि "आने वाला वक्त और अब से कहीं ज्यादा जानकार दौर बड़े विस्मय से लाखों अनपढ़ लोगों के मतदान की यह बेहूदी नौटंकी देखेगा।"

चुनावों को दो बार स्थगित करना पड़ा और आखिरकार 1951 के अक्तूबर से 1952 के फरवरी तक चुनाव हुए। बहरहाल, इस चुनाव को अमूमन 1952 का चुनाव ही कहा जाता है क्योंकि देश के अधिकांश हिस्सों में मतदान 1952 में ही हुए। चुनाव अभियान, मतदान और मतगणना में कुल छह महीने लगे। चुनावों में उम्मीदवारों के बीच मुकाबला भी हुआ। औसतन हर सीट के लिए चार उम्मीदवार चुनाव के मैदान में थे। लोगों ने इस चुनाव में बढ़-चढ़कर हिस्सेदारी की। कुल मतदाताओं में आधे से अधिक ने मतदान के दिन अपना वोट डाला। चुनावों के परिणाम घोषित हुए तो हारने वाले उम्मीदवारों ने भी इन परिणामों को निष्पक्ष बताया। सार्वभौम मताधिकार के इस प्रयोग ने आलोचकों का मुँह बंद कर दिया। टाइम्स ऑफ इंडिया ने माना कि इन चुनावों ने "उन सभी आलोचकों के संदेहों पर पानी फेर दिया है जो सार्वभौम मताधिकार की इस शुरुआत को इस देश के लिए जोखिम का सौदा मान रहे थे।" देश से बाहर के पर्यवेक्षक भी हैरान थे। हिंदुस्तान टाइम्स ने लिखा- "यह बात हर जगह मानी जा रही है कि भारतीय जनता ने विश्व के इतिहास में लोकतंत्र के सबसे बड़े प्रयोग को बखूबी अंजाम दिया।" 1952 का आम चुनाव पूरी दुनिया में लोकतंत्र के इतिहास के लिए मील का पत्थर साबित हुआ। अब यह दलील दे पाना संभव नहीं रहा कि लोकतांत्रिक चुनाव गरीबी अथवा अशिक्षा के माहौल में नहीं कराए जा सकते। यह बात साबित हो गई कि दुनिया में कहीं भी लोकतंत्र पर अमल किया जा सकता है।

पहले तीन चुनावों में कांग्रेस का प्रभुत्व

पहले आम चुनाव के नतीजों से शायद ही किसी को अचंभा हुआ हो। आशा यही थी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस इस चुनाव में जीत जाएगी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का लोकप्रचलित नाम कांग्रेस पार्टी था और इस पार्टी को स्वाधीनता संग्राम की विरासत हासिल थी। तब के दिनों में यही एकमात्र पार्टी थी जिसका संगठन पूरे देश में था। फिर, इस पार्टी में खुद जवाहरलाल नेहरू थे जो भारतीय राजनीति के सबसे करिश्माई और लोकप्रिय नेता थे। नेहरू ने कांग्रेस पार्टी के चुनाव अभियान की अगुआई की और पूरे देश का दौरा किया। जब चुनाव परिणाम घोषित हुए तो कांग्रेस पार्टी की भारी-भरकम जीत से बहुतों को आश्चर्य हुआ। इस पार्टी ने लोकसभा के पहले चुनाव में कुल 489 सीटों में 364 सीटें जीतीं और इस तरह वह किसी भी प्रतिद्वंद्वी से चुनावी दौड़ में बहुत आगे निकल गई। जहाँ तक सीटों पर जीत हासिल करने का सवाल है, पहले आम चुनाव में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी दूसरे नंबर पर रही। उसे

© NCERT not to be republished

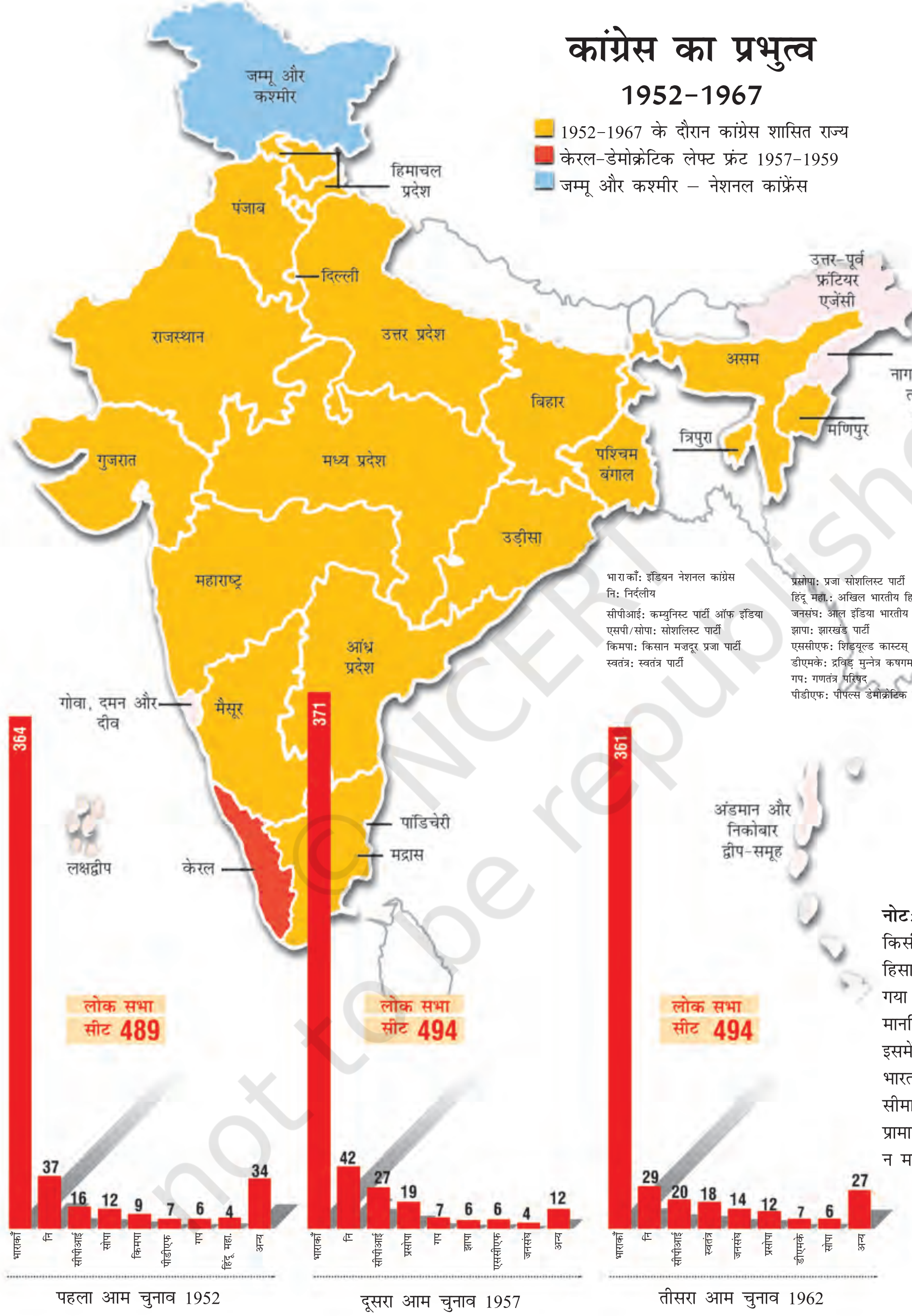

नोट: यह नक्शा किसी पैमाने के हिसाब से बनाया गया भारत का मानचित्र नहीं है। इसमें दिखाई गई भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को प्रामाणिक सीमा रेखा न माना जाए।

क्या आप उन जगहों को पहचान सकते हैं जहाँ कांग्रेस बहुत मज़बूत थी?
किन प्रांतों में दूसरी पार्टियों को ज़्यादातर सीटें मिलीं?

Congress Voted Back To Power At Centre

266 SEATS ANNEXED SO FAR OUT OF 500

THE Congress Party has been voted back to power at the Centre. By Wednesday night, it had secured 266 seats—15 more than needed for an absolute majority in the 500-member Lok Sabha. The combined Opposition strength at that stage was 83.

This verdict in favour of a Congress Government at the Centre for the next five years came o. the same day as the communists made virtually sure of forming a Government in Kerala.

The break up of non Congress parties is P S P 12 C P I and allies 21 Jan Sangh 1 Socialists 7 Jharkhand 5 Peasants and Workers Party 4 Scheduled Castes Federation 5 Hindu Mahasabha 1 Forward Bloc 1 Janata Party (Bihar) 2, Congress Reforms Committee (Madras) 2, Dravida Munnetra Karhagam 2, Ganatantra Parishad

Reds' Success In Kerala

Working Majority Achieved

साभार: द हिंदू

कुल 16 सीट हासिल हुईं। लोकसभा के चुनाव के साथ-साथ विधानसभा के भी चुनाव कराए गए थे। कांग्रेस पार्टी को विधानसभा के चुनावों में भी बड़ी जीत हासिल हुई। त्रावणकोर-कोचीन (आज के केरल का एक हिस्सा), मद्रास और उड़ीसा को छोड़कर सभी राज्यों में कांग्रेस ने अधिकतर सीटों पर जीत दर्ज़ की। आखिरकार इन तीन राज्यों में भी कांग्रेस की ही सरकार बनी। इस तरह राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तर पर पूरे देश में कांग्रेस पार्टी का शासन कायम हुआ। उम्मीद के मुताबिक जवाहरलाल नेहरू पहले आम चुनाव के बाद प्रधानमंत्री बने।

यहाँ एक चुनावी मानचित्र दिया गया है। इस पर एक नज़र दौड़ाने से आपको अंदाज़ा लग जाएगा कि 1952-1962 के बीच कांग्रेस पार्टी किस कदर हावी थी। दूसरा आम चुनाव 1957 में और तीसरा 1962 में हुआ। इन चुनावों में भी कांग्रेस पार्टी ने लोकसभा में अपनी पुरानी स्थिति बरकरार रखी और उसे तीन-चौथाई सीटें मिली। कांग्रेस पार्टी ने जितनी सीटें जीती थीं उसका दशांश भी कोई विपक्षी पार्टी नहीं जीत सकी। विधानसभा के चुनावों में कहीं-कहीं कांग्रेस को बहुमत नहीं मिला। ऐसा ही एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण केरल का है। 1957 में केरल में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की अगुआई में एक गठबंधन सरकार बनी। ऐसे एकाध मामलों को अपवाद मान लें तो कहा जा सकता है कि केंद्र सरकार और प्रांतीय सरकारों पर कांग्रेस पार्टी का पूरा नियंत्रण था।

राजकुमारी अमृतकौर (1889-1964): गाँधीवादी स्वतंत्रता सेनानी; कपूरथला के राजपरिवार में जन्म; विरासत में माता से ईसाई धर्म मिला; संविधान सभा की सदस्य; स्वतंत्र भारत के पहले मंत्रिमंडल में स्वास्थ्य मंत्री; 1957 तक स्वास्थ्य मंत्री के पद पर रहीं।

कांग्रेस पार्टी की जीत का यह आँकड़ा और दायरा हमारी चुनाव-प्रणाली के कारण भी बढ़ा-चढ़ा दिखता है। चुनाव प्रणाली के कारण कांग्रेस पार्टी की जीत को अलग से बढ़ावा मिला। मिसाल के लिए, 1952 में कांग्रेस पार्टी को कुल वोटों में से मात्र 45 प्रतिशत वोट हासिल हुए थे लेकिन कांग्रेस को 74 फीसदी सीटें हासिल हुईं। सोशलिस्ट पार्टी वोट हासिल करने के लिहाज़ से दूसरे नंबर पर रही। उसे 1952 के चुनाव में पूरे देश में कुल 10 प्रतिशत वोट मिले थे लेकिन यह पार्टी 3 प्रतिशत सीटें भी नहीं जीत पायी। आखिर यह हुआ कैसे? पिछले साल 'भारतीय संविधान : सिद्धान्त और व्यवहार' नामक किताब में आपने 'सर्वाधिक वोट पाने वाले की जीत' के बारे में पढ़ा था। इससे जुड़ी चर्चा को अगर याद करें तो आपको इस सवाल का जवाब मिल जाएगा।

हमारे देश की चुनाव-प्रणाली में 'सर्वाधिक वोट पाने वाले की जीत' के तरीके को अपनाया गया है। ऐसे में अगर कोई पार्टी बाकियों की अपेक्षा थोड़े ज्यादा वोट हासिल करती है तो दूसरी पार्टियों को प्राप्त वोटों के अनुपात की तुलना में उसे कहीं ज्यादा सीटें हासिल होती हैं। यही चीज कांग्रेस पार्टी के पक्ष में साबित हुई। अगर हम सभी गैर-कांग्रेसी उम्मीदवारों के वोट जोड़ दें तो वह कांग्रेस पार्टी को हासिल कुल वोट से कहीं ज्यादा होंगे। लेकिन गैर-कांग्रेसी वोट विभिन्न प्रतिस्पर्धी पार्टियों और उम्मीदवारों में बँट गए। इस तरह कांग्रेस बाकी पार्टियों की तुलना में आगे रही और उसने ज्यादा सीटें जीतीं।

© NCERT not to be republished

केरल में कम्युनिस्टों की जीत

1957 में ही कांग्रेस पार्टी को केरल में हार का स्वाद चखना पड़ गया था। 1957 के मार्च महीने में जो विधानसभा के चुनाव हुए उसमें कम्युनिस्ट पार्टी को केरल की विधानसभा के लिए सबसे ज्यादा सीटें मिलीं। कम्युनिस्ट पार्टी को कुल 126 में से 60 सीटें हासिल हुईं और पाँच स्वतंत्र उम्मीदवारों का भी समर्थन इस पार्टी को प्राप्त था। राज्यपाल ने कम्युनिस्ट विधायक दल के नेता ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद को सरकार बनाने का न्यौता दिया। दुनिया में यह पहला अवसर था जब एक कम्युनिस्ट पार्टी की सरकार लोकतांत्रिक चुनावों के जरिए बनी।

केरल में सत्ता से बेदखल होने पर कांग्रेस पार्टी ने निर्वाचित सरकार के खिलाफ़ 'मुक्ति संघर्ष' छेड़ दिया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी सत्ता में इस वायदे के साथ आई थी कि वह कुछ क्रांतिकारी तथा प्रगतिशील नीतिगत पहल करेगी। कम्युनिस्टों का कहना था कि इस संघर्ष की अगुआई निहित स्वार्थ और धार्मिक संगठन कर रहे हैं। 1959 में केंद्र की कांग्रेस सरकार ने संविधान के अनुच्छेद 356 के अंतर्गत केरल की कम्युनिस्ट सरकार को बर्खास्त कर दिया। यह फ़ैसला बड़ा विवादास्पद साबित हुआ। संविधान-प्रदत्त आपात्कालीन शक्तियों के दुरुपयोग के प्रमुख उदाहरण के रूप में इस फ़ैसले का बार-बार उपयोग किया गया।

साभार : द हिंदू

अगस्त 1959 में अपने मंत्रालय को बर्खास्त किए जाने के बाद त्रिवेन्द्रम में कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं के प्रदर्शन का नेतृत्व करते ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद।

सोशलिस्ट पार्टी (एसपी)

सोशलिस्ट पार्टी की जड़ों को आज़ादी से पहले के उस वक्त में ढूँढ़ा जा सकता है जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जनआंदोलन चला रही थी। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन खुद कांग्रेस के भीतर 1934 में युवा नेताओं की एक टोली ने किया था। ये नेता कांग्रेस को ज़्यादा-से-ज़्यादा परिवर्तनकामी और समतावादी बनाना चाहते थे। 1948 में कांग्रेस ने अपने संविधान में बदलाव किया। यह बदलाव इसलिए किया गया था ताकि कांग्रेस के सदस्य दोहरी सदस्यता न धारण कर सकें। इस वजह से कांग्रेस के समाजवादियों को मजबूरन 1948 में अलग होकर सोशलिस्ट पार्टी बनानी पड़ी। सोशलिस्ट पार्टी चुनावों में कुछ खास कामयाबी हासिल नहीं कर सकी। इससे पार्टी के समर्थकों को बड़ी निराशा हुई। हालाँकि सोशलिस्ट पार्टी की मौजूदगी हिंदुस्तान के अधिकतर राज्यों में थी लेकिन पार्टी को चुनावों में छिटपुट सफलता ही मिली।

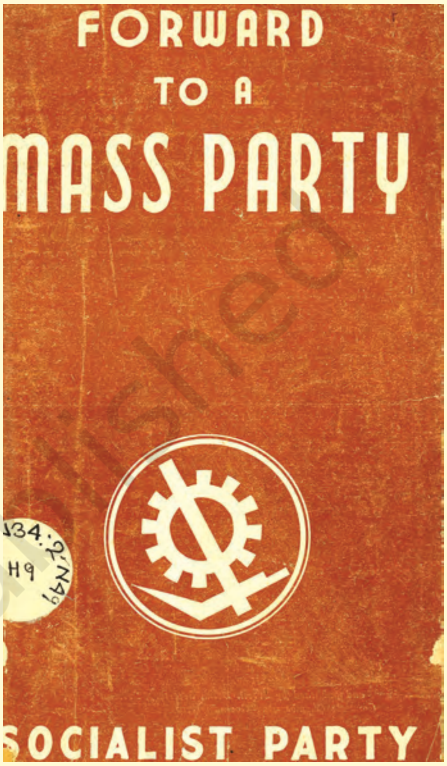

समाजवादी लोकतांत्रिक समाजवाद की विचारधारा में विश्वास करते थे और इस आधार पर वे कांग्रेस तथा साम्यवादी (कम्युनिस्ट) दोनों से अलग थे। वे कांग्रेस की आलोचना करते थे कि वह पूँजीपतियों और जमींदारों का पक्ष ले रही है और मज़दूरों-किसानों की उपेक्षा कर रही है। समाजवादियों को 1955 में दुविधा की स्थिति का सामना करना पड़ा क्योंकि कांग्रेस ने घोषणा कर दी कि उसका लक्ष्य समाजवादी बनावट वाले समाज की रचना है। ऐसे में समाजवादियों के लिए खुद को कांग्रेस का कारगर विकल्प बनाकर पेश करना मुश्किल हो गया। राममनोहर लोहिया के नेतृत्व में कुछ समाजवादियों ने कांग्रेस से अपनी दूरी बढ़ायी और कांग्रेस की आलोचना की। कुछ अन्य समाजवादियों मसलन अशोक मेहता ने कांग्रेस से हल्के-फुल्के सहयोग की तरफदारी की।

सोशलिस्ट पार्टी के कई टुकड़े हुए और कुछ मामलों में बहुधा मेल भी हुआ। इस प्रक्रिया में कई समाजवादी दल बने। इन दलों में, किसान मज़दूर प्रजा पार्टी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का नाम लिया जा सकता है। जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, राममनोहर लोहिया और एस.एम. जोशी समाजवादी दलों के नेताओं में प्रमुख थे। मौजूदा हिंदुस्तान के कई दलों जैसे समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, जनता दल (यूनाइटेड) और जनता दल (सेक्युलर) पर सोशलिस्ट पार्टी की छाप देखी जा सकती है।

आचार्य नरेन्द्र देव (1889–1956): स्वतंत्रता सेनानी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संस्थापक; आज़ादी के आंदोलन के दौरान कई बार जेल गए; किसान आंदोलन में सक्रिय; बौद्ध धर्म के विद्वान; आज़ादी के बाद पहले सोशलिस्ट पार्टी का और बाद में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का नेतृत्व।

© NCERT not to be republished

कांग्रेस के प्रभुत्व की प्रकृति

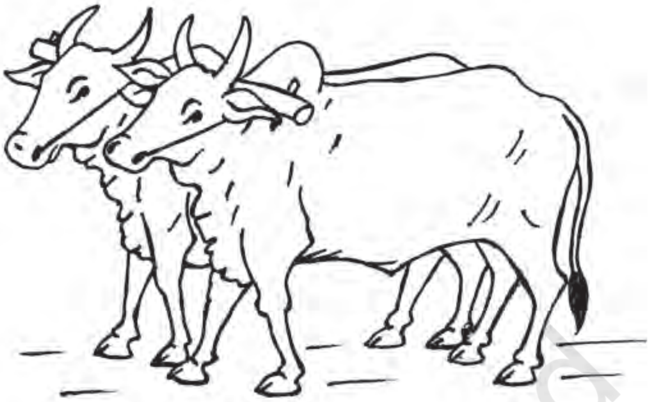

भारत ही एकमात्र ऐसा देश नहीं है जो एक पार्टी के प्रभुत्व के दौर से गुजरा हो। अगर हम दुनिया के बाकी मुल्कों पर नजर दौड़ाएँ तो हमें एक पार्टी के प्रभुत्व के बहुत-से उदाहरण मिलेंगे। बहरहाल, बाकी मुल्कों में एक पार्टी के प्रभुत्व और भारत में एक पार्टी के प्रभुत्व के बीच एक बड़ा भारी फर्क है। बाकी मुल्कों में एक पार्टी का प्रभुत्व लोकतंत्र की कीमत पर कायम हुआ। कुछ देशों मसलन चीन, क्यूबा और सीरिया के संविधान में सिर्फ एक ही पार्टी को देश के शासन की अनुमति दी गई है। कुछ और देशों जैसे म्यांमार, बेलारूस और इरीट्रिया में एक पार्टी का प्रभुत्व कानूनी और सैन्य उपायों के चलते कायम हुआ है। अब से कुछ साल पहले तक मैक्सिको, दक्षिण कोरिया और ताईवान भी एक पार्टी के प्रभुत्व वाले देश थे। भारत में कायम एक पार्टी का प्रभुत्व इन उदाहरणों से कहीं अलग है। यहाँ एक पार्टी का प्रभुत्व लोकतांत्रिक स्थितियों में कायम हुआ। अनेक पार्टियों ने मुक्त और निष्पक्ष चुनाव के माहौल में एक-दूसरे से होड़ की और तब भी कांग्रेस पार्टी एक के बाद एक चुनाव जीतती गई। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की

बाबा साहब भीमराव रामजी अंबेडकर (1891-1956): जाति विरोधी आंदोलन के नेता और दलितों को न्याय दिलाने के संघर्ष के अगुआ; विद्वान और बुद्धिजीवी; इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के संस्थापक; बाद में शिडयूल्ड कास्टस् फेडरेशन की स्थापना; रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया के गठन के योजनाकार; दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान वायसराय की काउंसिल में सदस्य; संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष; आज़ादी के बाद नेहरू के पहले मंत्रिमंडल में मंत्री; हिंदू कोड बिल के मुद्दे पर अपनी असहमति दर्ज कराते हुए 1951 में इस्तीफा; 1956 में अपने हज़ारों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म अपनाया।

© NCERT not to be republished

रफी अहमद किदवई
(1894–1954) : उत्तर प्रदेश से कांग्रेस के नेता, प्रांतीय सरकार (1937) में मंत्री; 1946 में दोबारा मंत्री बने, स्वतंत्र भारत के पहले मंत्रिमंडल में संचार मंत्री; खाद्य एवं कृषि मंत्री (1952–54)

समाप्ति के बाद अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस का भी कुछ ऐसा ही दबदबा कायम हुआ है। भारत का उदाहरण बहुत कुछ दक्षिण अफ्रीका से मिलता-जुलता है।

कांग्रेस पार्टी की इस असाधारण सफलता की जड़ें स्वाधीनता-संग्राम की विरासत में हैं। कांग्रेस पार्टी को राष्ट्रीय आंदोलन के वारिस के रूप में देखा गया। आज़ादी के आंदोलन में अग्रणी रहे अनेक नेता अब कांग्रेस के उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ रहे थे। कांग्रेस पहले से ही एक सुसंगठित पार्टी थी। बाकी दल अभी अपनी रणनीति सोच ही रहे होते थे कि कांग्रेस अपना अभियान शुरू कर देती थी। दरअसल, अनेक पार्टियों का गठन स्वतंत्रता के समय के आस-पास अथवा उसके बाद में हुआ। कांग्रेस को 'अव्वल और एकलौता' होने का फायदा मिला। आज़ादी के वक्त तक यह पार्टी देश में चहुँ ओर फैल चुकी थी। आप यह बात दिए गए मानचित्र में देख चुके हैं। फिर, इस पार्टी के संगठन का नेटवर्क स्थानीय स्तर तक पहुँच चुका था। सबसे बड़ी बात यह थी कि कांग्रेस हाल-फिलहाल तक आज़ादी के आंदोलन की अगुआ रही थी और उसकी प्रकृति सबको समेटकर मेलजोल के साथ चलने की थी।

कांग्रेस एक सामाजिक और विचारधारात्मक गठबंधन के रूप में

आप यह बात पढ़ चुके हैं कि कांग्रेस का जन्म 1885 में हुआ था। उस वक्त यह नवशिक्षित, कामकाजी और व्यापारिक वर्गों का एक हित-समूह भर थी लेकिन 20वीं सदी में इसने जनआंदोलन का रूप ले लिया। इस वजह से कांग्रेस ने एक जनव्यापी राजनीतिक पार्टी का रूप लिया और राजनीतिक-व्यवस्था में इसका दबदबा कायम हुआ। शुरू-शुरू में कांग्रेस में अँग्रेज़ीदाँ, अगड़ी जाति, ऊँचले मध्यवर्ग और शहरी अभिजन का बोलबाला था। लेकिन कांग्रेस ने जब भी सविनय अवज्ञा जैसे आंदोलन चलाए उसका सामाजिक आधार बढ़ा। कांग्रेस ने परस्पर विरोधी हितों के कई समूहों को एक साथ जोड़ा। कांग्रेस में किसान और उद्योगपति, शहर के बाशिंदे और गाँव के निवासी, मज़दूर और मालिक एवं मध्य, निम्न और उच्च वर्ग तथा जाति सबको जगह मिली। धीरे-धीरे कांग्रेस का नेतृवर्ग भी विस्तृत हुआ। इसका नेतृवर्ग अब उच्च वर्ग या जाति के पेशेवर लोगों तक ही सीमित नहीं रहा। इसमें खेती-किसानी की बुनियाद वाले तथा गाँव-गिरान की तरफ़ रुझान रखने वाले नेता भी उभरे। आज़ादी के समय तक कांग्रेस एक सतरंगे सामाजिक गठबंधन की शक्ल अख़्तियार कर चुकी थी और वर्ग, जाति, धर्म, भाषा तथा अन्य हितों के आधार पर इस सामाजिक गठबंधन से भारत की विविधता की नुमाइंदगी हो रही थी।

पहले हमने एक ही पार्टी के भीतर गठबंधन देखा और अब पार्टियों के बीच गठबंधन होता देख रहे हैं। क्या इसका मतलब यह हुआ कि गठबंधन सरकार 1952 से ही चल रही है?

इनमें से अनेक समूहों ने अपनी पहचान को कांग्रेस के साथ एकमेक कर दिया। कई बार यह भी हुआ कि किसी समूह ने अपनी पहचान को कांग्रेस के साथ एकसार नहीं किया और अपने-अपने विश्वासों को मानते हुए बतौर एक व्यक्ति या समूह के कांग्रेस के भीतर बने रहे। इस अर्थ में कांग्रेस एक विचारधारात्मक गठबंधन भी थी। कांग्रेस ने अपने अंदर क्रांतिकारी और शांतिवादी, कंजरवेटिव और रेडिकल, गरमपंथी और नरमपंथी, दक्षिणपंथी, वामपंथी और हर धारा के मध्यमार्गियों को समाहित किया। कांग्रेस एक मंच की तरह थी, जिस पर अनेक समूह, हित और राजनीतिक दल तक आ जुटते थे और राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेते थे। आज़ादी से पहले के वक्त में अनेक संगठन और पार्टियों को कांग्रेस में रहने की इजाज़त थी।

© NCERT not to be republished

कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (सीपीआई)

1920 के दशक के शुरुआती सालों में भारत के विभिन्न हिस्सों में साम्यवादी-समूह (कम्युनिस्ट ग्रुप) उभरे। ये रूस की बोल्शेविक क्रांति से प्रेरित थे और देश की समस्याओं के समाधान के लिए साम्यवाद की राह अपनाने की तरफ़दारी कर रहे थे। 1935 से साम्यवादियों ने मुख्यतया भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दायरे में रहकर काम किया। कांग्रेस से साम्यवादी 1941 के दिसंबर में अलग हुए। इस समय साम्यवादियों ने नाजी जर्मनी के खिलाफ लड़ रहे ब्रिटेन को समर्थन देने का फ़ैसला किया। दूसरी गैर-कांग्रेसी पार्टियों के विपरीत कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ इंडिया के पास आज़ादी के समय एक सुचारू पार्टी मशीनरी और समर्पित कॉडर मौजूद थे। बहरहाल, आज़ादी हासिल होने पर इस पार्टी के भीतर कई स्वर उभरे। इस पार्टी के सामने मुख्य सवाल यह था कि आखिर जो आज़ादी देश को हासिल हुई है उसकी प्रकृति कैसी है? क्या हिंदुस्तान सचमुच आज़ाद हुआ है या यह आज़ादी झूठी है?

आज़ादी के तुरंत बाद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का विचार था कि 1947 में सत्ता का जो हस्तांतरण हुआ वह सच्ची आज़ादी नहीं थी। इस विचार के साथ पार्टी ने तेलंगाना में हिंसक विद्रोह को बढ़ावा दिया। साम्यवादी अपनी बात के पक्ष में जनता का समर्थन हासिल नहीं कर सके और इन्हें सशस्त्र सेनाओं द्वारा दबा दिया गया। मज़बूरन इन्हें अपने पक्ष को लेकर पुनर्विचार करना पड़ा। 1951 में साम्यवादी पार्टी ने हिंसक क्रांति का रास्ता छोड़ दिया और आने वाले आम चुनावों में भाग लेने का फ़ैसला किया। पहले आम चुनाव में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने 16 सीटें जीतीं और वह सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी बनकर उभरी। इस दल को ज़्यादातर समर्थन आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार और केरल में मिला।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख नेताओं में ए.के. गोपालन, एस.ए. डांगे, ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद, पी.सी. जोशी, अजय घोष और पी. सुंदरैया के नाम लिए जाते हैं। चीन और सोवियत संघ के बीच विचारधारात्मक अंतर आने के बाद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी 1964 में एक बड़ी टूट का शिकार हुई। सोवियत संघ की विचारधारा को ठीक मानने वाले भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में रहे जबकि इसके विरोध में राय रखने वालों ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) या सीपीआई (एम) नाम से अलग दल बनाया। ये दोनों दल आज तक कायम हैं।

ए.के. गोपालन (1904-1977): केरल के कम्युनिस्ट नेता, राजनीतिक जीवन का आरंभ कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में; 1939 में कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल। 1964 में कम्युनिस्ट पार्टी के विभाजन के बाद कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ इंडिया (मार्क्सवादी) में शामिल और पार्टी की मज़बूती के लिए कार्य, सांसद के रूप में विशेष ख्याति; 1952 से सांसद।

© NCERT not to be republished

सिने-संसार

सिंहासन

यह मराठी फिल्म अरुण साधु के दो उपन्यासों-'सिंहासन' तथा 'मुंबई दिनांक' पर आधारित है। फिल्म में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री पद के लिए होने वाली रस्साकशी को दर्शाया गया है। फिल्म की कहानी को एक पत्रकार दिघु टिप्पणी बयान करता है जो दर्शकों के सामने एक मौन सूत्रधार के रूप में आता है। यह फिल्म सत्तारूढ़ दल के भीतर चलने वाले सत्ता संघर्ष और उसमें विपक्षी दल की भूमिका को प्रभावशाली ढंग से बयान करती है।

फिल्म की कहानी कुछ इस तरह चलती है। वित्तमंत्री विश्वास राव दभाड़े सत्तारूढ़ मुख्यमंत्री को अपदस्थ करने की तिकड़म में लगा है। मुख्यमंत्री और वित्तमंत्री दोनों ही मज़दूर नेता डि'कोस्टा को अपनी तरफ़ करना चाहते हैं। गुटबंदी की इस लड़ाई में अन्य नेता दोनों धड़ों से सौदेबाजी करने में लगे हैं। फिल्म में पद-लोलुपता की इस लड़ाई के साथ मुंबई के तस्करी कारोबार और राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में हर दिन बनते-बिगड़ते सामाजिक हालात को भी खूबसूरती से पिरोया गया है।

वर्ष : 1981
निर्देशक : जब्बार पटेल
पटकथा : विजय तेंदुलकर
अभिनय : नीलू फुले, अरुण सरनाईक, डॉ. श्रीराम लागू, सतीश दुबाशी, दत्ता भट्ट, मधुकर तोरड़मल, माधव वाटवे, मोहन अगाशे

हालाँकि इन संगठनों और पार्टियों के अपने-अपने संविधान थे। इनका सांगठनिक ढाँचा भी अलग था। इनमें से कुछ (मसलन कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी) बाद में कांग्रेस से अलग हो गए और विपक्षी दल बने। किसी खास पद्धति, कार्यक्रम या नीति को लेकर मौजूद मतभेदों को कांग्रेस पार्टी सुलझा भले न पाए लेकिन उन्हें अपने आप में मिलाए रखती थी और एक आम सहमति कायम कर ले जाती थी।

गुटों में तालमेल और सहनशीलता

कांग्रेस के गठबंधनी स्वभाव ने उसे एक असाधारण ताकत दी। पहली बात तो यही कि जो भी आए, गठबंधन उसे अपने में शामिल कर लेता है। इस कारण गठबंधन को अतिवादी रुख अपनाने से बचना होता है और हर मसले पर संतुलन को साधकर चलना पड़ता है। सुलह-समझौते के रास्ते पर चलना और सर्व-समावेशी होना गठबंधन की विशेषता होती है। इस रणनीति की वजह से विपक्ष कठिनाई में पड़ा। विपक्ष कोई बात कहना चाहे तो कांग्रेस की विचारधारा और कार्यक्रम में उसे तुरंत जगह मिल जाती थी। दूसरे, अगर किसी पार्टी का स्वभाव गठबंधनी हो तो अंदरूनी मतभेदों को लेकर उसमें सहनशीलता भी ज्यादा होती है। विभिन्न समूह और नेताओं की महत्त्वाकांक्षाओं की भी उसमें समाई हो जाती है। कांग्रेस ने आज़ादी की लड़ाई के दौरान इन दोनों ही बातों पर अमल किया था और आज़ादी मिलने के बाद भी इस पर अमल जारी रखा। इसी कारण, अगर कोई समूह पार्टी के रुख से अथवा सत्ता में प्राप्त अपने हिस्से से नाखुश हो तब भी वह पार्टी में ही बना रहता था। पार्टी को छोड़कर विपक्षी की भूमिका अपनाने की जगह पार्टी में मौजूद किसी दूसरे समूह से लड़ने को बेहतर समझता था।

पार्टी के अंदर मौजूद विभिन्न समूह गुट कहे जाते हैं। अपने गठबंधनी स्वभाव के कारण कांग्रेस विभिन्न गुटों के प्रति सहनशील थी और इस स्वभाव से विभिन्न गुटों को बढ़ावा भी मिला। कांग्रेस के विभिन्न गुटों में से कुछ विचारधारात्मक सरोकारों की वजह से बने थे। लेकिन अकसर गुटों के बनने

© NCERT not to be republished

भारतीय जनसंघ (बीजेएस)

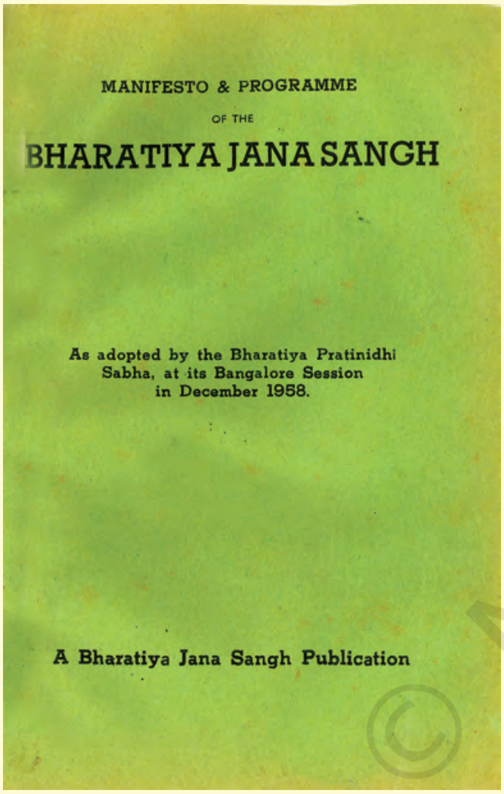

भारतीय जनसंघ का गठन 1951 में हुआ था। श्यामा प्रसाद मुखर्जी इसके संस्थापक-अध्यक्ष थे। इस दल की जड़ें आज़ादी के पहले के समय से सक्रिय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) और हिंदू महासभा में खोजी जा सकती हैं।

जनसंघ अपनी विचारधारा और कार्यक्रमों के लिहाज से बाकी दलों से भिन्न है। जनसंघ ने 'एक देश, एक संस्कृति और एक राष्ट्र' के विचार पर जोर दिया। इसका मानना था कि देश भारतीय संस्कृति और परंपरा के आधार पर आधुनिक, प्रगतिशील और ताकतवर बन सकता है। जनसंघ ने भारत और पाकिस्तान को एक करके 'अखंड भारत' बनाने की बात कही। अंग्रेजी को हटाकर हिंदी को राजभाषा बनाने के आंदोलन में यह पार्टी सबसे आगे थी। इसने धार्मिक और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों को रियायत देने की बात का विरोध किया। चीन ने 1964 में अपना आण्विक-परीक्षण किया था। इसके बाद से जनसंघ ने लगातार इस बात की पैरोकारी की कि भारत भी अपने आण्विक हथियार तैयार करे।

1950 के दशक में जनसंघ चुनावी राजनीति के हाशिए पर रहा। इस पार्टी को 1952 के चुनाव में लोकसभा की तीन सीटों पर सफलता मिली और 1957 के आम चुनावों में इसने लोकसभा की 4 सीटें जीतीं। शुरुआती सालों में इस पार्टी को हिंदी-भाषी राज्यों मसलन राजस्थान, मध्य प्रदेश, दिल्ली और उत्तर प्रदेश के शहरी इलाकों में समर्थन मिला। जनसंघ के नेताओं में श्यामा प्रसाद मुखर्जी, दीनदयाल उपाध्याय और बलराज मधोक के नाम शामिल हैं। भारतीय जनता पार्टी की जड़ें इसी जनसंघ में हैं।

दीन दयाल उपाध्याय **(1916-1968)** : 1942 से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पूर्णकालिक कार्यकर्ता; भारतीय जनसंघ के संस्थापक सदस्य; भारतीय जनसंघ में पहले महासचिव फिर अध्यक्ष; समग्र मानवतावाद सिद्धांत के प्रणेता।

© NCERT not to be republished

के पीछे व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा तथा प्रतिस्पर्धा की भावना भी काम करती थी। ऐसे में अंदरूनी गुटबाजी कांग्रेस की कमज़ोरी बनने की बजाय उसकी ताकत साबित हुई। चूंकि पार्टी के भीतर विभिन्न गुटों की आपसी होड़ के लिए गुंजाइश थी इसलिए विभिन्न हित और विचारधाराओं की नुमाइंदगी कर रहे नेता कांग्रेस के भीतर ही बने रहे। पार्टी से बाहर निकलकर नई पार्टी बनाने को इन्होंने बेहतर नहीं समझा।

मैं गुटबंदी को एक तरह का रोग समझती थी और मानती थी कि इसे दूर किया जाना चाहिए। यहाँ कही गई बातों से तो ऐसा लगता है, जैसे कि गुटबाजी बहुत अच्छी बात है।

कांग्रेस की अधिकतर प्रांतीय इकाइयों विभिन्न गुटों को मिलाकर बनी थीं। ये गुट अलग-अलग विचारधारात्मक रुख़ अपनाते थे और कांग्रेस एक भारी-भरकम मध्यमार्गी पार्टी के रूप में उभरकर सामने आती थी। दूसरी पार्टियाँ मुख्यत: कांग्रेस के इस या उस गुट को प्रभावित करने की कोशिश करती थीं। इस तरह बाकी पार्टियाँ हाशिए पर रहकर ही नीतियों और फ़ैसलों को अप्रत्यक्ष रीति से प्रभावित कर पाती थीं। ये पार्टियाँ सत्ता के वास्तविक इस्तेमाल से कोसों दूर थीं। शासक दल का कोई विकल्प नहीं था। इसके बावजूद विपक्षी पार्टियाँ लगातार कांग्रेस की आलोचना करती थीं, उस पर दबाव डालती थीं और इस क्रम में उसे प्रभावित करती थीं। गुटों की मौजूदगी की यह प्रणाली शासक-दल के भीतर संतुलन साधने के एक औजार की तरह काम करती थी। इस तरह राजनीतिक होड़ कांग्रेस के भीतर ही चलती थी। इस अर्थ में देखें तो चुनावी प्रतिस्पर्धा के पहले दशक में कांग्रेस ने शासक-दल की भूमिका निभायी और विपक्ष की भी। इसी कारण भारतीय राजनीति के इस कालखंड को 'कांग्रेस-प्रणाली' कहा जाता है।

विपक्षी पार्टियों का उद्‌भव

जैसा कि हमने ऊपर देखा, ऐसा नहीं था कि इस दौर में भारत में विपक्षी पार्टियाँ नहीं थीं। चुनाव-परिणामों की चर्चा में हमारे सामने कांग्रेस के अलावा अन्य पार्टियों के नाम भी आए। बहुदलीय लोकतंत्र वाले अन्य अनेक देशों की तुलना में उस वक्त भी भारत में बहुविध और जीवन्त विपक्षी पार्टियाँ थीं। इनमें से कई पार्टियाँ 1952 के आम चुनावों से कहीं पहले बन चुकी थीं। इनमें से कुछ ने 'साठ' और 'सत्तर' के दशक में देश की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। आज की लगभग सभी गैर-कांग्रेसी पार्टियों की जड़ें 1950 के दशक की किसी न किसी विपक्षी पार्टी में खोजी जा सकती हैं।

रस्साकसी (29 अगस्त, 1954) इस कार्टून में सरकार और विपक्षी दलों की ताकत की तुलना की गई है। कार्टून में दर्शाए गए पेड़ पर नेहरू और उनके कैबिनेट सहयोगी बैठे हैं। पेड़ के नीचे विपक्षी नेताओं-ए.के. गोपालन, आचार्य कृपलानी, एन. सी. चटर्जी, श्रीकांतन नायर और सरदार हुकुम सिंह को दिखाया गया है। विपक्षी नेता पेड़ को गिराने की कोशिश कर रहे हैं।

1950 के दशक में इन सभी विपक्षी दलों को लोकसभा अथवा विधानसभा में कहने भर को प्रतिनिधित्व मिल पाया। फिर भी, इन दलों की मौजूदगी ने हमारी शासन-व्यवस्था के लोकतांत्रिक चरित्र को बनाए रखने में निर्णायक भूमिका निभायी। इन दलों ने कांग्रेस पार्टी की नीतियों और व्यवहारों की सुचिन्तित आलोचना की। इस आलोचना में सिद्धांतों का बल होता था। विपक्षी दलों ने शासक-दल पर अंकुश रखा और बहुधा इन दलों के कारण कांग्रेस पार्टी के भीतर शक्ति-संतुलन बदला। इन दलों ने लोकतांत्रिक राजनीतिक विकल्प की संभावना को

कांग्रेस के सदस्य टंडन के निर्वाचन को सरकार या कांग्रेस में मेरी मौजूदगी से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण समझते हैं, फिर.......... कांग्रेस और सरकार के भीतर मैं पूरी तरह अप्रासंगिक हो चुका हूँ।

कांग्रेस अध्यक्ष के पद पर टंडन की जीत के बाद राजाजी को लिखे गए एक पत्र में जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य।

जीवित रखा। ऐसा करके इन दलों ने व्यवस्थाजन्य रोष को लोकतंत्र-विरोधी बनने से रोका। इन दलों ने ऐसे नेता तैयार किए जिन्होंने आगे के समय में हमारे देश की तस्वीर को संवारने में अहम भूमिका निभायी।

शुरुआती सालों में कांग्रेस और विपक्षी दलों के नेताओं के बीच पारस्परिक सम्मान का गहरा भाव था। स्वतंत्रता की उद्‌घोषणा के बाद अंतरिम सरकार ने देश का शासन सँभाला था। इसके मंत्रिमंडल में डॉ. अंबेडकर और श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे विपक्षी नेता शामिल थे। जवाहरलाल नेहरू अकसर सोशलिस्ट पार्टी के प्रति अपने प्यार का इजहार करते थे। उन्होंने जयप्रकाश नारायण जैसे समाजवादी नेताओं को सरकार में शामिल होने का न्यौता दिया। अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी से इस किस्म का निजी रिश्ता और उसके प्रति सम्मान का भाव दलगत प्रतिस्पर्धा के तेज होने के बाद लगातार कम होता गया।

इस तरह अपने देश में लोकतांत्रिक राजनीति का पहला दौर एकदम अनूठा था। राष्ट्रीय आंदोलन का चरित्र समावेशी था। इसकी अगुआई कांग्रेस ने की थी। राष्ट्रीय आंदोलन के इस चरित्र के कारण कांग्रेस की तरफ विभिन्न समूह, वर्ग और हितों के लोग आकर्षित

1948 में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के गवर्नर-जनरल के पद की शपथ ग्रहण के बाद नेहरू मंत्रिमंडल। बैठे हुए बाएँ से दाएँ : रफी अहमद किदवई, बलदेव सिंह, मौलाना आज़ाद, प्रधानमंत्री नेहरू, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, सरदार वल्लभभाई पटेल, राजकुमारी अमृत कौर, जॉन मथाई और जगजीवन राम। खड़े हुए बाएँ से दाएँ : श्री गाडगिल, श्री नियोगी, डॉ. अम्बेडकर, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, गोपालास्वामी आयंगर और जयरामदास दौलतराम।

हुए। सामाजिक और विचारधारात्मक रूप से कांग्रेस एक व्यापक गठबंधन के रूप में उभरी। आज़ादी की लड़ाई में कांग्रेस ने मुख्य भूमिका निभायी थी और इस कारण कांग्रेस को दूसरी पार्टियों की अपेक्षा बढ़त प्राप्त थी। सत्ता पाने की लालसा रखने वाले हर व्यक्ति और हर हित-समूह को अपने अंदर समाहित करने की कांग्रेस की क्षमता जैसे-जैसे घटी वैसे-वैसे दूसरे राजनीतिक दलों को महत्त्व मिलना शुरू हुआ। इस तरह कांग्रेस का प्रभुत्व देश की राजनीति के सिर्फ़ एक दौर में रहा। इस किताब के आगे के हिस्सों में हम देश की राजनीति के अन्य दौर की चर्चा करेंगे।

श्यामा प्रसाद मुखर्जी **(1901-1953)** : हिंदू महासभा के नेता; भारतीय जनसंघ के संस्थापक; स्वतंत्रता के बाद नेहरू के पहले मंत्रिमंडल में मंत्री; पाकिस्तान के साथ संबंधों को लेकर अपने मतभेदों के चलते 1950 में इस्तीफा; संविधान सभा के सदस्य; लोकसभा सदस्य; कश्मीर को स्वायत्तता देने के खिलाफ़; कश्मीर नीति पर जनसंघ के प्रदर्शन के दौरान गिरफ्तार; हिरासत में मौत।

प्रश्नावली

1. सही विकल्प को चुनकर खाली जगह को भरें:
   (क) 1952 के पहले आम चुनाव में लोकसभा के साथ-साथ ____________ के लिए भी चुनाव कराए गए थे। (भारत के राष्ट्रपति पद/राज्य विधानसभा/राज्यसभा/प्रधानमंत्री)
   (ख) ____________ लोकसभा के पहले आम चुनाव में 16 सीटें जीतकर दूसरे स्थान पर रही। (प्रजा सोशलिस्ट पार्टी/भारतीय जनसंघ/भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी/भारतीय जनता पार्टी)
   (ग) ____________ स्वतंत्र पार्टी का एक निर्देशक सिद्धांत था। (कामगार तबके का हित/रियासतों का बचाव/राज्य के नियंत्रण से मुक्त अर्थव्यवस्था/संघ के भीतर राज्यों की स्वायत्तता)

2. यहाँ दो सूचियाँ दी गई हैं। पहले में नेताओं के नाम दर्ज़ हैं और दूसरे में दलों के। दोनों सूचियों में मेल बैठाएँ:

(क) एस.ए. डांगे	(i) भारतीय जनसंघ
(ख) श्यामा प्रसाद मुखर्जी	(ii) स्वतंत्र पार्टी
(ग) मीनू मसानी	(iii) प्रजा सोशलिस्ट पार्टी
(घ) अशोक मेहता	(iv) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी

3. एकल पार्टी के प्रभुत्व के बारे में यहाँ चार बयान लिखे गए हैं। प्रत्येक के आगे सही या गलत का चिह्न लगाएँ:
   (क) विकल्प के रूप में किसी मजबूत राजनीतिक दल का अभाव एकल पार्टी-प्रभुत्व का कारण था।
   (ख) जनमत की कमजोरी के कारण एक पार्टी का प्रभुत्व कायम हुआ।
   (ग) एकल पार्टी-प्रभुत्व का संबंध राष्ट्र के औपनिवेशिक अतीत से है।
   (घ) एकल पार्टी-प्रभुत्व से देश में लोकतांत्रिक आदर्शों के अभाव की झलक मिलती है।

© NCERT not to be republished

4. भारत का एक राजनीतिक नक्शा लीजिए (जिसमें राज्यों की सीमाएँ दिखाई गई हों) और उसमें निम्नलिखित को चिह्नित कीजिए:

(क) ऐसे दो राज्य जहाँ 1952-67 के दौरान कांग्रेस सत्ता में नहीं थी।

(ख) दो ऐसे राज्य जहाँ इस पूरी अवधि में कांग्रेस सत्ता में रही।

5. निम्नलिखित अवतरण को पढ़कर इसके आधार पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

कांग्रेस के संगठनकर्ता पटेल कांग्रेस को दूसरे राजनीतिक समूह से निसंग रखकर उसे एक सर्वांगसम तथा अनुशासित राजनीतिक पार्टी बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि कांग्रेस सबको समेटकर चलने वाला स्वभाव छोड़े और अनुशासित कॉडर से युक्त एक सगुंफित पार्टी के रूप में उभरे। 'यथार्थवादी' होने के कारण पटेल व्यापकता की जगह अनुशासन को ज़्यादा तरजीह देते थे। अगर "आंदोलन को चलाते चले जाने" के बारे में गाँधी के ख्याल हद से ज़्यादा रोमानी थे तो कांग्रेस को किसी एक विचारधारा पर चलने वाली अनुशासित तथा धुरंधर राजनीतिक पार्टी के रूप में बदलने की पटेल की धारणा भी उसी तरह कांग्रेस की उस समन्वयवादी भूमिका को पकड़ पाने में चूक गई जिसे कांग्रेस को आने वाले दशकों में निभाना था।

– रजनी कोठारी

(क) लेखक क्यों सोच रहा है कि कांग्रेस को एक सर्वांगसम तथा अनुशासित पार्टी नहीं होना चाहिए?

(ख) शुरुआती सालों में कांग्रेस द्वारा निभाई गई समन्वयवादी भूमिका के कुछ उदाहरण दीजिए।

खुद करें-खुद समझें

1952 के बाद से अब तक आपके राज्य में जितने चुनाव हुए और सरकारें बनी हैं, उनका एक चार्ट तैयार करें। इस चार्ट में निम्नलिखित शीर्षक रखे जा सकते हैं। चुनाव का वर्ष, जीतने वाले दल का नाम, शासक दल/दलों के नाम, मुख्यमंत्री का नाम...

© NCERT not to be republished

आज़ादी के बाद के शुरुआती दो दशकों में आधुनिक भारत के निर्माण के प्रयास हुए और इसमें सार्वजनिक क्षेत्र की विकास परियोजनाओं की भूमिका मुख्य रही। इस तरह के डाक-टिकट से इस बात की एक झलक मिलती है। आजकल ऐसे डाक-टिकट कुछ खास देखने में नहीं आते। क्या आप सोच सकते हैं क्यों?

इस अध्याय में...

पिछले दो अध्यायों में हमने पढ़ा कि स्वतंत्र भारत के नेताओं ने कैसे राष्ट्र-निर्माण और लोकतंत्र कायम करने की चुनौतियों का सामना किया। आइए, अब तीसरी चुनौती की ओर रुख करें। यह चुनौती आर्थिक विकास की थी, ताकि सबकी भलाई को सुनिश्चित किया जा सके। पहली दो चुनौतियों की तरह हमारे नेताओं ने इस मामले में भी कुछ अलग और तनिक कठिन रास्ता चुना। आर्थिक विकास के मामले में उन्हें एक सीमा तक ही सफलता मिली, क्योंकि आर्थिक विकास की चुनौती कहीं ज़्यादा कठिन और गहरी थी।

इस अध्याय में हम आर्थिक विकास के कुछ बुनियादी सवालों पर लिए गए राजनीतिक फ़ैसलों के बारे में पढ़ेंगे। ऐसे कुछ सवाल हैं :

- विकास को लेकर मुख्य बहसें क्या थीं और इनको लेकर कौन-से अहम फ़ैसले हुए?
- पहले दो दशकों में हमारे नेताओं ने कौन-सी रणनीति अपनाई और उन्होंने ऐसा क्यों किया?
- इस रणनीति की मुख्य उपलब्धियाँ क्या रहीं और इसकी सीमाएँ क्या थीं?
- बाद के सालों में इस रणनीति को क्यों छोड़ दिया गया?

अध्याय 3

नियोजित विकास की राजनीति

12122CH03

राजनीतिक फ़ैसले और विकास

इस्पात की विश्वव्यापी माँग बढ़ी तो निवेश के लिहाज़ से उड़ीसा एक महत्त्वपूर्ण जगह के रूप में उभरा। उड़ीसा में लौह-अयस्क का विशाल भंडार था और अभी इसका दोहन बाकी था। उड़ीसा की राज्य सरकार ने लौह-अयस्क की इस अप्रत्याशित माँग को भुनाना चाहा। उसने अंतर्राष्ट्रीय इस्पात-निर्माताओं और राष्ट्रीय-स्तर के इस्पात-निर्माताओं के साथ सहमति-पत्र पर हस्ताक्षर किए। सरकार सोच रही थी कि इससे राज्य में ज़रूरी पूँजी-निवेश भी हो जाएगा और रोज़गार के अवसर भी बड़ी संख्या में सामने आएँगे। लौह-अयस्क के ज़्यादातर भंडार उड़ीसा के सर्वाधिक अविकसित इलाकों में हैं—खासकर इस राज्य के आदिवासी-बहुल जिलों में। आदिवासियों को डर है कि अगर यहाँ उद्योग लग गए तो उन्हें अपने घर-बार से विस्थापित होना पड़ेगा और आजीविका भी छिन जाएगी। पर्यावरणविदों को इस बात का भय है कि खनन और उद्योग से पर्यावरण प्रदूषित होगा। केंद्र सरकार को लगता है कि अगर उद्योग लगाने की अनुमति नहीं दी गई, तो इससे एक बुरी मिसाल कायम होगी और देश में पूँजी निवेश को बाधा पहुँचेगी।

इस उदाहरण में कई तरह के हित सक्रिय हैं। क्या आप इन हितों को पहचान सकते हैं? ऊपर के उदाहरण में संघर्ष के अहम बिंदु कौन-कौन से हैं? क्या आपको लगता है कि कोई ऐसा बिंदु भी है जिस पर सभी पक्ष राजी हो सकें? क्या इस मसले को इस भाँति सुलझाया जा सकता है कि इससे संबद्ध सभी हितों को संतुष्ट किया जा सके? आप जैसे ही इन सवालों को पूछेंगे तो आपके सामने एक बड़ा सवाल उठ खड़ा होगा—उड़ीसा में किस तरह के विकास की ज़रूरत है? दरअसल, किसकी ज़रूरतों को उड़ीसा की ज़रूरत कहा जाए?

राजनीतिक टकराव

इन सवालों के जवाब कोई विशेषज्ञ नहीं दे सकता। इस तरह के फ़ैसलों में एक सामाजिक-समूह के हितों को दूसरे सामाजिक-समूह के हितों की तुलना में तौला जाता है। साथ ही मौजूदा पीढ़ी के हितों और आने वाली पीढ़ी के हितों को भी लाभ-हानि की तुला पर मापना पड़ता है। किसी भी लोकतंत्र में ऐसे फ़ैसले जनता द्वारा लिए जाने चाहिए या कम-से-कम इन फ़ैसलों पर विशेषज्ञों की स्वीकृति की मुहर ज़रूर होनी चाहिए। खनन, पर्यावरण और अर्थशास्त्र के विशेषज्ञों की राय जानना महत्त्वपूर्ण है, लेकिन अंतिम निर्णय निश्चित तौर पर राजनीतिक निर्णय होना चाहिए। जन-प्रतिनिधि जनता की भावनाओं को समझते हैं और जन-प्रतिनिधियों को ही ऐसे फ़ैसले लेने चाहिए।

पोस्को प्लांट : उड़ीसा के ग्रामीण विरोध पर उतारू

कार्यालय संवादाता

भुवनेश्वर: जगतसिंह जिले में प्रस्तावित पोस्को-इंडिया इस्पात संयंत्र से विस्थापन का शिकार हुए लोगों ने इस कोरियाई कंपनी के दफ्तर के सामने गुरुवार को विरोध प्रदर्शन किया। यह लोग माँग कर रहे थे कि एक साल पहले कंपनी और उड़ीसा की सरकार के बीच जिस सहमति पत्र पर हस्ताक्षर हुए थे उसे रद्द कर दिया जाए।

धिंकिया, नुआंगाँव और गढ़कुजंगा ग्राम पंचायत के एक सौ से भी ” यादा स्त्री-पुरुषों ने कंपनी के दफ्तर में घुसने की कोशिश की लेकिन पुलिस ने उन्हें रोक दिया। प्रदर्शनकारियों ने नारे लगाए और कहा कि हमारी जीविका और जीवन की कीमत पर कंपनी को इस्पात संयंत्र लगाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इस विरोध प्रदर्शन का आयोजन राष्ट्रीय युवा संगठन और नवनिर्माण समिति ने किया था।

साभार : 'द हिंदू', 23 जून, 2006

© NCERT not to be republished

क्या है वामपंथ और क्या है दक्षिणपंथ?

जब विभिन्न देशों की राजनीति की बात होती है तो अकसर वहाँ के राजनीतिक दल अथवा समूहों का हवाला देते हुए कहा जाता है कि इस या उस पार्टी या समूह की विचारधारा वामपंथी अथवा दक्षिणपंथी रुझान वाली है। आपने ऐसा जिक्र ज़रूर ही पढ़ा होगा। 'दक्षिणपंथ' अथवा 'वामपंथ' शब्द से किसी राजनीतिक दल अथवा समूह के बारे में यह प्रकट होता है कि सामाजिक बदलाव को लेकर वह कौन-सा पक्ष लेगा या आर्थिक पुनर्वितरण में राज्य की भूमिका के बारे में उसकी क्या राय होगी। 'वामपंथ' से अक्सर उन लोगों की तरफ संकेत किया जाता है जो अर्थव्यवस्था के राज्य नियंत्रण के पक्ष में हैं और मुक्त प्रतिस्पर्धा पर राज्य विनियमन को प्राथमिकता देते हैं। 'दक्षिणपंथ' से उन लोगों को इंगित किया जाता है जो यह मानते हैं कि खुली प्रतिस्पर्धा और बाज़ारमूलक अर्थव्यवस्था के ज़रिए ही प्रगति हो सकती है-यानी सरकार को अर्थव्यवस्था में गैरज़रूरी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

क्या आप बता सकते हैं कि 1960 के दशक में कौन-से राजनीतिक दल वामपंथी और कौन-से दक्षिणपंथी थे। आप इस दौर की कांग्रेस पार्टी को किस तरफ़ रखेंगे?

आज़ादी के बाद अपने देश में ऐसे कई फ़ैसले लिए गए। इनमें से कोई भी फ़ैसला बाकी फ़ैसलों से मुँह फेरकर नहीं लिया जा सकता था। सारे के सारे फ़ैसले आपस में आर्थिक विकास के एक मॉडल या यों कहें कि एक 'विज़न' से बँधे हुए थे। लगभग सभी इस बात पर सहमत थे कि भारत के विकास का अर्थ आर्थिक संवृद्धि और आर्थिक-सामाजिक न्याय दोनों ही हैं। इस बात पर भी सहमति थी कि इस मामले को व्यवसायी, उद्योगपति और किसानों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। सरकार को इस मसले में प्रमुख भूमिका निभानी थी। बहरहाल, आर्थिक-संवृद्धि हो और सामाजिक न्याय भी मिले-इसे सुनिश्चित करने के लिए सरकार कौन-सी भूमिका निभाए? इस सवाल पर मतभेद थे। क्या कोई ऐसा केंद्रीय संगठन ज़रूरी है जो पूरे देश के लिए योजना बनाए? क्या सरकार को कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योग और व्यवसाय खुद चलाने चाहिए? अगर सामाजिक न्याय आर्थिक संवृद्धि की ज़रूरतों के आड़े आता हो तो ऐसी सूरत में सामाजिक-न्याय पर कितना ज़ोर देना उचित होगा?

इनमें से प्रत्येक सवाल पर टकराव हुए जो आज तक जारी हैं। जो फ़ैसले लिए गए उनके राजनीतिक परिणाम सामने आए। इनमें से अधिकतर मसलों पर राजनीतिक रूप से कोई फ़ैसला लेना ही था और इसके लिए राजनीतिक दलों से सलाह-मशविरा करना ज़रूरी था, साथ ही जनता की स्वीकृति भी हासिल करनी थी। इसी कारण भारत की राजनीति के इतिहास को जानने के लिए हमें विकास के कथाक्रम को पढ़ना ज़रूरी है।

विकास की धारणाएँ

अकसर इन टकरावों के पीछे विकास की धारणाओं का हाथ होता है। उड़ीसा के उदाहरण से हमें पता चलता है कि इतना कह देने भर से बात नहीं बनती कि हर कोई विकास चाहता है। जनता के विभिन्न तबकों के लिए 'विकास' के अर्थ अलग-अलग होते हैं। मिसाल के लिए इस्पात-संयंत्र बैठाने की योजना बना रहे उद्योगपति, इस्पात के किसी शहरी उपभोक्ता और इस्पात-संयंत्र के लिए प्रस्तावित इलाके में रह रहे किसी आदिवासी के लिए 'विकास' का अर्थ अलग-अलग होगा। इस कारण 'विकास' से जुड़ी कोई भी 'चर्चा' विवादों से परे नहीं होती।

आज़ादी के बाद के पहले दशक में इस सवाल पर खूब बहसें हुईं। उस वक्त लोग-बाग 'विकास' की बात आते ही 'पश्चिम' का हवाला देते थे कि 'विकास' का पैमाना 'पश्चिमी' मुल्क हैं। आज भी एक अर्थ में हम इस बात को लक्ष्य कर सकते हैं। 'विकास' का अर्थ था ज़्यादा-से-ज़्यादा आधुनिक होना और आधुनिक होने का अर्थ था, पश्चिमी औद्योगिक देशों की तरह होना। माना जाता था कि पश्चिमी मुल्कों की तरह हर देश को आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुज़रना होगा। जिस तरह पश्चिमी मुल्कों में आधुनिकीकरण के

© NCERT not to be republished

कारण पुरानी सामाजिक संरचना टूटी और पूँजीवाद तथा उदारवाद का उदय हुआ, उसी तरह दुनिया के बाकी देशों में भी होगा। आधुनिकीकरण को संवृद्धि, भौतिक प्रगति और वैज्ञानिक तर्कबुद्धि का पर्यायवाची माना जाता था। 'विकास' की ऐसी धारणा को मानने के कारण तब हर कोई विभिन्न देशों को विकसित, विकासशील अथवा अविकसित बताकर उसके बारे में अपनी बातें कहता था।

क्या आप यह कह रहे हैं कि 'आधुनिक' बनने के लिए 'पश्चिमी' होना ज़रूरी नहीं है? क्या यह संभव है?

आज़ादी के वक्त हिंदुस्तान के सामने विकास के दो मॉडल थे। पहला उदारवादी-पूंजीवादी मॉडल था। यूरोप के अधिकतर हिस्सों और संयुक्त राज्य अमरीका में यही मॉडल अपनाया गया था। दूसरा समाजवादी मॉडल था। इसे सोवियत संघ ने अपनाया था। आप इन दोनों विचारधाराओं के बारे में पढ़ चुके हैं और आप यह भी जानते हैं कि दो महाशक्तियों के बीच 'शीतयुद्ध' का दौर चला था। उस वक्त हिंदुस्तान में बहुत-से लोग विकास के सोवियत मॉडल से गहरे तौर पर प्रभावित थे। ऐसे लोगों में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के ही नहीं बल्कि सोशलिस्ट पार्टी और खुद कांग्रेस के नेहरू तक शामिल थे। अमरीकी तर्ज के पूँजीवादी विकास के पैरोकार बहुत कम थे।

आज़ादी के आंदोलन के दौरान ही एक सहमति बन गई थी और नेताओं की इस पसंद में यही सहमति प्रतिबिंबित हो रही थी। राष्ट्रवादी नेताओं के मन में यह बात बिलकुल साफ़ थी कि आज़ाद भारत की सरकार के आर्थिक सरोकार अंग्रेजी हुकूमत के आर्थिक सरोकारों से एकदम अलग होंगे। आज़ाद भारत की सरकार अंग्रेजी हुकूमत की तरह संकुचित व्यापारिक हितों की पूर्ति के लिए काम नहीं करेगी। आज़ादी के आंदोलन के दौरान ही यह बात भी साफ़ हो गई थी कि गरीबी मिटाने और सामाजिक-आर्थिक पुनर्वितरण के काम का मुख्य जिम्मा सरकार का होगा। नेताओं में इन बातों को लेकर बहस छिड़ी। कुछ औद्योगीकरण को उचित रास्ता मानते थे तो कुछ की नज़र में कृषि का विकास करना और ग्रामीण क्षेत्र की गरीबी को दूर करना सर्वाधिक ज़रूरी था।

साभार : हिंदुस्तान टाइम्स

योजना आयोग के सदस्यों को संबोधित करते हुए नेहरू

साभार : नैनन

योजना आयोग

क्या योजना आयोग ने इन उद्देश्यों पर अमल किया है?

पिछले साल आपने 'भारतीय संविधान : सिद्धांत और व्यवहार' नाम की किताब पढ़ी थी। क्या आप बता सकते हैं कि इसमें योजना आयोग का कोई जिक्र आया था या नहीं? दरअसल, योजना आयोग का जिक्र इस किताब में कहीं नहीं है क्योंकि योजना आयोग संविधान द्वारा स्थापित बाकी आयोगों अथवा दूसरे निकायों की तरह नहीं है। योजना आयोग की स्थापना, मार्च 1950 में, भारत सरकार ने एक सीधे-सादे प्रस्ताव के ज़रिए की। यह आयोग एक सलाहकार की भूमिका निभाता है और इसकी सिफारिशें तभी प्रभावकारी हो पाती हैं जब मंत्रिमंडल उन्हें मंज़ूर करे। जिस प्रस्ताव के ज़रिए योजना आयोग की स्थापना हुई थी उसमें इसके कार्यों के दायरे का उल्लेख करते हुए कहा गया था:

"भारत के संविधान में भारत के नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार दिए गए हैं और राज्य के लिए नीति-निर्देशक तत्वों का उल्लेख किया गया है। नीति-निर्देशक तत्वों के अंतर्गत यह बात विशेष रूप से कही गई है कि राज्य एक ऐसी समाज-रचना को बनाते-बचाते हुए... लोगों की भलाई के लिए प्रयास करेगा जहाँ राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाएँ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की भावना से अनुप्राणित हों... राज्य अन्य बातों के अतिरिक्त अपनी नीतियों को इस तरह बनाएगा और अमल में लाएगा कि

(क) स्त्री और पुरुष, सभी नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधनों का बराबर-बराबर अधिकार हो।

(ख) समुदाय के भौतिक संसाधनों की मिल्कियत और नियंत्रण को इस तरह बाँटा जाएगा कि उससे सर्वसामान्य की भलाई हो; और

(ग) अर्थव्यवस्था का संचालन इस तरह नहीं किया जाएगा कि धन अथवा उत्पादन के साधन एकाध जगह केंद्रित हो जाएँ और जनसामान्य की भलाई बाधित हो।

कुछ आगे की... नीति आयोग ▶▶

भारत सरकार ने योजना आयोग के स्थान पर एक नई संस्था, नीति आयोग (राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्था) की स्थापना की। यह संस्था 1 जनवरी 2015 को अस्तित्व में आई। इसके उद्देश्य और संरचना को जानने के लिए वेबसाइट, http://niti.gov.in से पता करें।

© NCERT not to be republished

नियोजन

मतभेदों के बावजूद एक बिंदु पर सभी सहमत थे कि विकास का काम निजी हाथों में नहीं सौंपा जा सकता और सरकार के लिए ज़रूरी है कि वह विकास का एक खाका अथवा योजना तैयार करे। दरअसल अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए नियोजन के विचार को 1940 और 1950 के दशक में पूरे विश्व में जनसमर्थन मिला था। यूरोप 'महामंदी' का शिकार होकर कुछ सबक सीख चुका था; जापान और जर्मनी ने युद्ध की विभीषिका झेलने के बाद अपनी अर्थव्यवस्था फिर खड़ी कर ली थी और सोवियत संघ ने 1930 तथा 1940 के दशक में भारी कठिनाइयों के बीच शानदार आर्थिक प्रगति की थी। इन सारी बातों के कारण नियोजन के पक्ष में दुनिया भर में हवा बह रही थी।

इस तरह देखें तो योजना आयोग कोई आकस्मिक आविष्कार नहीं था। दरअसल, यह कहानी अपने आप में बड़ी दिलचस्प है। हम आमतौर पर सोचते हैं कि निजी निवेशक मसलन उद्योगपति और बड़े व्यापारिक उद्यमी नियोजन के पक्ष में नहीं होते; वे एक खुली अर्थव्यवस्था चाहते हैं जहाँ पूँजी के बहाव पर सरकार का कोई अंकुश न हो। लेकिन, भारत में ऐसा नहीं हुआ। 1944 में उद्योगपतियों का एक तबका एकजुट हुआ। इस समूह ने देश में नियोजित अर्थव्यवस्था चलाने का एक संयुक्त प्रस्ताव तैयार किया। इसे 'बॉम्बे प्लान' कहा जाता है। 'बॉम्बे प्लान' की मंशा थी कि सरकार औद्योगिक तथा अन्य आर्थिक निवेश के क्षेत्र में बड़े कदम उठाए। इस तरह चाहे दक्षिणपंथी हों अथवा वामपंथी, उस वक्त सभी चाहते थे कि देश नियोजित अर्थव्यवस्था की राह पर चले। भारत के आज़ाद होते ही योजना आयोग अस्तित्त्व में आया। प्रधानमंत्री इसके अध्यक्ष बने। भारत अपने विकास के लिए कौन-सा रास्ता और रणनीति अपनाएगा–यह फ़ैसला करने में इस संस्था ने केंद्रीय और सबसे प्रभावशाली भूमिका निभाई।

शुरुआती कदम

सोवियत संघ की तरह भारत के योजना आयोग ने भी पंचवर्षीय योजनाओं का विकल्प चुना। इसके पीछे एक सीधा-सादा विचार था कि भारत सरकार अपनी तरफ़ से एक दस्तावेज़ तैयार करेगी, जिसमें अगले पाँच सालों के लिए उसकी आमदनी और खर्च की योजना होगी। इस

The Hindustan Times
NEW HUDSON AUTOCYCLES
FIVE-YEAR PLAN PRESENTED TO PARLIAMENT
Discussion On Plan To Begin On Monday
Rs 2,069 CRORES OUTLAY FOR VARIOUS PROJECTS
Blue-print For Increasing National Wealth
DEVELOPMENT SCHEMES FOR DELHI

© NCERT not to be republished

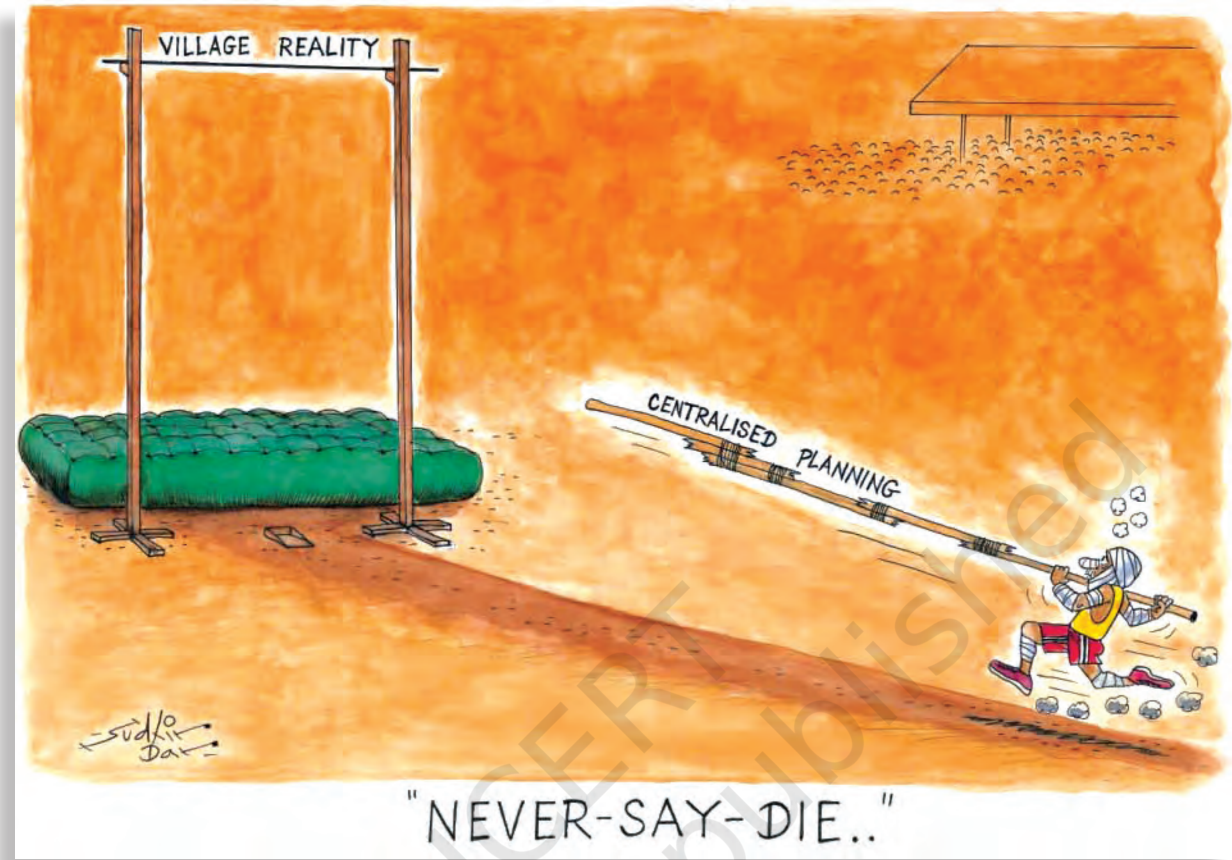

साभार : सुधीर दर/यूएनडीपी एवं योजना आयोग

योजना के अनुसार केंद्र सरकार और सभी राज्य-सरकारों के बजट को दो हिस्सों में बाँटा गया। एक हिस्सा गैरयोजना-व्यय का था। इसके अंतर्गत सालाना आधार पर दैनंदिन मदों पर खर्च करना था। दूसरा हिस्सा योजना-व्यय का था। योजना में तय की गई प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए इसे पाँच साल की अवधि में खर्च करना था। पंचवर्षीय योजना पर अमल करने का एक फ़ायदा यह था कि सरकार के सामने अर्थव्यवस्था की एक बड़ी तसवीर होती थी और वह अर्थव्यवस्था में लंबी अवधि के हस्तक्षेप कर सकती थी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारूप

1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारूप जारी हुआ और इसी साल नवंबर में इस योजना का वास्तविक दस्तावेज़ भी जारी किया गया। इससे देश में गहमागहमी का माहौल पैदा हुआ। जीवन के हर क्षेत्र के लोग मसलन-बुद्धिजीवी, पत्रकार, सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र के कर्मचारी, उद्योगपति, किसान और राजनेता आदि ने योजना के दस्तावेज़ों पर व्यापक बहस-मुबाहिसा चलाया। नियोजन को लेकर देश में जो गहमागहमी पैदा हुई थी वह 1956 से चालू दूसरी पंचवर्षीय योजना के साथ अपने चरम पर पहुँच गई। 1961 की तीसरी पंचवर्षीय योजना के समय तक यह माहौल जारी रहा। चौथी पंचवर्षीय योजना 1966 से चालू होनी थी। लेकिन, इस वक्त तक नियोजन का नयापन एक हद तक मंद पड़ गया था और भारत गहन आर्थिक संकट की चपेट में आ चुका था। सरकार ने पंचवर्षीय योजना को थोड़ी देर का विराम देने का फ़ैसला किया। हालाँकि इन योजनाओं की प्राथमिकताओं और प्रक्रिया को लेकर अनेक आलोचनाएँ सामने आईं लेकिन यह बात सच है कि इस वक्त तक भारत के आर्थिक विकास की बुनियाद पड़ चुकी थी।

© NCERT not to be republished

प्रथम पंचवर्षीय योजना

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-1956) की कोशिश देश को गरीबी के मकड़जाल से निकालने की थी। योजना को तैयार करने में जुटे विशेषज्ञों में एक के.एन. राज थे। इस युवा अर्थशास्त्री की दलील थी कि अगले दो दशक तक भारत को अपनी चाल 'धीमी' रखनी चाहिए क्योंकि तेज़ रफ्तार विकास से अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचेगा। पहली पंचवर्षीय योजना में ज़्यादा ज़ोर कृषि-क्षेत्र पर था। इसी योजना के अंतर्गत बाँध और सिंचाई के क्षेत्र में निवेश किया गया। विभाजन के कारण कृषि-क्षेत्र को गहरी मार लगी थी और इस क्षेत्र पर तुरंत ध्यान देना ज़रूरी था। भाखड़ा-नांगल जैसी विशाल परियोजनाओं के लिए बड़ी धनराशि आबंटित की गई। इस पंचवर्षीय योजना में माना गया था कि देश में भूमि के वितरण का जो ढर्रा मौजूद है उससे कृषि के विकास को सबसे बड़ी बाधा पहुँचती है। इस योजना में भूमि-सुधार पर ज़ोर दिया गया और उसे देश के विकास की बुनियादी चीज़ माना गया।

दसवीं पंचवर्षीय योजना का दस्तावेज़।

योजनाकारों का बुनियादी लक्ष्य राष्ट्रीय आय के स्तर को ऊँचा करने का था। यह तभी संभव था जब लोगों की बचत उनके खर्चे से ज़्यादा हो। 1950 के दशक में खर्च का स्तर भी बहुत नीचे था। इसे अब और कम नहीं किया जा सकता था। योजनाकारों ने बचत को बढ़ावा देने की कोशिश की। यह काम भी कठिन था क्योंकि देश में रोज़गार के काबिल जितने लोग थे उनकी तुलना में देश का मौजूदा पूँजी-भंडार कम था। बहरहाल, नियोजन की प्रक्रिया में लोगों की बचत तीसरी पंचवर्षीय योजना तक बढ़ी। लेकिन, यह बचत उम्मीद के अनुरूप नहीं थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरुआत में इससे कहीं ज़्यादा बचत की उम्मीद की गई थी। बाद के दिनों में यानी 1960 के दशक से लेकर 1970 के दशक के शुरुआती सालों तक बचत की मात्रा में लगातार कमी आई।

औद्योगीकरण की तेज़ रफ्तार

दूसरी पंचवर्षीय योजना में भारी उद्योगों के विकास पर ज़ोर दिया गया। पी.सी. महालनोबिस के नेतृत्व में अर्थशास्त्रियों और योजनाकारों की एक टोली ने यह योजना तैयार की थी। पहली योजना का मूलमंत्र था धीरज, लेकिन दूसरी योजना की कोशिश तेज़ गति से संरचनात्मक बदलाव करने की थी। इसके लिए हर संभव दिशा में बदलाव की बात तय की गई थी। सरकार ने देसी उद्योगों को संरक्षण देने के लिए आयात पर भारी शुल्क लगाया। संरक्षण की इस नीति से निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को आगे बढ़ने में मदद मिली। चूँकि इस अवधि में बचत और निवेश दोनों ही बढ़ रहे थे इसलिए बिजली, रेलवे, इस्पात, मशीनरी और संचार जैसे उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में विकसित किया जा सकता था। दरअसल, औद्योगीकरण पर दिए गए इस ज़ोर ने भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास को एक नया आयाम दिया।

पी.सी. महालनोबिस (1893-1972) : अंतरराष्ट्रीय स्तर के विख्यात वैज्ञानिक एवं सांख्यिकीविद ; भारतीय सांख्यिकी संस्थान (1931) के संस्थापक; दूसरी पंचवर्षीय योजना के योजनाकार; तीव्र औद्योगीकरण और सार्वजनिक क्षेत्र की सक्रिय भूमिका के समर्थक।

बहरहाल, इसके साथ कुछ समस्याएँ भी थीं। भारत प्रौद्योगिकी के लिहाज़ से पिछड़ा हुआ था और विश्व बाज़ार से प्रौद्योगिकी खरीदने में उसे अपनी बहुमूल्य विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ी। इसके अतिरिक्त, उद्योगों ने कृषि की अपेक्षा निवेश को ज़्यादा आकर्षित किया। ऐसे में खाद्यान्न-संकट की आशंका अलग से सता रही थी। भारत के योजनाकारों को उद्योग और कृषि के बीच संतुलन साधने में भारी कठिनाई आई। तीसरी पंचवर्षीय योजना

© NCERT not to be republished

पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजना में आबंटन (प्रतिशत में)

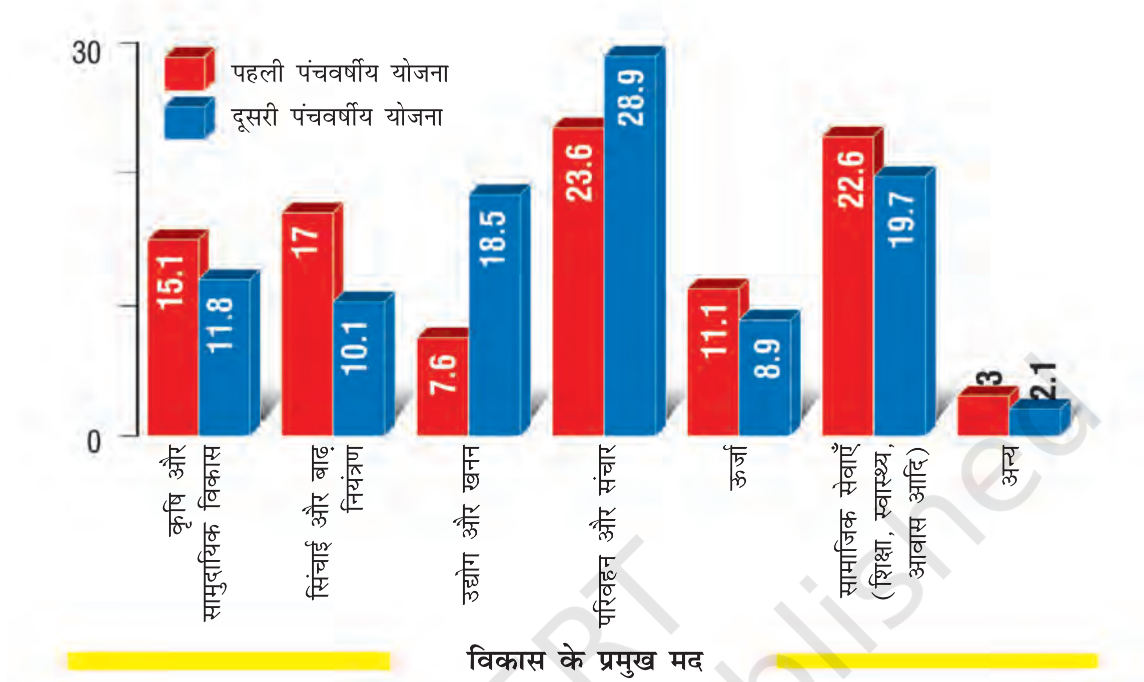

विकेंद्रित नियोजन

ज़रूरी नहीं कि हर नियोजन केंद्रीकृत ही हो। ऐसा भी नहीं है कि नियोजन का मतलब हमेशा उद्योगों और बड़ी-बड़ी परियोजनाओं से ही लगाया जाए। केरल में विकास और नियोजन के लिए जो रास्ता चुना गया उसे 'केरल मॉडल' कहा जाता है। इस मॉडल में शिक्षा, स्वास्थ्य, भूमि-सुधार, कारगर खाद्य-वितरण और गरीबी-उन्मूलन पर ज़ोर दिया जाता रहा है। केरल में प्रति व्यक्ति आय अपेक्षाकृत कम है और यहाँ औद्योगिक-आधार भी तुलनात्मक रूप से कमज़ोर रहा है। इसके बावजूद केरल में साक्षरता शत-प्रतिशत है। आयु प्रत्याशा बढ़ी है और वहाँ शिशु मृत्यु-दर, मातृ मृत्यु-दर और जन्म-दर भी कम है। केरल में लोगों को कहीं ज़्यादा चिकित्सा-सुविधा मुहैया है। 1987 से 1991 के बीच सरकार ने 'नव लोकतांत्रिक पहल' नाम से अभियान चलाया। इसके अंतर्गत विकास के अभियान चले (जिसमें विज्ञान और पर्यावरण के मामले में शत-प्रतिशत साक्षरता का अभियान शामिल है)। इन अभियानों की रूपरेखा इस तरह बनाई गई थी कि लोगों को स्वयंसेवी नागरिक संगठनों के माध्यम से विकास की गतिविधियों में सीधे शामिल किया जा सके। केरल में इस बात के भी प्रयास किए गए कि लोग पंचायत, प्रखंड और जिला स्तर की योजनाओं को तैयार करने में शामिल हों।

दूसरी योजना से कुछ खास अलग नहीं थी। आलोचकों ने ध्यान दिलाया है कि इस समय से योजना की रणनीतियों में सीधे-सीधे 'शहरों' की तरफ़दारी होती नज़र आती है। कुछ अन्य लोगों का मानना था कि कृषि की जगह उद्योग को प्राथमिकता देकर गलती की गई। कुछ ऐसे भी लोग थे जो चाहते थे कि भारी उद्योगों की जगह कृषि-आधारित उद्योगों पर ज़ोर दिया जाए।

जे.सी. कुमारप्पा

(1892-1960) : असली नाम जे.सी. कॉर्नेलियस; अर्थशास्त्री एवं चार्टर्ड अकाउंटेंट; इंग्लैंड एवं अमेरिका में शिक्षा; महात्मा गाँधी के अनुयायी; गाँधीवादी आर्थिक नीतियों को लागू करने की कोशिश; 'इकॉनोमी ऑफ परमानेंस' के लेखक; योजना आयोग के सदस्य के रूप में योजना प्रक्रिया में हिस्सेदारी।

© NCERT not to be republished

प्रश्नावली

1. 'बॉम्बे प्लान' के बारे में निम्नलिखित में कौन-सा बयान सही नहीं है।
   (क) यह भारत के आर्थिक भविष्य का एक ब्लू-प्रिंट था।
   (ख) इसमें उद्योगों के ऊपर राज्य के स्वामित्व का समर्थन किया गया था।
   (ग) इसकी रचना कुछ अग्रणी उद्योगपतियों ने की थी।
   (घ) इसमें नियोजन के विचार का पुरज़ोर समर्थन किया गया था।

2. भारत ने शुरुआती दौर में विकास की जो नीति अपनाई उसमें निम्नलिखित में से कौन-सा विचार शामिल नहीं था?
   (क) नियोजन (ख) उदारीकरण
   (ग) सहकारी खेती (घ) आत्मनिर्भरता

3. भारत में नियोजित अर्थव्यवस्था चलाने का विचार–ग्रहण किया गया था:
   (क) बॉम्बे प्लान से (ख) सोवियत खेमे के देशों के अनुभवों से
   (ग) समाज के बारे में गाँधीवादी विचार से (घ) किसान संगठनों की माँगों से
   (क) सिर्फ़ ख और घ (ख) सिर्फ़ क और ख
   (ग) सिर्फ़ घ और ग (घ) उपर्युक्त सभी

4. निम्नलिखित का मेल करें:

(क) चरण सिंह	(i) औद्योगीकरण
(ख) पी.सी. महालनोबिस	(ii) जोनिंग
(ग) बिहार का अकाल	(iii) किसान
(घ) वर्गीज कूरियन	(iv) सहकारी डेयरी

5. आज़ादी के समय विकास के सवाल पर प्रमुख मतभेद क्या थे? क्या इन मतभेदों को सुलझा लिया गया?

6. पहली पंचवर्षीय योजना का किस चीज़ पर सबसे ज़्यादा ज़ोर था? दूसरी पंचवर्षीय योजना पहली से किन अर्थों में अलग थी?

7. निम्नलिखित अवतरण को पढ़ें और इसके आधार पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दें:

   आज़ादी के बाद के आरंभिक वर्षों में कांग्रेस पार्टी के भीतर दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ पनपीं। एक तरफ राष्ट्रीय पार्टी कार्यकारिणी ने राज्य के स्वामित्व का समाजवादी सिद्धांत अपनाया, उत्पादकता को बढ़ाने के साथ-साथ आर्थिक संसाधनों के संकेंद्रण को रोकने के लिए अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का नियंत्रण और नियमन किया। दूसरी तरफ कांग्रेस की राष्ट्रीय सरकार ने निजी निवेश के लिए उदार आर्थिक नीतियाँ अपनाईं और उसके बढ़ावे के लिए विशेष कदम उठाए। इसे उत्पादन में अधिकतम वृद्धि की अकेली कसौटी पर ज़ायज़ ठहराया गया।

   – ***फ्रैंकिन फ्रैंकल***

   (क) यहाँ लेखक किस अंतर्विरोध की चर्चा कर रहा है? ऐसे अंतर्विरोध के राजनीतिक परिणाम क्या होंगे?
   (ख) अगर लेखक की बात सही है तो फिर बताएँ कि कांग्रेस इस नीति पर क्यों चल रही थी? क्या इसका संबंध विपक्षी दलों की प्रकृति से था?
   (ग) क्या कांग्रेस पार्टी के केंद्रीय नेतृत्व और इसके प्रांतीय नेताओं के बीच भी कोई अंतर्विरोध था?

© NCERT not to be republished

साभार : नेहरू मेमोरियल म्यूज़ियम एवं लाइब्रेरी

यह तसवीर अक्तूबर 1960 में न्यूयार्क में गुटनिरपेक्ष देशों की एक संगोष्ठी की है। इसमें जवाहरलाल नेहरू घाना के एनक्रूमा, मिस्र के नासिर, इंडोनेशिया के सुकर्णो और युगोस्लाविया के टीटो के साथ नज़र आ रहे हैं।

इस अध्याय में...

अब तक हमने इस किताब में देश में हुए बदलाव और घरेलू चुनौतियों पर अपनी नजर डाली है। इस अध्याय में हम बाहरी चुनौतियों के बारे में पढ़ेंगे। इस मोर्चे पर भी अपने देश के नेताओं ने नयी राह अपनायी और बाहरी चुनौतियों के मामले में गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन किया। बहरहाल, हमारे नेताओं को पड़ोसी देशों से हुए युद्धों से भी निपटना पड़ा। भारत को अपने पड़ोसी देशों से 1962, 1965 और 1971 में युद्ध लड़ना पड़ा था। इन लड़ाइयों और हमारे विदेशी संबंधों को देश की राजनीति ने एक शक्ल प्रदान की। देश की राजनीति स्वयं भी इस क्रम में प्रभावित हुई।

इस अध्याय में हम अंदरूनी और बाहरी राजनीति के इसी रिश्ते के बारे में पढ़ेंगे। इस अध्याय में चर्चा की जाएगी कि:

- भारत के विदेश संबंधों ने किन अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में आकार ग्रहण किया;
- भारत की विदेश नीति किन सिद्धांतों से निर्देशित हुई;
- चीन और पाकिस्तान के साथ भारत के रिश्ते कैसे रहे; और
- भारत की परमाणु नीति का उद्भव किन स्थितियों में हुआ?

अध्याय 4

भारत के विदेश संबंध

12122CH04

अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ

भारत बड़ी विकट और चुनौतीपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में आज़ाद हुआ था। दुनिया महायुद्ध की तबाही से अभी बाहर निकली थी और उसके सामने पुनर्निर्माण का सवाल प्रमुख था। एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था बनाने के प्रयास हो रहे थे और उपनिवेशवाद की समाप्ति के फलस्वरूप दुनिया के नक्शे पर नए देश नमूदार हो रहे थे। नए देशों के सामने लोकतंत्र कायम करने और अपनी जनता की भलाई करने की दोहरी चुनौती थी। स्वतंत्रता के तुरंत बाद भारत ने जो विदेश नीति अपनाई उनमें हम इन सारे सरोकारों की झलक पाते हैं। वैश्विक स्तर के इन सरोकारों के अलावा भारत की कुछ अपनी चिंताएँ भी थीं। अंग्रेजी सरकार अपने पीछे अंतर्राष्ट्रीय विवादों की एक पूरी विरासत छोड़ गई थी; बँटवारे के कारण अलग से दवाब पैदा हुए थे और गरीबी मिटाने का काम सामने मुँह बाए खड़ा था। कुल जमा इन्हीं संदर्भों के बीच भारत ने एक स्वतंत्र राष्ट्र-राज्य के रूप में अंतर्राष्ट्रीय मामलों में भागीदारी शुरू की।

एक राष्ट्र के रूप में भारत का जन्म विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि में हुआ था। ऐसे में भारत ने अपनी विदेश नीति में अन्य सभी देशों की संप्रभुता का सम्मान करने और शांति कायम करके अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने का लक्ष्य सामने रखा। इस लक्ष्य की प्रतिध्वनि संविधान के नीति-निर्देशक सिद्धांतों में सुनाई देती है।

जिस तरह किसी व्यक्ति या परिवार के व्यवहारों को अंदरूनी और बाहरी कारक निर्देशित करते हैं उसी तरह एक देश की विदेश नीति पर भी घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय वातावरण का असर पड़ता है। विकासशील देशों के पास अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के भीतर अपने सरोकारों को पूरा करने के लिए जरूरी संसाधनों का अभाव होता है। इसके चलते वे बढ़े-चढ़े देशों की अपेक्षा बड़े सीधे-सादे लक्ष्यों को लेकर अपनी विदेश नीति तय करते हैं। ऐसे देशों का ज़ोर इस बात पर होता है कि उनके पड़ोस में अमन-चैन कायम रहे और विकास होता रहे। इसके अतिरिक्त, विकासशील देश आर्थिक और सुरक्षा की दृष्टि से ज्यादा ताकतवर देशों पर निर्भर होते हैं। इस निर्भरता का भी उनकी विदेश नीति पर जब-तब असर पड़ता है। दूसरे विश्वयुद्ध के तुरंत बाद के दौर में अनेक विकासशील देशों ने ताकतवर देशों की मर्जी को ध्यान में रखकर अपनी विदेश नीति अपनाई क्योंकि इन देशों से इन्हें अनुदान अथवा कर्ज मिल रहा था। इस वजह से दुनिया के विभिन्न देश दो खेमों में बँट गए। एक खेमा संयुक्त राज्य अमरीका और उसके समर्थक देशों के प्रभाव में रहा तो दूसरा खेमा सोवियत संघ के प्रभाव में। इस दौरान गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का प्रयोग भी हुआ था, जिसमें भारत ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। हालाँकि, शीतयुद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का संदर्भ पूरी तरह बदल गया। बहरहाल, जब भारत आज़ाद हुआ था और अपनी विदेश नीति तैयार कर रहा था तब शीतयुद्ध शुरू ही हुआ था और दुनिया बड़ी तेज़ी से दो खेमों में बँटती जा रही थी।

> *"आज़ादी किन चीजों से बनती है? आज़ादी बुनियादी तौर पर विदेश संबंधों से ही बनी होती है। यही आज़ादी की कसौटी भी है। बाकी सारा कुछ तो स्थानीय स्वायत्तता है। एक बार विदेश संबंध आपके हाथ से निकलकर दूसरे के हाथ में चले जाएँ तो फिर जिस हद तक आपके हाथ से ये संबंध छूटे और जिन मसलों में छूटे-वहाँ तक आप आज़ाद नहीं रहते।"*
>
> **जवाहरलाल नेहरू**
> संविधान सभा की एक बहस के दौरान (मार्च 1949)

© NCERT not to be republished

संवैधानिक सिद्धांत

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 में 'अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के बढ़ावे' के लिए राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत के हवाले से कहा गया है कि राज्य :

(क) अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि का,

(ख) राष्ट्रों के बीच न्यायसंगत और सम्मानपूर्ण संबंधों को बनाए रखने का,

(ग) संगठित लोगों के एक-दूसरे से व्यवहारों में अंतर्राष्ट्रीय विधि और संधि-बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाने का, और

(घ) अंतर्राष्ट्रीय विवादों को माध्यस्थम द्वारा निपटारे के लिए प्रोत्साहन देने का, प्रयास करेगा।

क्या 1950 और 1960 के दशक की विश्व राजनीति में भारत इन दोनों में से किसी खेमे में शामिल था? क्या भारत अपनी विदेश नीति को शांतिपूर्ण ढंग से लागू करने और अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों से बचे रहने में सफल रहा?

गुटनिरपेक्षता की नीति

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन अपने आप में कोई स्वतंत्र घटना नहीं हैं। पूरी दुनिया में उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष चल रहे थे और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन भी इसी विश्वव्यापी संघर्ष का हिस्सा था। इस आंदोलन का असर एशिया और अफ्रीका के कई मुक्ति आंदोलनों पर हुआ। आज़ादी मिलने से पहले भी भारत के राष्ट्रवादी नेता दुनिया के अन्य उपनिवेशों में मुक्ति संग्राम चला रहे नेताओं के संपर्क में थे। ये सभी नेता आखिर उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक साझी लड़ाई लड़ रहे थे। नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान 'इंडियन नेशनल आर्मी' (आई.एन.ए.) का गठन किया था। इससे साफ़-साफ़ ज़ाहिर होता है कि स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भारत के संबंध विदेशों में रह रहे भारतीयों से बन चुके थे।

किसी राष्ट्र की विदेश नीति से उसके अंदरूनी और बाहरी सरोकारों की झलक मिलती है। भारत का स्वतंत्रता आंदोलन जिन उदात्त विचारों से प्रेरित था उनका असर भारत की विदेश नीति पर भी पड़ा। बहरहाल, भारत को जिस वक्त आज़ादी हासिल हुई उस समय शीतयुद्ध का दौर भी शुरू हो चुका था। शीतयुद्ध के दौर में दुनिया के देश दो खेमों में बँट रहे थे। एक खेमे का अगुआ संयुक्त राज्य अमरीका था और दूसरे का सोवियत संघ। दोनों खेमों के बीच विश्वस्तर पर आर्थिक, राजनीतिक और सैन्य टकराव जारी था। इसी दौर में संयुक्त राष्ट्र संघ भी अस्तित्व में आया; परमाणु हथियारों का निर्माण शुरू हुआ; चीन में कम्युनिस्ट शासन की स्थापना हुई। अनौपनिवेशीकरण की प्रक्रिया भी इसी दौर में आरंभ हुई थी। भारत के नेताओं को अपने राष्ट्रीय हित इसी संदर्भ के दायरे में साधने थे।

नेहरू की भूमिका

भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय एजेंडा तय करने में निर्णायक भूमिका निभाई। वे प्रधानमंत्री के साथ-साथ विदेश मंत्री भी थे। प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री के रूप में 1946 से 1964 तक उन्होंने भारत की विदेश नीति की रचना और क्रियान्वयन पर गहरा प्रभाव डाला। नेहरू की विदेश नीति के तीन बड़े उद्देश्य थे- कठिन संघर्ष से प्राप्त संप्रभुता को बचाए रखना, क्षेत्रीय अखंडता को बनाए रखना और तेज़ रफ्तार से आर्थिक विकास करना। नेहरू इन उद्देश्यों को गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाकर हासिल करना चाहते थे। उन दिनों देश में कुछ पार्टियाँ और समूह ऐसे भी थे जिनका मानना था कि भारत को अमरीकी खेमे के साथ ज्यादा नज़दीकी बढ़ानी चाहिए क्योंकि इस खेमे की प्रतिष्ठा लोकतंत्र के हिमायती के रूप में थी। इस धारा पर सोचने वालों में डा. भीमराव अंबेडकर भी शामिल थे। साम्यवाद की विरोधी कुछ राजनीतिक पार्टियाँ भी चाहती थीं कि भारत अपनी विदेश नीति अमरीका के पक्ष में बनाए। ऐसे दलों में भारतीय जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी प्रमुख थे। लेकिन, विदेश नीति को तैयार करने के मामले में नेहरू को खासी बढ़त हासिल थी।

दो खेमों से दूरी

आज़ाद भारत की विदेश नीति में शांतिपूर्ण विश्व का सपना था और इसके लिए भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन किया। भारत ने इसके लिए शीतयुद्ध से उपजे तनाव को कम करने की कोशिश की और संयुक्त राष्ट्र संघ के शांति-अभियानों में अपनी सेना भेजी। आप पूछ सकते हैं कि शीतयुद्ध के दौरान भारत किसी खेमे में क्यों शामिल नहीं हुआ? भारत, अमरीका और सोवियत संघ की अगुवाई वाले सैन्य गठबंधनों से अपने को दूर रखना चाहता था। शीतयुद्ध के समय अमरीका ने उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (NATO) और सोवियत संघ ने इसके जवाब में 'वारसा पैक्ट' नामक संधि संगठन बनाया था। भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति को आदर्श माना। संतुलन साधने की यह कठिन कोशिश थी और कभी-कभी संतुलन बहुत कुछ नहीं भी सध पाता था। 1956 में जब ब्रिटेन ने स्वेज नहर के मामले को लेकर मिस्र पर आक्रमण किया तो भारत ने इस नव-औपनिवेशिक हमले के विरुद्ध विश्वव्यापी विरोध की अगुवाई की। इसी साल सोवियत संघ ने हंगरी पर आक्रमण किया था लेकिन भारत ने सोवियत संघ के इस कदम की सार्वजनिक निंदा नहीं की। ऐसी स्थिति के बावजूद, कमोबेश भारत ने अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर स्वतंत्र रवैया अपनाया। उसे दोनों खेमों के देशों ने सहायता और अनुदान दिए।

भारत अभी बाकी विकासशील देशों को गुटनिरपेक्षता की नीति के बारे में आश्वस्त करने में लगा था कि पाकिस्तान अमरीकी नेतृत्व वाले सैन्य-गठबंधन में शामिल हो गया। इस वजह से 1950 के दशक में भारत-अमरीकी संबंधों में खटास पैदा हो गई। अमरीका, सोवियत संघ से भारत की बढ़ती हुई दोस्ती को लेकर भी नाराज था।

आपने पिछले अध्याय में पढ़ा कि भारत ने नियोजित विकास की रणनीति अपनाई थी। इस नीति में ज़ोर आयात को कम करने पर था। इसमें संसाधन-आधार तैयार करने पर ज़ोर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप निर्यात के मामले में भी प्रगति बड़ी सीमित थी। विकास की इस रणनीति के कारण बाहरी दुनिया से भारत का आर्थिक लेन-देन बड़ा सीमित था।

आमतौर पर हमारी नीति ताकत की राजनीति से अपने को अलग रखने और महाशक्तियों के एक खेमे के विरुद्ध दूसरे खेमे में शामिल न होने की है। आज दो अग्रणी खेमे रूस और अमरीका-ब्रिटेन के हैं। हमें दोनों के साथ दोस्ताना संबंध रखना है साथ ही उनके खेमे में शामिल भी नहीं होना है। रूस और अमरीका एक-दूसरे को लेकर बहुत शंकित हैं और अन्य देशों पर भी शक करते हैं। इस कारण हमारा रास्ता कठिन है और दोनों हम पर शक कर सकते हैं कि हम उनके विरोधी खेमे की तरफ झुक रहे हैं। इससे बचा नहीं जा सकता।

जवाहरलाल नेहरू
के.पी.एस. मेनन को एक पत्र में (जनवरी, 1947)

© NCERT not to be republished

हम लोग आज की बनिस्बत जब ज्यादा गरीब, कमज़ोर और नए थे तो शायद दुनिया में हमारी पहचान कहीं ज्यादा थी। है ना विचित्र बात?

एफ्रो-एशियाई एकता

भारत के आकार, अवस्थिति और शक्ति-संभावना को भाँपकर नेहरू ने विश्व के मामलों, खासकर एशियाई मामलों में भारत के लिए बड़ी भूमिका निभाने का स्वप्न देखा था। नेहरू के दौर में भारत ने एशिया और अफ्रीका के नव-स्वतंत्र देशों के साथ संपर्क बनाए। 1940 और 1950 के दशकों में नेहरू बड़े मुखर स्वर में एशियाई एकता की पैरोकारी करते रहे। नेहरू की अगुवाई में भारत ने 1947 के मार्च में ही एशियाई संबंध सम्मेलन (एशियन रिलेशंस कांफ्रेंस) का आयोजन कर डाला था जबकि अभी भारत को आज़ादी मिलने में पाँच महीने शेष थे। भारत ने इंडोनेशिया की आज़ादी के लिए भरपूर प्रयास किए। भारत चाहता था कि इंडोनेशिया डच औपनिवेशिक शासन से यथासंभव शीघ्र मुक्त हो जाए। इसके लिए भारत ने 1949 में इंडोनेशिया के स्वतंत्रता-संग्राम के समर्थन में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन किया। भारत अनौपनिवेशीकरण की प्रक्रिया का प्रबल समर्थक था और उसने पूरी दृढ़ता से नस्लवाद का, खासकर दक्षिण अफ्रीका में जारी रंगभेद का विरोध किया। इंडोनेशिया के एक शहर बांडुंग में एफ्रो-एशियाई सम्मेलन 1955 में हुआ। आमतौर पर हम इसे बांडुंग-सम्मेलन के नाम से जानते हैं। अफ्रीका और एशिया के नव-स्वतंत्र देशों के साथ भारत के बढ़ते संपर्क का यह चरम बिंदु था। बांडुंग-सम्मेलन में ही गुटनिरपेक्ष आंदोलन की नींव पड़ी। गुटनिरपेक्ष आंदोलन का पहला सम्मेलन 1961 के सितंबर में बेलग्रेड में हुआ। गुटनिरपेक्ष आंदोलन की स्थापना में नेहरू की महती भूमिका रही थी।

> *....ताकत के तीनों साधनों – संपदा, धन और जन – से हीन एक देश अब बड़ी तेज़ी से सभ्य जगत में एक नैतिक ताकत के रूप में पहचान हासिल कर रहा है .... उसकी आवाज़ को दिग्गज देशों की जमात में बड़ी इज़्ज़त के साथ सुना जाता है...*
>
> **सी राजगोपालाचारी**
> एडविना माउंटबेटन को एक पत्र में, 1950

चीन के साथ शांति और संघर्ष

पाकिस्तान के साथ अपने संबंधों के विपरीत आज़ाद भारत ने चीन के साथ अपने रिश्तों की शुरुआत बड़े दोस्ताना ढंग से की। चीनी क्रांति 1949 में हुई थी। इस क्रांति के बाद भारत, चीन की कम्युनिस्ट सरकार को मान्यता देने वाले पहले देशों में एक था। पश्चिमी प्रभुत्व के चंगुल से निकलने वाले इस देश को लेकर नेहरू के हृदय में गहरे भाव थे और उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय फ़लक पर इस सरकार की मदद की। नेहरू के कुछ सहयोगियों-मसलन सरदार बल्लभ भाई पटेल को आशंका थी कि आगामी दिनों में चीन भारत पर चढ़ाई कर सकता है। लेकिन नेहरू सोच रहे थे कि भारत पर चीन के आक्रमण की संभावना दूर-दूर तक नहीं है। बहुत दिनों से भारत की चीन से लगती सीमा पर सेना के बजाय अर्द्ध-सैनिक बल रखवाली कर रहे थे।

शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के पाँच सिद्धांतों यानी पंचशील की घोषणा भारत के प्रधानमंत्री नेहरू और चीन के प्रमुख चाऊ एन लाई ने संयुक्त रूप से 29 अप्रैल 1954 में की। दोनों देशों के बीच मजबूत संबंध की दिशा में यह एक अगला कदम था। भारत और चीन के नेता एक-दूसरे के देश का दौरा करते थे और उनके स्वागत में बड़ी भीड़ जुटती थी।

चीन का आक्रमण, 1962

चीन के साथ भारत के इस दोस्ताना रिश्ते में दो कारणों से खटास आई। चीन ने 1950 में तिब्बत पर कब्ज़ा कर लिया। इससे भारत और चीन के बीच ऐतिहासिक रूप से जो एक मध्यवर्ती राज्य बना चला आ रहा था, वह खत्म हो गया। शुरू-शुरू में भारत सरकार ने

© NCERT not to be republished

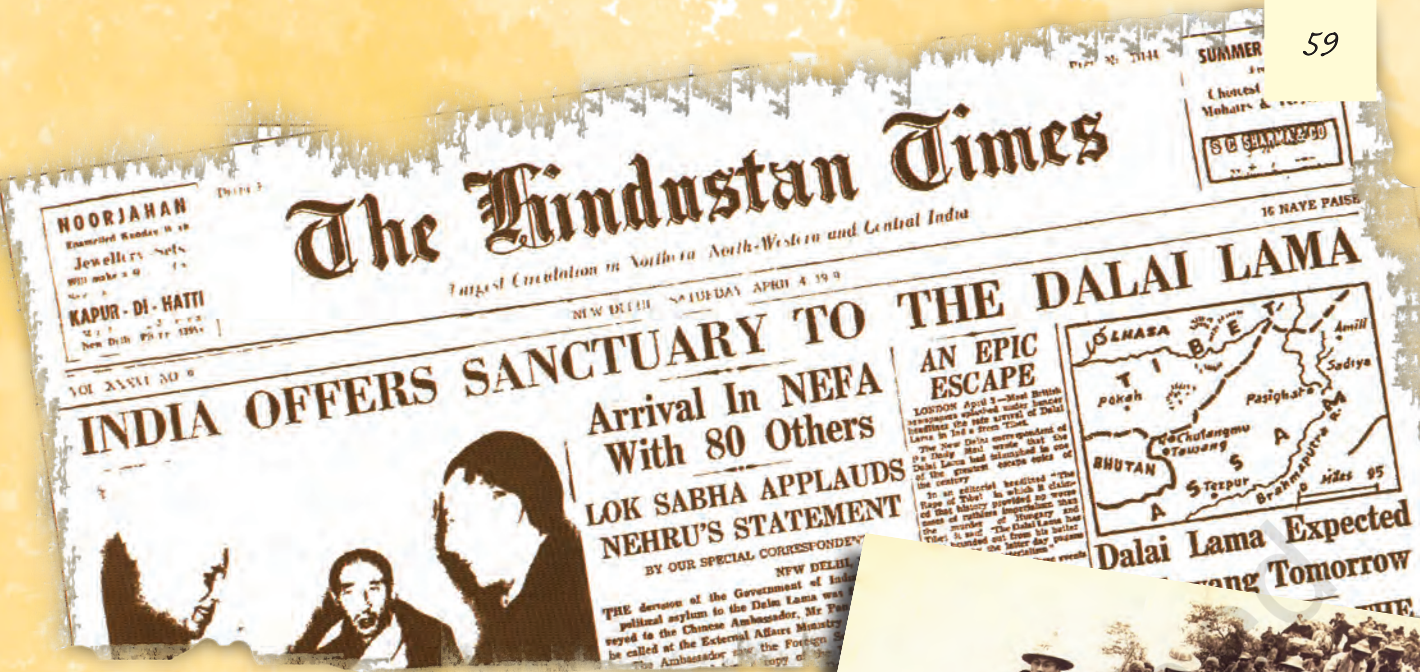
NOORJAHAN

KAPUR-DI-HATTI

SUMMER

The Hindustan Times

Largest Circulation in Northern North-Western and Central India

16 NAYE PAISE

NEW DELHI SATURDAY APRIL 4 1959

INDIA OFFERS SANCTUARY TO THE DALAI LAMA

Arrival In NEFA With 80 Others

LOK SABHA APPLAUDS NEHRU'S STATEMENT

BY OUR SPECIAL CORRESPONDENT

AN EPIC ESCAPE

Dalai Lama Expected ... Tomorrow

तिब्बत

यह मध्य एशिया का मशहूर पठार है। ऐतिहासिक रूप से तिब्बत भारत और चीन के बीच विवाद का एक बड़ा मसला रहा है। अतीत में समय-समय पर चीन ने तिब्बत पर अपना प्रशासनिक नियंत्रण जताया और कई दफा तिब्बत आज़ाद भी हुआ। 1950 में चीन ने तिब्बत पर नियंत्रण कर लिया। तिब्बत के ज़्यादातर लोगों ने चीनी कब्ज़े का विरोध किया। 1954 में जब भारत और चीन के बीच पंचशील समझौते पर हस्ताक्षर हुए तो इसके प्रावधानों में एक बात यह भी शामिल थी कि दोनों देश एक-दूसरे की क्षेत्रीय संप्रभुता का सम्मान करेंगे। चीन ने इस प्रावधान का अर्थ लगाया कि भारत तिब्बत पर चीनी दावेदारी की बात को स्वीकार कर रहा है। 1956 में चीनी शासनाध्यक्ष चाऊ एन लाई भारत के आधिकारिक दौरे पर आए तो साथ ही साथ तिब्बत के धार्मिक नेता दलाई लामा भी भारत पहुँचे। उन्होंने तिब्बत की बिगड़ती स्थिति की जानकारी नेहरू को दी। चीन आश्वासन दे चुका था कि तिब्बत को चीन के अन्य इलाकों से कहीं ज़्यादा स्वायत्तता दी जाएगी। 1958 में चीनी आधिपत्य के विरुद्ध तिब्बत में सशस्त्र विद्रोह हुआ। इस विद्रोह को चीन की सेनाओं ने दबा दिया। स्थिति बिगड़ती देखकर तिब्बत के पारंपरिक नेता दलाई लामा ने सीमा पारकर भारत में प्रवेश किया और 1959 में भारत से शरण माँगी। भारत ने दलाई लामा को शरण दे दी। चीन ने भारत के इस कदम का कड़ा विरोध किया। पिछले 50 सालों में बड़ी संख्या में तिब्बती जनता ने भारत और दुनिया के अन्य देशों में शरण ली है। भारत में (खासकर दिल्ली में) तिब्बती शरणार्थियों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ हैं। हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला में संभवतया तिब्बती शरणार्थियों की सबसे बड़ी बस्ती है। दलाई लामा ने भी भारत में धर्मशाला को ही अपना निवास-स्थान बनाया है। 1950 और 1960 के दशक में भारत के अनेक राजनीतिक दल और राजनेताओं ने तिब्बत की आज़ादी के प्रति अपना समर्थन जताया। इन दलों में सोशलिस्ट पार्टी और जनसंघ शामिल हैं।

दलाई लामा ने अपने अनुयायिओं के साथ भारत से शरण की माँग की।

साभार : होमाई व्यारावाला

चीन ने 'स्वायत्त तिब्बत क्षेत्र' बनाया है और इस इलाके को वह चीन का अभिन्न अंग मानता है। तिब्बती जनता चीन के इस दावे को नहीं मानती कि तिब्बत चीन का अभिन्न अंग है। ज्यादा से ज्यादा संख्या में चीनी बाशिंदों को तिब्बत लाकर वहाँ बसाने की चीन की नीति का तिब्बती जनता ने विरोध किया। तिब्बती चीन के इस दावे को भी नकारते हैं कि तिब्बत को स्वायत्तता दी गई है। वे मानते हैं कि तिब्बत की पारंपरिक संस्कृति और धर्म को नष्ट करके चीन वहाँ साम्यवाद फैलाना चाहता है।

नोटः यह नक्शा किसी पैमाने के हिसाब से बनाया गया भारत का मानचित्र नहीं है। इसमें दिखाई गई भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को प्रामाणिक सीमा रेखा न माना जाए।

MENON GOES

Dramatic announcement by Mr Nehru

Tremendous cheers acclaim news

By our Special Correspondent

New Delhi, Nov. 7–Mr Krishna Menon is no longer a member of the Nehru Cabinet.

Prime Minister Nehru announced before a momentous meeting of the Congress Parliamentary Party this evening that he had decided to accept Mr Krishna Menon's resignation.

The statement was greeted with a resounding salvo of cheering by a record gathering of Congress MPs who had assembled in the high-domed Central Hall of Parliament House for the usual party meeting on the eve of a new session. The cheering continued uninterrupted for several minutes signifying the ... with their leader's ...

Ranadive, other Reds arrested

New Delhi, Nov. ...

चीन के साथ 1960 में सीमा विवाद उठा। नेहरू और माओत्से तुंग के बीच बातचीत व्यर्थ साबित हुई।

1962

Credit: R. K. Laxman

China roller evidence under construction.

वी.के. कृष्णमेनन (1897–1974) : राजनयिक एवं मंत्री; 1934–1947 के बीच इंग्लैंड की लेबर पार्टी में सक्रिय; इंग्लैंड में भारतीय उच्चायुक्त एवं बाद में संयुक्त राष्ट्र में भारतीय प्रतिनिधिमंडल के मुखिया; राज्यसभा के सांसद एवं बाद में लोकसभा सांसद; 1956 से संघ केबिनेट के सदस्य; 1957 से रक्षा मंत्री; 1962 में भारत-चीन युद्ध के बाद इस्तीफा।

Not to be republished

चीन के इस कदम का खुले तौर पर विरोध नहीं किया। बहरहाल, तिब्बत की संस्कृति को कुचलने की खबरें जैसे-जैसे सामने आने लगी, वैसे-वैसे भारत की बेचैनी भी बढ़ी। तिब्बत के धार्मिक नेता दलाई लामा ने भारत से राजनीतिक शरण माँगी और 1959 में भारत ने उन्हें शरण दे दी। चीन ने आरोप लगाया कि भारत सरकार अंदरूनी तौर पर चीन विरोधी गतिविधियों को हवा दे रही है।

सच कहूँ तो उनको (चाऊ एन लाई) लेकर मेरे मन में बड़े अच्छे भाव जगे... मेरा खयाल है कि चीन के शासनाध्यक्ष अच्छे इनसान हैं और उन पर भरोसा किया जा सकता है।

सी. राजगोपालाचारी
एक पत्र में, दिसंबर 1956

इससे कुछ दिनों पहले भारत और चीन के बीच एक सीमा-विवाद भी उठ खड़ा हुआ था। भारत का दावा था कि चीन के साथ सीमा-रेखा का मामला अंग्रेज़ी-शासन के समय ही सुलझाया जा चुका है। लेकिन चीन की सरकार का कहना था कि अंग्रेज़ी शासन के समय का फ़ैसला नहीं माना जा सकता। मुख्य विवाद चीन से लगी लंबी सीमा-रेखा के पश्चिमी और पूर्वी छोर के बारे में था। चीन ने भारतीय भू-क्षेत्र में पड़ने वाले दो इलाकों—जम्मू-कश्मीर के लद्दाख वाले हिस्से के अक्साई-चीन और अरुणाचल प्रदेश—के अधिकांश हिस्सों पर अपना अधिकार जताया। अरुणाचल प्रदेश को उस समय नेफा या उत्तर-पूर्वी सीमांत कहा जाता था। 1957 से 1959 के बीच चीन ने अक्साई-चीन इलाके पर कब्ज़ा कर लिया और इस इलाके में उसने रणनीतिक बढ़त हासिल करने के लिए एक सड़क बनाई। दोनों देशों के शीर्ष नेताओं के बीच लंबी-लंबी चर्चाएँ और बातचीत चली लेकिन इसके बावजूद मतभेद को सुलझाया नहीं जा सका। दोनों देशों की सेनाओं के बीच सीमा पर कई बार झड़प हुई।

जिस समय पूरे विश्व का ध्यान दो महाशक्तियों की तनातनी से पैदा क्यूबा मिसाइल संकट की तरफ लगा हुआ था, ठीक उसी समय चीन ने 1962 के अक्तूबर में दोनों विवादित क्षेत्रों पर बड़ी तेज़ी तथा व्यापक स्तर पर हमला किया। पहला हमला एक हफ्ते तक चला और इस दौरान चीनी सेना ने अरुणाचल प्रदेश के कुछ महत्त्वपूर्ण इलाकों पर कब्ज़ा कर लिया। हमले का अगला दौर नवंबर महीने में शुरू हुआ। लद्दाख से लगे पश्चिमी मोर्चे पर भारतीय सेना ने चीन की बढ़त रोकी लेकिन पूर्व में चीनी सेना आगे बढ़ते हुए असम के मैदानी हिस्से के प्रवेशद्वार तक पहुँच गई। आखिरकार, चीन ने एकतरफा युद्धविराम घोषित किया और चीन की सेनाएँ उस मुकाम पर लौट गईं जहाँ वे हमले से पहले के वक्त में तैनात थीं।

मैंने सुना है कि 1962 के युद्ध के बाद जब लता मंगेशकर ने 'ऐ मेरे वतन के लोगों ... गाया तो नेहरू भरी सभा में रो पड़े थे। बड़ा अजीब लगता है यह सोचकर कि इतने बड़े लोग भी किसी भावुक लम्हे में रो पड़ते हैं!

चीन-युद्ध से भारत की छवि को देश और विदेश दोनों ही जगह धक्का लगा। इस संकट से उबरने के लिए भारत को अमरीका और ब्रिटेन दोनों से सैन्य मदद की गुहार लगानी पड़ी। सोवियत संघ इस संकट की घड़ी में तटस्थ बना रहा। चीन-युद्ध से भारतीय राष्ट्रीय स्वाभिमान को चोट पहुँची लेकिन इसके साथ-साथ राष्ट्र-भावना भी बलवती हुई। कुछ प्रमुख सैन्य-कमांडरों ने या तो इस्तीफा दे दिया या अवकाश ग्रहण कर लिया। नेहरू के नजदीकी सहयोगी और तत्कालीन रक्षामंत्री वी. के. कृष्णमेनन को भी मंत्रिमंडल छोड़ना पड़ा। नेहरू की छवि भी थोड़ी धूमिल हुई। चीन के इरादों को समय रहते न भाँप सकने और सैन्य तैयारी न कर पाने को लेकर नेहरू की बड़ी आलोचना हुई। पहली बार, उनकी सरकार के खिलाफ़ अविश्वास प्रस्ताव लाया गया और लोकसभा में इस पर बहस हुई। इसके तुरंत बाद, कांग्रेस ने कुछ महत्त्वपूर्ण उप-चुनावों में पटखनी खाई । देश का राजनीतिक मानस बदलने लगा था।

© NCERT not to be republished

कुछ आगे की...
1962 के बाद भारत-चीन संबंध

भारत और चीन के बीच संबंधों को सामान्य होने में करीब दस साल लग गए। 1976 में दोनों देशों के बीच पूर्ण राजनयिक संबंध बहाल हो सके। शीर्ष नेता के तौर पर पहली बार अटल बिहारी वाजपेयी (वे तब विदेश मंत्री थे) 1979 में चीन के दौरे पर गए। बाद में, नेहरू के बाद राजीव गाँधी बतौर प्रधानमंत्री चीन के दौरे पर गए। इसके बाद से चीन के साथ भारत के संबंधों में ज्यादा जोर व्यापारिक मसलों पर रहा है। 'समकालीन विश्व राजनीति' की किताब में आप इन बातों को पढ़ चुके हैं।

भारत चीन संघर्ष का असर विपक्षी दलों पर भी हुआ। इस युद्ध और चीन-सोवियत संघ के बीच बढ़ते मतभेद से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) के अंदर बड़ी उठा-पटक मची। सोवियत संघ का पक्षधर खेमा भाकपा में ही रहा और उसने कांग्रेस के साथ नजदीकी बढ़ायी। दूसरा खेमा कुछ समय के लिए चीन का पक्षधर रहा और यह खेमा कांग्रेस के साथ किसी भी तरह की नजदीकी के खिलाफ़ था। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी 1964 में टूट गई। इस पार्टी के भीतर जो खेमा चीन का पक्षधर था उसने मार्क्सवादी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.आई.एम.-माकपा) बनाई। चीन-युद्ध के क्रम में माकपा के कई नेताओं को चीन का पक्ष लेने के आरोप में गिरफ्तार किया गया।

चीन के साथ हुए युद्ध ने भारत के नेताओं को पूर्वोत्तर की डावाँडोल स्थिति के प्रति सचेत किया। यह इलाका अत्यंत पिछड़ी दशा में था और अलग-थलग पड़ गया था। राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिहाज से भी यह इलाका चुनौतीपूर्ण था। चीन-युद्ध के तुरंत बाद इस इलाके को नयी तरतीब में ढालने की कोशिशें शुरू की गईं। नगालैंड को प्रांत का दर्जा दिया गया। मणिपुर और त्रिपुरा हालाँकि केंद्र-शासित प्रदेश थे लेकिन उन्हें अपनी विधानसभा के निर्वाचन का अधिकार मिला।

सिने-संसार

हकीकत

इस फिल्म की पृष्ठभूमि में 1962 के चीनी आक्रमण को दर्शाया गया है। भारतीय सेना की एक छोटी-सी टुकड़ी लद्दाख क्षेत्र में घिर गई है। सेना का कप्तान बहादुर सिंह स्थानीय घुमंतू कबीले की एक लड़की कम्मो की मदद से इस टुकड़ी को बाहर निकालने की कोशिश करता है। इस कोशिश में बहादुर सिंह और कम्मो दोनों शहीद हो जाते हैं। भारतीय टुकड़ी के जवान पूरे प्राणपण से चीनी हमलावरों से मुकाबला करते हैं परंतु अंतत: उन्हें अपनी जान न्यौछावर करनी पड़ती है।

यह फिल्म सेना के जवान के सामने आने वाली चुनौतियों, दिक्कतों के साथ-साथ चीनी विश्वासघात से उपजी राजनीतिक निराशा का भी मुआयना कराती है। इस फिल्म में युद्ध के दृश्यों को रचने के लिए डाक्युमेंटरी फुटेज का काफी इस्तेमाल किया गया है। हकीकत युद्ध आधारित फिल्मों की विधा में अहम स्थान रखती है।

वर्ष : 1964
निर्देशक : चेतन आनंद
अभिनय : धर्मेंद्र, प्रिया राजवंश, बलराज साहनी, जयंत, सुधीर, संजय खान, विजय आनंद

पाकिस्तान के साथ युद्ध और शांति

जम्मू-कश्मीर मसले को लेकर पाकिस्तान के साथ बँटवारे के तुरंत बाद ही संघर्ष छिड़ गया था। आप इस विवाद के बारे में सातवें अध्याय में विस्तार से पढ़ सकते हैं। 1947 में ही जम्मू-कश्मीर में भारत और पाकिस्तान की सेनाओं के बीच एक छाया-युद्ध छिड़ गया था। बहरहाल, यह संघर्ष पूर्णव्यापी युद्ध का रूप न ले सका। यह मसला फिर संयुक्त राष्ट्र संघ के हवाले कर दिया गया। संयुक्त राज्य अमरीका और चीन के साथ भारत के संबंधों के लिहाज़ से पाकिस्तान एक महत्त्वपूर्ण घटक रहा।

कश्मीर के सवाल पर हुए संघर्ष के बावजूद भारत और पाकिस्तान की सरकारों के बीच सहयोग-संबंध कायम हुए। दोनों सरकारों ने मिल-जुल कर प्रयास किया कि बँटवारे के समय जो महिलाएँ अपहृत हुई थीं उन्हें अपने परिवार के पास वापस लौटाया जा सके। विश्व बैंक की मध्यस्थता से नदी जल में हिस्सेदारी को लेकर चला आ रहा एक लंबा विवाद सुलझा लिया गया। नेहरू और जनरल अयूब खान ने सिंधु नदी जल संधि पर 1960 में हस्ताक्षर किए। भारत-पाक संबंधों में नरमी-गरमी के बावजूद इस संधि पर ठीक-ठाक अमल होता रहा।

दोनों देशों के बीच 1965 में कहीं ज्यादा गंभीर किस्म के सैन्य-संघर्ष की शुरुआत हुई। आप अगले अध्याय में पढ़ेंगे कि इस वक्त लालबहादुर शास्त्री भारत के प्रधानमंत्री थे। 1965 के अप्रैल में पाकिस्तान ने गुजरात के कच्छ इलाके के रन में सैनिक हमला बोला। इसके बाद जम्मू-कश्मीर में उसने अगस्त-सितंबर के महीने में बड़े पैमाने पर हमला किया। पाकिस्तान के नेताओं को उम्मीद थी कि जम्मू-कश्मीर की जनता उनका समर्थन करेगी लेकिन ऐसा नहीं हुआ। कश्मीर के मोर्चे पर पाकिस्तानी सेना की बढ़त को रोकने के लिए प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने पंजाब की सीमा की तरफ से जवाबी हमला करने के आदेश दिए। दोनों देशों की सेनाओं के बीच घनघोर लड़ाई हुई और भारत की सेना आगे बढ़ते हुए लाहौर के नजदीक तक पहुँच गई।

संयुक्त राष्ट्र संघ के हस्तक्षेप से इस लड़ाई का अंत हुआ। बाद में, भारतीय प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री और पाकिस्तान के जनरल अयूब खान के बीच 1966 में ताशकंद-समझौता हुआ। सोवियत संघ ने इसमें मध्यस्थ की भूमिका निभाई। हालाँकि 1965 की लड़ाई में भारत ने पाकिस्तान को बहुत ज्यादा सैन्य क्षति पहुँचाई लेकिन इस युद्ध से भारत की कठिन आर्थिक स्थिति पर और ज़्यादा बोझ पड़ा।

बांग्लादेश युद्ध, 1971

1970 में पाकिस्तान के सामने एक गहरा अंदरूनी संकट आ खड़ा हुआ। पाकिस्तान के पहले आम चुनाव में खंडित जनादेश आया। जुल्फिकार अली भुट्टो की पार्टी पश्चिमी पाकिस्तान में विजयी रही जबकि मुजीबुर्रहमान की पार्टी अवामी लीग ने पूर्वी पाकिस्तान में ज़ोरदार कामयाबी हासिल की। पश्चिमी पाकिस्तान के नेताओं के हाथों अपने साथ हुए दोयम दर्जे के नागरिक के बरताव के विरोध में पूर्वी पाकिस्तान की बंगाली जनता ने इस पार्टी को वोट दिया था। पाकिस्तान के शासक इस जनादेश को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। आवामी लीग एक परिसंघ बनाने की माँग कर रही थी लेकिन वे इस माँग को भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे।

© NCERT not to be republished

The Times of India
NO. 246. VOL. CXXVII. BOMBAY: TUESDAY, SEPTEMBER 7, 1965
Largest Net Sales among all Daily Newspapers in India
16 PAISE
OUR TROOPS ON OUTSKIRTS OF LAHORE
IAF Planes Blast Military Installations
PAK FORCES ON THE RUN IN CHHAMB AREA
aurian In Flames: Success In Uri Sector Too
"The Times of India" News Service
BLACK-OUT IS ORDERED IN GREATER BOMBAY
By A Staff Reporter
Indo-Pak Flights Cancelled
The Hindustan Times
ALKOT-PASRUR RAILWAY TAKEN
IAF pounds Sargodha, Chak Jhumra airports
1965
जय जवान
JAI JAWAN
भारत INDIA
जय किसान
JAI KISAN
भारत INDIA
The Hindustan Times
Largest Circulation in Northern and Central India
New Delhi Tuesday September 7 1965
TROOPS MARCH INTO PAKISTAN
16 Paise
CONTACT LENS
UBEROI OPTICIANS
DRYCLEANED AT PAULSONS

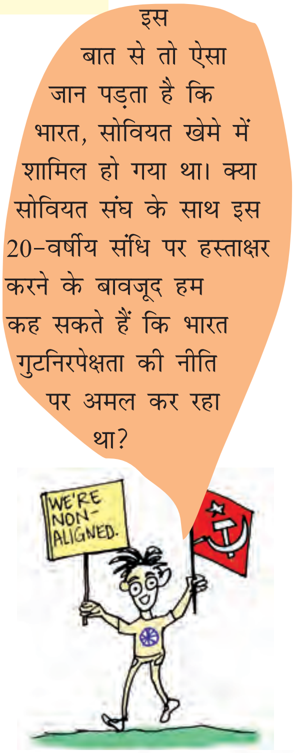

इसकी जगह पाकिस्तानी सेना ने 1971 में शेख मुजीब को गिरफ्तार कर लिया और पूर्वी पाकिस्तान के लोगों पर जुल्म ढाने शुरू किए। जवाब में पूर्वी पाकिस्तान की जनता ने अपने इलाके यानी मौजूदा बांग्लादेश को पाकिस्तान से मुक्त कराने के लिए संघर्ष छेड़ दिया। 1971 में पूरे साल भारत को 80 लाख शरणार्थियों का बोझ वहन करना पड़ा। ये शरणार्थी पूर्वी पाकिस्तान से भागकर भारत के नजदीकी इलाकों में शरण लिए हुए थे। भारत ने बांग्लादेश के 'मुक्ति संग्राम' को नैतिक समर्थन और भौतिक सहायता दी। पाकिस्तान ने आरोप लगाया कि भारत उसे तोड़ने की साजिश कर रहा है।

पाकिस्तान को अमरीका और चीन ने मदद की । 1960 के दशक में अमरीका और चीन के बीच संबंधों को सामान्य करने की कोशिश चल रही थी और इससे एशिया में सत्ता-समीकरण नया रूप ले रहा था। अमरीकी राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन के सलाहकार हेनरी किसिंजर ने 1971 के जुलाई में पाकिस्तान होते हुए गुपचुप चीन का दौरा किया। अमरीका-पाकिस्तान-चीन की धुरी बनती देख भारत ने इसके जवाब में सोवियत संघ के साथ 1971 में शांति और मित्रता की एक 20-वर्षीय संधि पर दस्तखत किए। संधि से भारत को इस बात का आश्वासन मिला कि हमला होने की सूरत में सोवियत संघ भारत की मदद करेगा।

Refugee influx threatens peace. India warns Pak

PRESIDENT DECLARES EMERGENCY
Pakistanis bomb border airfields in sneak raids

महीनों राजनयिक तनाव और सैन्य तैनाती के बाद 1971 के दिसंबर में भारत और पाकिस्तान के बीच एक पूर्णव्यापी युद्ध छिड़ गया। पाकिस्तान के लड़ाकू विमानों ने पंजाब और राजस्थान पर हमले किए जबकि उसकी सेना ने जम्मू-कश्मीर में अपना मोर्चा खोला। जवाब में भारत ने अपनी वायुसेना, नौसेना और थलसेना के बूते पश्चिमी और पूर्वी मोर्चे से कार्रवाई की। स्थानीय लोगों के समर्थन और स्वागत के बीच भारतीय सेना पूर्वी पाकिस्तान में तेज़ी से आगे बढ़ी। दस दिनों के अंदर भारतीय सेना ने ढाका को तीन तरफ से घेर लिया और अपने 90,000 सैनिकों के साथ पाकिस्तानी सेना को आत्म-समर्पण करना पड़ा। बांग्लादेश के रूप में एक स्वतंत्र राष्ट्र के उदय के साथ भारतीय सेना ने अपनी तरफ से एकतरफा युद्ध-विराम घोषित कर दिया। बाद में, 3 जुलाई 1972 को इंदिरा गाँधी और जुल्फिकार अली भुट्टो के बीच शिमला-समझौते पर दस्तखत हुए और इससे अमन की बहाली हुई।

कुछ आगे की... करगिल संघर्ष

1999 के शुरुआती महीनों में भारतीय इलाके की नियंत्रण सीमा रेखा के कई ठिकानों जैसे द्रास, माश्कोह, काकसर और बतालिक पर अपने को मुजाहिद्दीन बताने वालों ने कब्ज़ा कर लिया था। पाकिस्तानी सेना की इसमें मिलीभगत भाँप कर भारतीय सेना इस कब्ज़े के खिलाफ़ हरकत में आयी। इससे दोनों देशों के बीच संघर्ष छिड़ गया। इसे 'करगिल की लड़ाई' के नाम से जाना जाता है। 1999 के मई-जून में यह लड़ाई जारी रही। 26 जुलाई 1999 तक भारत अपने अधिकतर ठिकानों पर पुनः अधिकार कर चुका था। करगिल की लड़ाई ने पूरे विश्व का ध्यान खींचा था क्योंकि इससे ठीक एक साल पहले दोनों देश परमाणु हथियार बनाने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन कर चुके थे। बहरहाल, यह लड़ाई सिर्फ करगिल के इलाके तक ही सीमित रही। पाकिस्तान में, इस लड़ाई को लेकर बहुत विवाद मचा। कहा गया कि सेना के प्रमुख ने प्रधानमंत्री को इस मामले में अँधेरे में रखा था। इस लड़ाई के तुरंत बाद पाकिस्तान की हुकूमत पर जनरल परवेज मुशर्रफ की अगुवाई में पाकिस्तानी सेना ने नियंत्रण कर लिया।

© NCERT not to be republished

1971

INSTRUMENT OF SURRENDER SIGNED AT DACCA AT 1631 HOURS (IST) ON 16 DEC 1971

APPENDIX 2

The PAKISTAN Eastern Command agree to surrender all PAKISTAN Armed Forces in BANGLA DESH to Lieutenant-General JAGJIT SINGH AURORA, General Officer Commanding in Chief of the Indian and BANGLA DESH forces in the Eastern Theatre. This surrender includes all PAKISTAN land, air and naval forces as also all para-military forces and civil armed forces. The forces will lay down their arms and surrender at the places where they are currently located to the nearest regular troops under the command of Lieutenant-General JAGJIT SINGH AURORA.

The PAKISTAN Eastern Command shall come under the orders of Lieutenant-General JAGJIT SINGH AURORA as soon as this instrument has been signed. Disobedience of orders will be regarded as a breach of the surrender terms and will be dealt with in accordance with the accepted laws and usages of war. The decision of Lieutenant-General JAGJIT SINGH AURORA will be final, should any doubt arise as to the meaning or interpretation of the surrender terms.

Lieutenant-General JAGJIT SINGH AURORA gives a solemn assurance that personnel who surrender shall be treated with dignity and respect that soldiers are entitled to in accordance with the provisions of the GENEVA Convention and guarantees the safety and well-being of all PAKISTAN military and para-military forces who surrender. Protection will be provided to foreign nationals, ethnic minorities and personnel of WEST PAKISTAN origin by the forces under the command of Lieutenant-General JAGJIT SINGH AURORA.

(JAGJIT SINGH AURORA)
Lieutenant-General
General Officer Commanding in Chief
India and BANGLA DESH Forces in the Eastern Theatre
16 December 1971.

(AMIR ABDULLAH KHAN NIAZI)
Lieutenant-General
Martial Law Administrator Zone B and
Commander Eastern Command (PAKISTAN)
16 December 1971.

Gen. A. A. K. Niazi signing the surrender documents in Dacca on Thursday. Lt-Gen. A... Air Marshal H. C. Dewan, Lt-Gen. Sagar...

...: The surrender document

युद्ध में इस निर्णायक जीत से देश में उत्साह की लहर दौड़ गई थी। अधिकांश भारतीयों ने इसे गौरव की घड़ी के रूप में देखा और माना कि भारत का सैन्य-पराक्रम प्रबल हुआ है। आप अगले अध्याय में पढ़ेंगे कि इंदिरा गाँधी इस वक्त भारत की प्रधानमंत्री थीं। 1971 के लोकसभा चुनावों में उन्हें विजय मिली थी। 1971 की जंग के बाद इंदिरा गाँधी की लोकप्रियता को चार चाँद लग गए। इस युद्ध के बाद अधिकतर राज्यों में विधानसभा के चुनाव हुए और अनेक राज्यों में कांग्रेस पार्टी बड़े बहुमत से जीती।

भारत ने अपने सीमित संसाधनों के साथ नियोजित विकास की शुरुआत की थी। पड़ोसी देशों के साथ संघर्ष के कारण पंचवर्षीय योजना पटरी से उतर गई। 1962 के बाद भारत को अपने सीमित संसाधन खासतौर से रक्षा क्षेत्र में लगाने पड़े। भारत को अपने सैन्य ढाँचे का आधुनिकीकरण करना पड़ा। 1962 में रक्षा-उत्पाद विभाग और 1965 में रक्षा आपूर्ति विभाग की स्थापना हुई। तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66) पर असर पड़ा और इसके बाद लगातार तीन एक-वर्षीय योजना पर अमल हुआ। चौथी पंचवर्षीय योजना 1969 में ही शुरू हो सकी। युद्ध के बाद भारत का रक्षा-व्यय बहुत ज़्यादा बढ़ गया।

भारत की परमाणु नीति

इस दौर की एक खास बात थी भारत का परमाणु विस्फोट। भारत ने 1974 के मई में परमाणु परीक्षण किया। तेज़ गति से आधुनिक भारत के निर्माण के लिए नेहरू ने हमेशा विज्ञान ओर प्रौद्योगिकी पर अपना विश्वास जताया था। नेहरू की औद्योगीकरण की नीति का एक महत्त्वपूर्ण घटक परमाणु कार्यक्रम था। इसकी शुरुआत 1940 के दशक के अंतिम सालों में होमी जहाँगीर भाभा के निर्देशन में हो चुकी थी। भारत शांतिपूर्ण उद्देश्यों में इस्तेमाल के लिए अणु ऊर्जा बनाना चाहता था। नेहरू परमाणु हथियारों के खिलाफ़ थे। उन्होंने महाशक्तियों पर व्यापक परमाणु निशस्त्रीकरण के लिए ज़ोर दिया। बहरहाल, परमाणु आयुधों में बढ़ोत्तरी होती रही। साम्यवादी शासन वाले चीन ने 1964 के अक्तूबर में परमाणु परीक्षण किया। अणुशक्ति-संपन्न बिरादरी यानी संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत संघ, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन ने, जो संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य भी थे, दुनिया के अन्य देशों पर 1968 की परमाणु अप्रसार संधि को थोपना चाहा। भारत हमेशा से इस संधि को भेदभावपूर्ण मानता आया था। भारत ने इस पर दस्तखत करने से इनकार कर दिया था। भारत ने जब अपना पहला परमाणु परीक्षण किया तो इसे उसने शांतिपूर्ण परीक्षण करार दिया। भारत का कहना था कि वह अणुशक्ति को सिर्फ शांतिपूर्ण उद्देश्यों में इस्तेमाल करने की अपनी नीति के प्रति दृढ़ संकल्प है।

जिस वक्त परमाणु परीक्षण किया गया था वह दौर घरेलू राजनीति के लिहाज से बड़ा कठिन था। 1973 में अरब-इजरायल युद्ध हुआ था। इसके बाद पूरे विश्व में तेल के लिए हाहाकार मचा हुआ था। अरब राष्ट्रों ने तेल के दामों में भारी वृद्धि कर दी थी। भारत इस वजह से आर्थिक समस्याओं से घिर गया। भारत में मुद्रास्फीति बहुत ज्यादा बढ़ गई। जैसा कि आप छठे अध्याय में पढ़ेंगे, इस वक्त देश में कई आंदोलन चल रहे थे और इसी समय देशव्यापी रेल-हड़ताल भी हुई थी।

© NCERT not to be republished

हालाँकि राजनीतिक दलों के बीच विदेश नीति के बारे में छोटे-मोटे मतभेद जरूर हैं लेकिन भारतीय राजनीति में विभिन्न दलों के बीच राष्ट्रीय अखंडता, अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा की सुरक्षा तथा राष्ट्रीय हित के मसलों पर व्यापक सहमति है। इस कारण, हम देखते हैं कि 1962-1971 के बीच जब भारत ने तीन युद्धों का सामना किया और इसके बाद के समय में भी जब समय-समय पर कई पार्टियों ने सरकार बनाई - विदेश नीति की भूमिका पार्टी की राजनीति में बड़ी सीमित रही।

कुछ आगे की... भारत का परमाणु-कार्यक्रम

भारत ने परमाणु अप्रसार के लक्ष्य को ध्यान में रखकर की गई संधियों का विरोध किया क्योंकि ये संधियाँ उन्हीं देशों पर लागू होने को थीं जो परमाणु शक्ति से हीन थे। इन संधियों के द्वारा परमाणु हथियारों से लैस देशों की जमात के परमाणु शक्ति पर एकाधिकार को वैधता दी जा रही थी। इसी कारण, 1995 में जब परमाणु-अप्रसार संधि को अनियतकाल के लिए बढ़ा दिया गया तो भारत ने इसका विरोध किया और उसने व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (कंप्रेहेंसिव टेस्ट बैन ट्रीटी-सीटीबीटी) पर भी हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया।

भारत ने 1998 के मई में परमाणु परीक्षण किए और यह जताया कि उसके पास सैन्य उद्देश्यों के लिए अणुशक्ति को इस्तेमाल में लाने की क्षमता है। इसके तुरंत बाद पाकिस्तान ने भी परमाणु परीक्षण किए। इससे क्षेत्र में परमाणु युद्ध की आशंका को बल मिला। अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी भारतीय उपमहाद्वीप में हुए इस परमाणु परीक्षण को लेकर बहुत नाराज थी और उसने भारत तथा पाकिस्तान, दोनों पर कुछ प्रतिबंध लगाए जिन्हें बाद में हटा लिया गया। भारत की परमाणु नीति में सैद्धांतिक तौर पर यह बात स्वीकार की गई है कि भारत अपनी रक्षा के लिए परमाणु हथियार रखेगा लेकिन इन हथियारों का 'प्रयोग पहले नहीं' करेगा। भारत की परमाणु नीति में यह बात दुहराई गई है कि भारत वैश्विक स्तर पर लागू और भेदभाव हीन परमाणु निशस्त्रीकरण के प्रति वचनबद्ध है ताकि परमाणु हथियारों से मुक्त विश्व की रचना हो।

विश्व राजनीति के बदलते समीकरण

जैसा कि आप इस किताब के छठे और आठवें अध्याय में पढ़ेंगे, 1977 के बाद के दौर में कई गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं। इस दौर में विश्व राजनीति में भी नाटकीय बदलाव आ रहे थे। इनका भारत के विदेशी संबंधों पर क्या असर पड़ा?

1977 में जनता पार्टी की सरकार बनी थी। इस सरकार ने घोषणा की कि सच्ची गुटनिरपेक्ष नीति का पालन किया जाएगा। इसका आशय यह था कि विदेश नीति में सोवियत संघ के प्रति आए झुकाव को खत्म किया जाएगा। इसके बाद की सभी सरकारों ने (कांग्रेसी या गैर-कांग्रेसी) चीन के साथ बेहतर संबंध बनाने और अमरीका के साथ नजदीकी रिश्ते बनाने की पहल की। भारतीय राजनीति में और आमतौर पर चलने वाली बहसों में भी भारत की विदेश नीति को विशेष तौर पर दो संदर्भों में देखा जाता है - एक तो पाकिस्तान को लेकर भारत के रुख के संदर्भ में और दूसरे भारत-अमरीका संबंधों के संदर्भ में। 1990 के बाद के दौर में अमरीका-समर्थक विदेश नीति अपनाने के लिए शासक दलों की आलोचना हुई है।

विदेश नीति हमेशा राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर बनाई जाती है। रूस लगातार भारत का एक महत्त्वपूर्ण मित्र बना हुआ है लेकिन 1990 के बाद से रूस का अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व कम हुआ है। इसी कारण भारत की विदेश नीति में अमरीका समर्थक रणनीतियाँ अपनाई गई हैं। इसके अतिरिक्त, मौजूदा अंतर्राष्ट्रीय परिवेश में सैन्य-हितों के बजाय आर्थिक-हितों का ज़ोर ज़्यादा है। इसका भी असर भारत की विदेश नीति में अपनाए गए विकल्पों पर पड़ा है। इसके साथ ही साथ, इस अवधि में भारत-पाक संबंधों में भी कई नयी बातें जुड़ीं। कश्मीर दोनों देशों के बीच मुख्य मसले के तौर पर कायम है लेकिन संबंधों को सामान्य बनाने के लिए दोनों देशों ने कई प्रयास किए हैं। सांस्कृतिक आदान-प्रदान, नागरिकों की एक-दूसरे के देश में आवाजाही और पारस्परिक आर्थिक सहयोग को दोनों देशों ने बढ़ावा दिया। क्या आप जानते हैं कि भारत और पाकिस्तान के बीच रेल और बस सेवा की शुरुआत की गई है? यह हाल के समय की सबसे बड़ी उपलब्धि है। बहरहाल, इन सारे प्रयासों के बावजूद 1999 में भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध की स्थिति पैदा हो गई थी। ऐसे माहौल में शांति प्रयासों को धक्का लगा लेकिन स्थायी तौर पर अमन कायम करने के लिए प्रयास जारी हैं।

© NCERT not to be republished

प्रश्नावली

1. इन बयानों के आगे सही या गलत का निशान लगाएँ:
   (क) गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाने के कारण भारत, सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमरीका, दोनों की सहायता हासिल कर सका।
   (ख) अपने पड़ोसी देशों के साथ भारत के संबंध शुरुआत से ही तनावपूर्ण रहे।
   (ग) शीतयुद्ध का असर भारत-पाक संबंधों पर भी पड़ा।
   (घ) 1971 की शांति और मैत्री की संधि संयुक्त राज्य अमरीका से भारत की निकटता का परिणाम थी।

2. निम्नलिखित का सही जोड़ा मिलाएँ:

(क) 1950-64 के दौरान भारत की विदेश नीति का लक्ष्य	(i) तिब्बत के धार्मिक नेता जो सीमा पार करके भारत चले आए।
(ख) पंचशील	(ii) क्षेत्रीय अखंडता और संप्रभुता की रक्षा तथा आर्थिक विकास।
(ग) बांडुंग सम्मेलन	(iii) शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के पाँच सिद्धांत।
(घ) दलाई लामा	(iv) इसकी परिणति गुटनिरपेक्ष आंदोलन में हुई।

3. नेहरू विदेश नीति के संचालन को स्वतंत्रता का एक अनिवार्य संकेतक क्यों मानते थे? अपने उत्तर में दो कारण बताएँ और उनके पक्ष में उदाहरण भी दें।

4. ''विदेश नीति का निर्धारण घरेलू ज़रूरत और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के दोहरे दबाव में होता है।'' 1960 के दशक में भारत द्वारा अपनाई गई विदेश नीति से एक उदाहरण देते हुए अपने उत्तर की पुष्टि करें।

5. अगर आपको भारत की विदेश नीति के बारे में फैसला लेने को कहा जाए तो आप इसकी किन दो बातों को बदलना चाहेंगे। ठीक इसी तरह यह भी बताएँ कि भारत की विदेश नीति के किन दो पहलुओं को आप बरकरार रखना चाहेंगे। अपने उत्तर के समर्थन में तर्क दीजिए।

6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:
   (क) भारत की परमाणु नीति
   (ख) विदेश नीति के मामलों पर सर्व-सहमति

7. भारत की विदेश नीति का निर्माण शांति और सहयोग के सिद्धांतों को आधार मानकर हुआ। लेकिन, 1962-1971 की अवधि यानी महज दस सालों में भारत को तीन युद्धों का सामना करना पड़ा। क्या आपको लगता है कि यह भारत की विदेश नीति की असफलता है अथवा, आप इसे अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का परिणाम मानेंगे? अपने मंतव्य के पक्ष में तर्क दीजिए।

8. क्या भारत की विदेश नीति से यह झलकता है कि भारत क्षेत्रीय स्तर की महाशक्ति बनना चाहता है? 1971 के बांग्लादेश युद्ध के संदर्भ में इस प्रश्न पर विचार करें।

© NCERT not to be republished

9. किसी राष्ट्र का राजनीतिक नेतृत्व किस तरह उस राष्ट्र की विदेश नीति पर असर डालता है? भारत की विदेश नीति के उदाहरण देते हुए इस प्रश्न पर विचार कीजिए।

10. निम्नलिखित अवतरण को पढ़ें और इसके आधार पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए:
गुटनिरपेक्षता का व्यापक अर्थ है अपने को किसी भी सैन्य गुट में शामिल नहीं करना... इसका अर्थ होता है चीज़ों को यथासंभव सैन्य दृष्टिकोण से न देखना और इसकी कभी ज़रूरत आन पड़े तब भी किसी सैन्य गुट के नज़रिए को अपनाने की जगह स्वतंत्र रूप से स्थिति पर विचार करना तथा सभी देशों के साथ दोस्ताना रिश्ते कायम करना....

– *जवाहरलाल नेहरू*

(क) नेहरू सैन्य गुटों से दूरी क्यों बनाना चाहते थे?

(ख) क्या आप मानते हैं कि भारत-सोवियत मैत्री की संधि से गुटनिरपेक्षता के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ? अपने उत्तर के समर्थन में तर्क दीजिए।

(ग) अगर सैन्य-गुट न होते तो क्या गुटनिरपेक्षता की नीति बेमानी होती?

© NCERT not to be republished

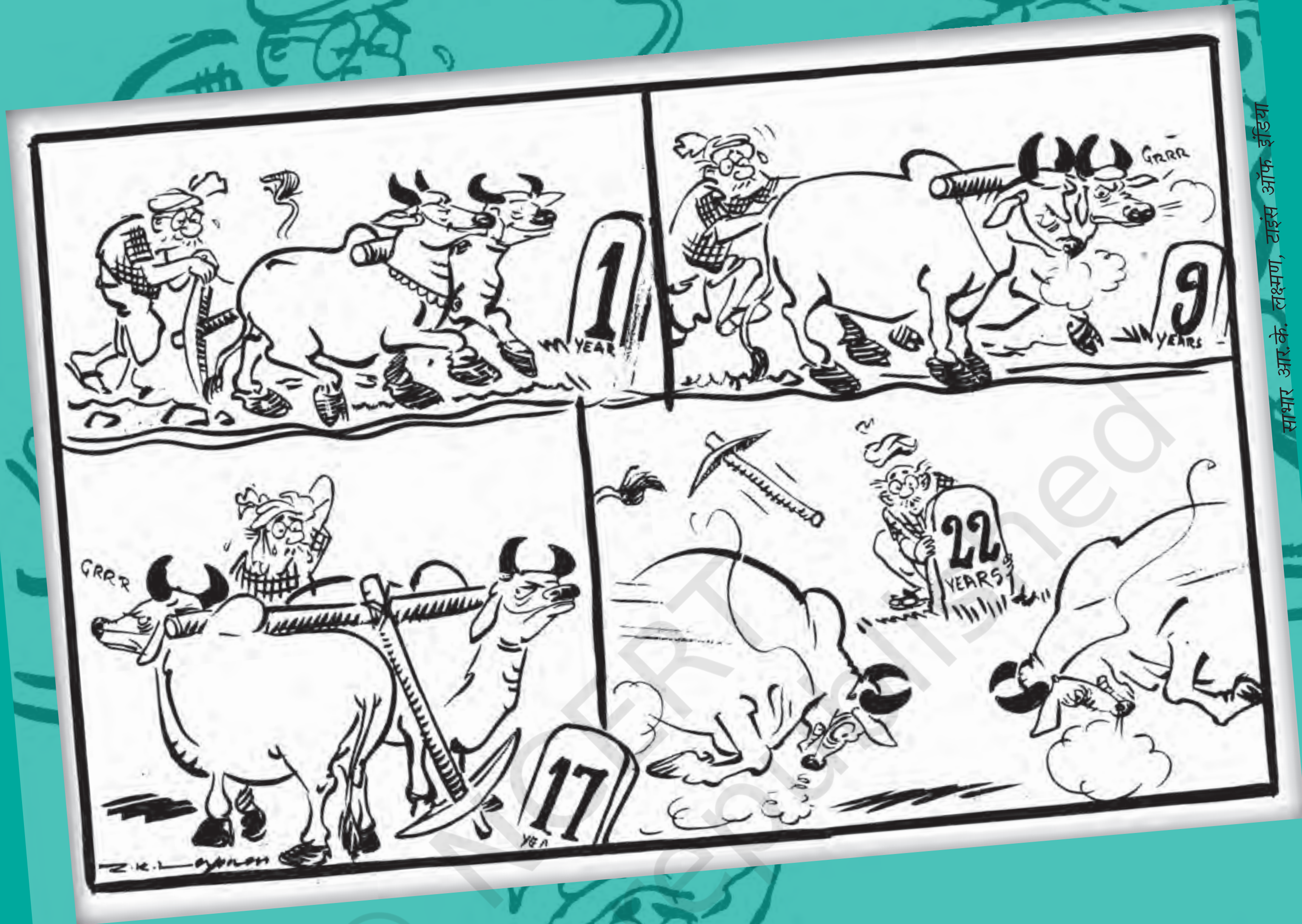

साभार आर.के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

इस अध्याय में...

इस किताब के दूसरे अध्याय में आपने कांग्रेस प्रणाली के उद्‌भव के बारे में पढ़ा था। इस प्रणाली को 1960 के दशक में पहली बार चुनौती मिली। राजनीतिक प्रतिस्पर्धा गहन हो चली थी और ऐसे में कांग्रेस को अपना प्रभुत्व बरकरार रखने में मुश्किलें आ रही थीं। विपक्ष अब पहले की अपेक्षा कम विभाजित और कहीं ज़्यादा ताकतवर था। कांग्रेस को इस विपक्ष की चुनौती का सामना करना पड़ा। कांग्रेस को अंदरूनी चुनौतियाँ भी झेलनी पड़ीं, क्योंकि अब यह पार्टी अपने अंदर की विभिन्नता को एक साथ थामकर नहीं चल पा रही थी। इस अध्याय में हम अपनी बात वहीं से शुरू करेंगे, जहाँ पर दूसरे अध्याय में छोड़ी गई थी, ताकि हम समझ सकें कि

- नेहरू के बाद राजनीति ने क्या करवट ली;
- विपक्ष की एकता और खुद के बिखराव ने कांग्रेस के प्रभुत्व को कैसे चुनौती दी;
- इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में एक नयी कांग्रेस किस तरह इन चुनौतियों से उबरी; और
- कैसे नयी नीतियों तथा विचारधाराओं ने कांग्रेस प्रणाली की पुनर्वापसी की?

आज़ादी के बाद शुरुआत में कांग्रेस का चुनाव चिह्न दो बैलों की जोड़ी था। इस प्रसिद्ध कार्टून में कांग्रेस के भीतर आए बदलावों को दर्शाया गया है। कार्टून में दिखाया गया है कि आज़ादी के 22 वर्ष गुजरते-गुजरते कांग्रेस किस कदर फूट का शिकार हो गई थी।

© NCERT not to be republished

कांग्रेस प्रणाली : चुनौतियाँ और पुनर्स्थापना

12122CH05

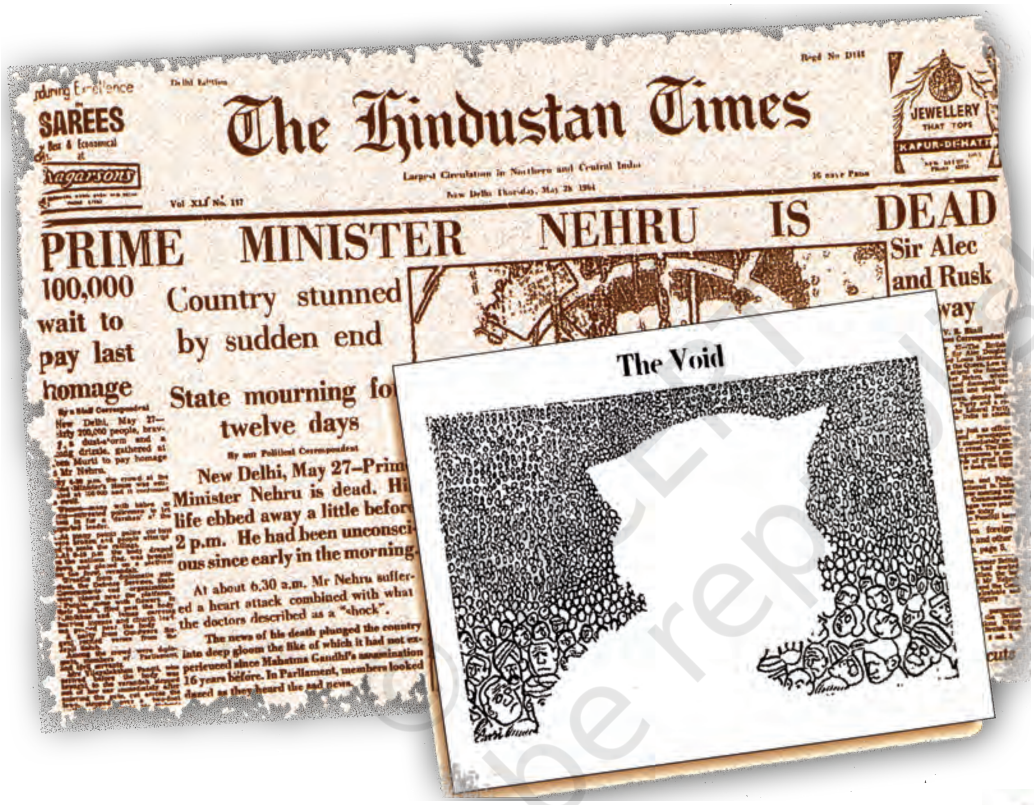
The Hindustan Times

PRIME MINISTER NEHRU IS DEAD

100,000 wait to pay last homage

Country stunned by sudden end

State mourning for twelve days

New Delhi, May 27–Prime Minister Nehru is dead. His life ebbed away a little before 2 p.m. He had been unconscious since early in the morning.

At about 6.30 a.m. Mr Nehru suffered a heart attack combined with what the doctors described as a "shock".

The news of his death plunged the country into deep gloom the like of which it had not experienced since Mahatma Gandhi's assassination 16 years before. In Parliament, members looked dazed as they heard the sad news.

Sir Alec and Rusk

© NCERT not to be republished

राजनीतिक उत्तराधिकार की चुनौती

1964 के मई में नेहरू की मृत्यु हो गई। वे पिछले एक साल से भी ज़्यादा समय से बीमार चल रहे थे। इससे नेहरू के राजनीतिक उत्तराधिकारी को लेकर बड़े अंदेशे लगाए गए कि नेहरू के बाद कौन? लेकिन, भारत जैसे नव-स्वतंत्र देश में इस माहौल में एक और गंभीर सवाल हवा में तैर रहा था कि नेहरू के बाद आखिर इस देश में होगा क्या?

भारत से बाहर के बहुत से लोगों को संदेह था कि यहाँ नेहरू के बाद लोकतंत्र कायम भी रह पाएगा या नहीं। दूसरा सवाल इसी संदेह के दायरे में उठा था। आशंका थी कि बाकी बहुत से नव-स्वतंत्र देशों की तरह भारत भी राजनीतिक उत्तराधिकार का सवाल लोकतांत्रिक ढंग से हल नहीं कर पाएगा। असफल रहने की सूरत में भय था कि सेना राजनीतिक भूमिका में उतर आएगी। इसके अतिरिक्त, इस बात को लेकर भी संदेह थे कि देश के सामने बहुविध कठिनाइयाँ आन खड़ी हैं और नया नेतृत्व उनका समाधान खोज पाएगा या नहीं। 1960 के

दशक को 'खतरनाक दशक' कहा जाता है क्योंकि गरीबी, गैर-बराबरी, सांप्रदायिक और क्षेत्रीय विभाजन आदि के सवाल अभी अनसुलझे थे। संभव था कि इन सारी कठिनाइयों के कारण देश में लोकतंत्र की परियोजना असफल हो जाती अथवा खुद देश ही बिखर जाता।

लालबहादुर शास्त्री
(1904-1966) : भारत के दूसरे प्रधानमंत्री; 1930 से स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी की; उत्तर प्रदेश मंत्रिमंडल में मंत्री रहे; कांग्रेस पार्टी के महासचिव का पदभार सँभाला; 1951-56 तक केंद्रीय मंत्रिमंडल में मंत्री पद पर रहे। इसी दौरान रेल-दुर्घटना की नैतिक जिम्मेवारी लेते हुए उन्होंने रेलमंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया था। बाद में, 1957-64 के बीच भी मंत्री पद पर रहे। आपने 'जय जवान-जय किसान' का मशहूर नारा दिया था।

नेहरू के बाद शास्त्री

नेहरू के उत्तराधिकारी का सवाल इतनी आसानी से हल कर लिया गया कि आलोचक ठगे-से रह गए। नेहरू की मृत्यु के बाद कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष के. कामराज ने अपनी पार्टी के नेताओं और सांसदों से सलाह-मशविरा किया। उन्होंने पाया कि सभी लालबहादुर शास्त्री के पक्ष में हैं। शास्त्री, कांग्रेस संसदीय दल के निर्विरोध नेता चुने गए और इस तरह वे देश के प्रधानमंत्री बने। शास्त्री, उत्तर प्रदेश के थे और नेहरू के मंत्रिमंडल में कई सालों तक मंत्री रहे थे। उनको लेकर कभी किसी किस्म का विवाद नहीं उठा था। अपने आखिरी सालों में नेहरू उन पर ज़्यादा-से-ज़्यादा निर्भर होते गए थे। शास्त्री अपनी सादगी और सिद्धांत निष्ठा के लिए प्रसिद्ध थे। एक दफा वे एक बड़ी रेल दुर्घटना की नैतिक जिम्मेवारी स्वीकार करते हुए रेलमंत्री के पद से इस्तीफा दे चुके थे।

शास्त्री 1964 से 1966 तक देश के प्रधानमंत्री रहे। इस पद पर वे बड़े कम दिनों तक रहे लेकिन इसी छोटी अवधि में देश ने दो बड़ी चुनौतियों का सामना किया। भारत, चीन युद्ध के कारण पैदा हुई आर्थिक कठिनाइयों से उबरने की कोशिश कर रहा था। साथ ही मानसून की असफलता से देश में सूखे की स्थिति थी। कई जगहों पर खाद्यान्न का गंभीर संकट आन पड़ा था। फिर, 1965 में पाकिस्तान के साथ भी युद्ध करना पड़ा। इसके बारे में आपने पिछले अध्याय में पढ़ा था। शास्त्री ने 'जय जवान-जय किसान' का नारा दिया, जिससे इन दोनों चुनौतियों से निपटने के उनके दृढ़ संकल्प का पता चलता है।

प्रधानमंत्री के पद पर शास्त्री बड़े कम दिनों तक रहे। 11 जनवरी 1966 को ताशकंद में अचानक उनका देहान्त हो गया। ताशकंद तब भूतपूर्व सोवियत संघ में था और आज यह उज़्बेकिस्तान की राजधानी है। युद्ध की समाप्ति के सिलसिले में पाकिस्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति मोहम्मद अयूब खान से बातचीत करने और एक समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए वे ताशकंद गए थे।

तमाम अंदेशों के बावजूद इंग्लैंड की तुलना में भारत में प्रधानमंत्री का सवाल ज़्यादा शालीनता और तेज़ी के साथ हल कर लिया गया

3 जून, 1964 के गार्जियन में प्रकाशित संपादकीय। इस संपादकीय में इंग्लैंड और भारत के राजनीतिक घटनाक्रमों की तुलना करते हुए यह बताया गया है कि भारत में जहाँ नेहरू की मृत्यु के बाद नए प्रधानमंत्री के सवाल को जल्दी ही हल कर लिया गया वहीं इंग्लैंड में हैरॉल्ड मैकमिलन के बाद नए प्रधानमंत्री का मामला लंबे समय तक खिंचता रहा।

शास्त्री के बाद इंदिरा गाँधी

शास्त्री की मृत्यु से कांग्रेस के सामने दुबारा राजनीतिक उत्तराधिकारी का सवाल उठ खड़ा हुआ। इस बार मोरारजी देसाई और इंदिरा गाँधी के बीच कड़ा मुकाबला था। मोरारजी देसाई बंबई प्रांत (मौजूदा महाराष्ट्र और गुजरात) के मुख्यमंत्री के पद पर रह चुके थे। केंद्रीय मंत्रिमंडल में वे मंत्री पद पर भी रह चुके थे। जवाहरलाल नेहरू की बेटी इंदिरा गाँधी गुजरे वक्त में कांग्रेस अध्यक्ष के पद पर रह चुकी थीं। शास्त्री के मंत्रिमंडल में उन्होंने सूचना मंत्रालय का प्रभार सँभाला था। इस दफा पार्टी के बड़े नेताओं ने इंदिरा गाँधी को समर्थन देने का मन बनाया लेकिन इंदिरा गाँधी के नाम पर सर्वसम्मति कायम नहीं की जा सकी। ऐसे में फ़ैसले के लिए कांग्रेस के सांसदों ने गुप्त मतदान किया। इंदिरा गाँधी ने मोरारजी देसाई को हरा दिया। उन्हें कांग्रेस पार्टी के दो-तिहाई से अधिक सांसदों ने अपना मत दिया था। नेतृत्व के लिए गहन

© NCERT not to be republished

साभार: आर.के.लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया, 18 जनवरी 1966

प्रतिस्पर्धा के बावजूद पार्टी में सत्ता का हस्तांतरण बड़े शांतिपूर्ण ढंग से संपन्न हो गया। इसे भारतीय लोकतंत्र की परिपक्वता के रूप में देखा गया।

नए प्रधानमंत्री को जमने में थोड़ा वक्त लगा। इंदिरा गाँधी यों तो बड़े लंबे समय से राजनीति में सक्रिय थीं, लेकिन लालबहादुर शास्त्री के मंत्रिमंडल में बड़े कम दिनों से मंत्री पद पर थीं। कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं ने संभवतया यह सोचकर उनका समर्थन किया होगा कि प्रशासनिक और राजनीतिक मामलों में खास अनुभव न होने के कारण समर्थन और दिशा–निर्देशन के लिए इंदिरा गाँधी उन पर निर्भर रहेंगी। प्रधानमंत्री बनने के एक साल के अंदर इंदिरा गाँधी को लोकसभा के चुनावों में पार्टी की अगुवाई करनी पड़ी। इस वक्त तक

इंदिरा गाँधी (1917–1984) : 1966 से 1977 तक और फिर 1980 से 1984 तक भारत की प्रधानमंत्री रहीं; युवा कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में स्वतंत्रता–आंदोलन में भागीदारी; 1959 में कांग्रेस की अध्यक्ष; 1964–66 में शास्त्री मंत्रिमंडल में केंद्रीय मंत्री के पद पर रहीं। 1967, 1971 और 1980 के आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी को अपने नेतृत्व में विजयी बनाया; 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया; 1971 के युद्ध में जीत का श्रेय और प्रिवी पर्स की समाप्ति, बैंकों के राष्ट्रीयकरण, आण्विक–परीक्षण तथा पर्यावरण–संरक्षण के कदम उठाए। जवाहरलाल नेहरू की पुत्री; 31 अक्तूबर 1984 के दिन उनकी हत्या कर दी गई।

© NCERT not to be republished

साभार: रघु राय

देश की आर्थिक स्थिति और भी खराब हो गई थी। इससे इंदिरा की कठिनाइयाँ ज़्यादा बढ़ गईं। इन कठिनाइयों के मद्देनजर उन्होंने पार्टी पर अपना नियंत्रण बढ़ाने और अपने नेतृत्व कौशल को दिखाने की कोशिश की।

चौथा आम चुनाव, 1967

भारत के राजनीतिक और चुनावी इतिहास में 1967 के साल को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पड़ाव माना जाता है। दूसरे अध्याय में आप पढ़ चुके हैं कि 1952 के बाद से पूरे देश में कांग्रेस पार्टी का राजनीतिक दबदबा कायम था। 1967 के चुनावों में इस प्रवृत्ति में गहरा बदलाव आया।

चुनावों का संदर्भ

चौथे आम चुनावों के आने तक देश में बड़े बदलाव हो चुके थे। दो प्रधानमंत्रियों का जल्दी–जल्दी देहावसान हुआ और नए प्रधानमंत्री को पद सँभाले हुए अभी पूरे एक साल का

अरसा भी नहीं गुजरा था। साथ ही, इस प्रधानमंत्री को राजनीति के लिहाज़ से कम अनुभवी माना जा रहा था। इस अध्याय के पूर्ववर्ती हिस्से और तीसरे अध्याय की चर्चा के क्रम में आप यह बात जान चुके हैं कि इस अरसे में देश गंभीर आर्थिक संकट में था। मानसून की असफलता, व्यापक सूखा, खेती की पैदावार में गिरावट, गंभीर खाद्य संकट, विदेशी मुद्रा-भंडार में कमी, औद्योगिक उत्पादन और निर्यात में गिरावट के साथ ही साथ सैन्य खर्चे में भारी बढ़ोतरी हुई थी। नियोजन और आर्थिक विकास के संसाधनों को सैन्य-मद में लगाना पड़ा। इन सारी बातों से देश की आर्थिक स्थिति विकट हो गई थी। इंदिरा गाँधी की सरकार के शुरुआती फ़ैसलों में एक था– रुपये का अवमूल्यन करना। माना गया कि रुपये का अवमूल्यन अमरीका के दबाव में किया गया। पहले के वक्त में 1 अमरीकी डॉलर की कीमत 5 रुपये थी, जो अब बढ़कर 7 रुपये हो गई।

आर्थिक स्थिति की विकटता के कारण कीमतों में तेज़ी से इजाफा हुआ। लोग आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि, खाद्यान्न की कमी, बढ़ती हुई बेरोजगारी और देश की दयनीय आर्थिक स्थिति को लेकर विरोध पर उतर आए। देश में अकसर 'बंद' और 'हड़ताल' की स्थिति रहने लगी। सरकार ने इसे कानून और व्यवस्था की समस्या माना न कि जनता की बदहाली की अभिव्यक्ति। इससे लोगों की नाराजगी बढ़ी और जन विरोध ने ज्यादा उग्र रूप धारण किया।

साम्यवादी और समाजवादी पार्टी ने व्यापक समानता के लिए संघर्ष छेड़ दिया। आप अगले अध्याय में पढ़ेंगे कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से अलग हुए साम्यवादियों के एक समूह ने मार्क्सवादी-लेनिनवादी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी बनायी और सशस्त्र कृषक-विद्रोह का नेतृत्व किया। साथ ही, इस पार्टी ने किसानों के बीच विरोध को संगठित किया। इस अवधि में गंभीर किस्म के हिन्दू-मुस्लिम दंगे भी हुए। आज़ादी के बाद से अब तक इतने गंभीर सांप्रदायिक दंगे नहीं हुए थे।

चुनाव-कथा राजस्थान के एक गाँव की

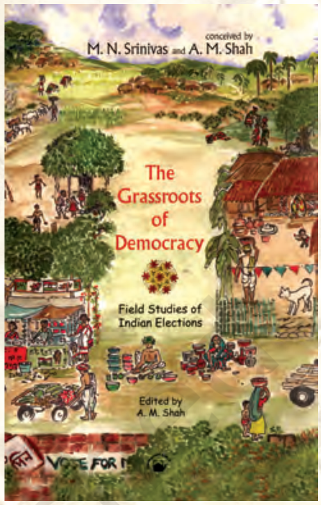

यह प्रसंग 1967 के विधानसभा चुनावों का है। चोमू नामक निर्वाचन क्षेत्र में कांग्रेस और स्वतंत्र पार्टी आमने-सामने थे। लेकिन उस निर्वाचन क्षेत्र के एक गाँव देवीसर में यह हुआ कि स्थानीय राजनीति का समीकरण कांग्रेस और स्वतंत्र पार्टी के चुनावी गणित से जा उलझा। देवीसर में शेर सिंह नाम के व्यक्ति का दबदबा था। परंतु धीरे-धीरे उसका भतीजा भीम सिंह ज्यादा लोकप्रिय होने लगा था। हालाँकि दोनों ही राजपूत थे, किन्तु भीम सिंह ने पंचायत का प्रधान बनने के बाद अन्य समुदायों के बीच भी जगह बना ली थी। दरअसल, उसने राजपूतों के अलावा गैर-राजपूत समुदायों को जोड़कर एक नया राजनीतिक समीकरण तैयार कर डाला था। भीम सिंह ने आस पास के गाँवों में ग्राम प्रधान पद के लिए कई उम्मीदवारों को समर्थन देने की घोषणा करके एक गठबंधन-सा तैयार कर लिया। भीम सिंह इतने भर से संतुष्ट नहीं था। वह कांग्रेस नेता और राज्य के मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया के पास एक प्रतिनिधिमंडल लेकर जा पहुँचा। उसने मुख्यमंत्री पर इस बात के लिए दबाव बनाने की कोशिश की कि आगामी विधानसभा चुनावों में उसके एक राजनीतिक सहयोगी को कांग्रेस की तरफ़ से उम्मीदवार बनाया जाए। मुख्यमंत्री सुखाड़िया ने भीम सिंह को समझाया कि ऐसा कर पाना मुश्किल होगा। उल्टे उन्होंने भीम सिंह को अपने मनपसंद उम्मीदवार को समर्थन देने के लिए राजी कर लिया। अब भीम सिंह ने अपने समर्थकों से मुख्यमंत्री द्वारा सुझाए गए उम्मीदवार के लिए काम करने को कहा। दरअसल, भीम सिंह यह बात भलीभाँति जानता था कि अगर कांग्रेसी उम्मीदवार जीत जाता है, तो उसका मंत्री बनना तय है और उसके मंत्री बनने का अर्थ है कि भीम सिंह मंत्री से सीधे संपर्क स्थापित कर सकता है।

शेर सिंह के पास स्वतंत्र पार्टी के उम्मीदवार का साथ देने के अलावा और कोई चारा नहीं था। पार्टी का उम्मीदवार जागीरदार था। गाँव में चुनाव-प्रचार करने के दौरान शेर सिंह लोगों से यही कहता था कि जागीरदार गाँव में स्कूल का निर्माण कराएगा और गाँव के विकास के लिए अपनी जेब से पैसा लगाएगा। खैर, संक्षेप में, देवीसर गाँव में विधानसभा चुनाव चाचा-भतीजे की खेमेबाजी में बदल गया था।

आनंद चक्रवती की पुस्तक *ए विलेज इन चोमू असेंबली कॉन्सटीट्एंसी इन राजस्थान* पर आधारित।

"...भारत में जिस तरह की प्रवृत्तियाँ जारी हैं, उनमें एक सुव्यवस्थित समाज रचना को बनाए रखने का काम नागरिक सरकार के हाथों से जाता रहेगा और सेना ही फिर कानून-व्यवस्था बनाए रखने का एकमात्र विकल्प होगी... भारत को लोकतांत्रिक ढाँचे के भीतर विकसित करने का महान प्रयोग असफल हो चुका है..."

नेविए मैक्सवेल ने उपर्युक्त बातें अपने लेख *'इंडियाज़ डिसइंटीग्रेटिंग डेमोक्रेसी'* में कही थीं। यह लेख 'लंदन टाइम्स' में प्रकाशित (1967) हुआ था।

गैर-कांग्रेसवाद

यह सारी स्थिति देश की दलगत राजनीति से अलग-थलग नहीं रह सकती थी। विपक्षी दल जनविरोध की अगुवाई कर रहे थे और सरकार पर दबाव डाल रहे थे। कांग्रेस की विरोधी पार्टियों ने महसूस किया कि उसके वोट बँट जाने के कारण ही कांग्रेस सत्तासीन है। जो दल अपने कार्यक्रम अथवा विचारधाराओं के धरातल पर एक-दूसरे से एकदम अलग थे, वे सभी दल एकजुट हुए और उन्होंने कुछ राज्यों में एक कांग्रेस विरोधी मोर्चा बनाया तथा अन्य राज्यों में सीटों के मामले में चुनावी तालमेल किया। इन दलों को लगा कि इंदिरा गाँधी की अनुभवहीनता और कांग्रेस की अंदरूनी उठापटक से उन्हें कांग्रेस को सत्ता से हटाने का एक अवसर हाथ लगा है। समाजवादी नेता राममनोहर लोहिया ने इस रणनीति को 'गैर-कांग्रेसवाद' का नाम दिया। उन्होंने 'गैर-कांग्रेसवाद' के पक्ष में सैद्धांतिक तर्क देते हुए कहा कि कांग्रेस का शासन अलोकतांत्रिक और गरीब लोगों के हितों के खिलाफ़ है इसलिए गैर-कांग्रेसी दलों का एक साथ आना जरूरी है, ताकि गरीबों के हक में लोकतंत्र को वापस लाया जा सके।

सी. नटराजन अन्नादुरई (1909–1969) : 1967 से मद्रास (तमिलनाडु) के मुख्यमंत्री; चर्चित पत्रकार, लेखक एवं वक्ता; मद्रास राज्य में जस्टिस पार्टी से संबद्ध; बाद में द्रविड़ कषगम (1934) में शामिल; 1949 में द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम का बतौर राजनीतिक पार्टी गठन; द्रविड़ संस्कृति के समर्थक, हिंदी का विरोध एवं हिंदी विरोधी आंदोलन का नेतृत्व; राज्यों की व्यापक स्वायत्तता के समर्थक।

राममनोहर लोहिया (1910–1967): समाजवादी नेता एवं विचारक; स्वतंत्रता-सेनानी एवं कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य; मूल पार्टी में विभाजन के बाद सोशलिस्ट पार्टी एवं बाद में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेता; 1963 से 1967 तक लोकसभा सांसद, 'मैनकाइंड' एवं 'जन' के संस्थापक संपादक, गैर-यूरोपीय समाजवादी सिद्धांत के विकास में मौलिक योगदान; विचारधारा का संयोजन; गैर-कांग्रेसवाद के रणनीतिकार, पिछड़े वर्गों को आरक्षण की वकालत और अंग्रेज़ी विरोध के अलावा ऐसे राजनीतिक नेता के रूप में चर्चित, जिन्होंने नेहरू के खिलाफ़ मोर्चा खोला।

चुनाव का जनादेश

व्यापक जन-असंतोष और राजनीतिक दलों के ध्रुवीकरण के इसी माहौल में लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के लिए 1967 के फरवरी माह में चौथे आम चुनाव हुए। कांग्रेस पहली बार नेहरू के बिना मतदाताओं का सामना कर रही थी।

चुनाव के परिणामों से कांग्रेस को राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तर पर गहरा धक्का लगा। तत्कालीन अनेक राजनीतिक पर्यवेक्षकों ने चुनाव परिणामों को 'राजनीतिक भूकंप' की संज्ञा दी। कांग्रेस को जैसे-तैसे लोकसभा में बहुमत तो मिल गया था, लेकिन उसको प्राप्त मतों के प्रतिशत तथा सीटों की संख्या में भारी गिरावट आई थी। अब से पहले कांग्रेस को कभी न तो इतने कम वोट मिले थे और न ही इतनी कम सीटें मिली थीं। इंदिरा गाँधी के मंत्रिमंडल के आधे मंत्री चुनाव हार गए थे। तमिलनाडु से कामराज, महाराष्ट्र से एस.के. पाटिल, पश्चिम बंगाल से अतुल्य घोष और बिहार से के.बी. सहाय जैसे राजनीतिक दिग्गजों को मुँह की खानी पड़ी थी।

© NCERT not to be republished

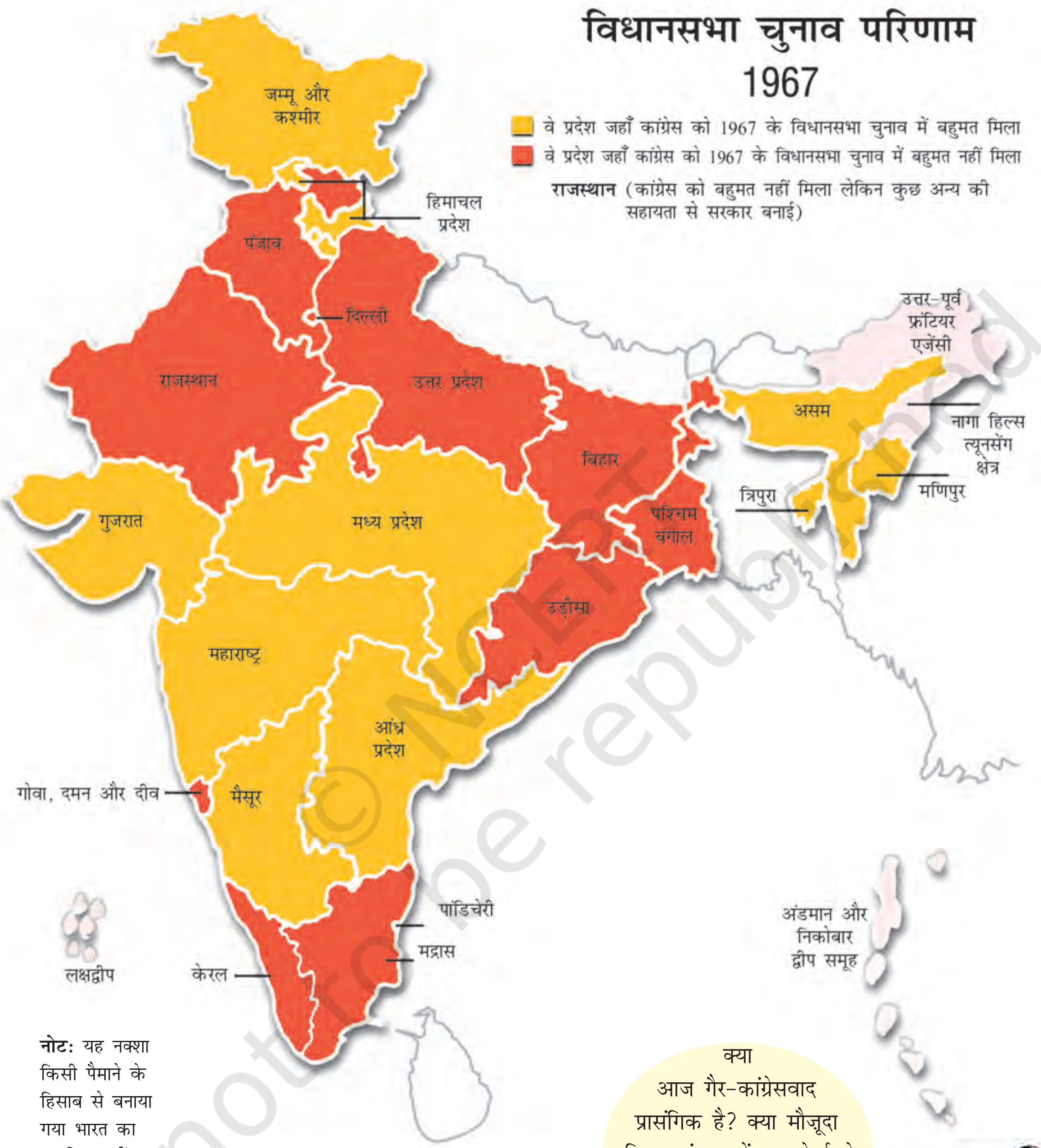

नोटः यह नक्शा किसी पैमाने के हिसाब से बनाया गया भारत का मानचित्र नहीं है। इसमें दिखाई गई भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को प्रामाणिक सीमा रेखा न माना जाए।

© NCERT not to be republished

राजनीतिक बदलाव की यह नाटकीय स्थिति आपको राज्यों में और ज़्यादा स्पष्ट नज़र आएगी। कांग्रेस को सात राज्यों में बहुमत नहीं मिला। दो अन्य राज्यों में दलबदल के कारण यह पार्टी सरकार नहीं बना सकी। जिन 9 राज्यों में कांग्रेस के हाथ से सत्ता निकल गई थी, वे देश के किसी एक भाग में कायम राज्य नहीं थे। ये राज्य पूरे देश के अलग-अलग हिस्सों में थे। कांग्रेस पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मद्रास और केरल में सरकार नहीं बना सकी। मद्रास प्रांत (अब इसे तमिलनाडु कहा जाता है) में एक क्षेत्रीय पार्टी द्रविड़ मुनेत्र कड़गम पूर्ण बहुमत के साथ सत्ता पाने में कामयाब रही। द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डीएमके) हिंदी-विरोधी आंदोलन का नेतृत्व करके सत्ता में आई थी। यहाँ के छात्र हिंदी को राजभाषा के रूप में केंद्र द्वारा अपने ऊपर थोपने का विरोध कर रहे थे और डीएमके ने उनके इस विरोध को नेतृत्व प्रदान किया था। चुनावी इतिहास में यह पहली घटना थी जब किसी गैर-कांग्रेसी दल को किसी राज्य में पूर्ण बहुमत मिला। अन्य आठ राज्यों में विभिन्न गैर-कांग्रेसी दलों की गठबंधन सरकार बनी। उस समय आमतौर पर कहा जाता था कि दिल्ली से हावड़ा जाने के लिए ट्रेन पर बैठो, तो यह ट्रेन अपने पूरे रास्ते में एक भी कांग्रेस-शासित राज्य से होकर नहीं गुज़रेगी। लोग कांग्रेस को सत्तासीन देखने के अभ्यस्त थे और उनके लिए यह एक विचित्र अनुभव था। तो क्या मान लिया जाए कि कांग्रेस का दबदबा खत्म हो गया?

गठबंधन

1967 के चुनावों से गठबंधन की परिघटना सामने आयी। चूँकि किसी पार्टी को बहुमत नहीं मिला था, इसलिए अनेक गैर-कांग्रेसी पार्टियों ने एकजुट होकर संयुक्त विधायक दल बनाया और गैर-कांग्रेसी सरकारों को समर्थन दिया। इसी कारण इन सरकारों को संयुक्त विधायक दल की सरकार कहा गया। अधिकतर मामलों में ऐसी सरकार के घटक दल विचारधारा के लिहाज से एक-दूसरे से भिन्न थे। मिसाल के लिए बिहार में बनी संयुक्त विधायक दल की सरकार में दो समाजवादी पार्टियाँ—एसएसपी और पीएसपी—शामिल थीं। इनके साथ इस सरकार में वामपंथी—सीपीआई और दक्षिणपंथी जनसंघ—भी शामिल थे। पंजाब में बनी संयुक्त विधायक दल की सरकार को 'पॉपुलर यूनाइटेड फ्रंट' की सरकार कहा गया। इसमें उस वक्त के दो परस्पर प्रतिस्पर्धी अकाली दल—संत ग्रुप और मास्टर ग्रुप शामिल थे। इनके साथ सरकार में दोनों साम्यवादी दल सीपीआई और सीपीआई (एम), एसएसपी, रिपब्लिकन पार्टी और भारतीय जनसंघ भी शामिल थे।

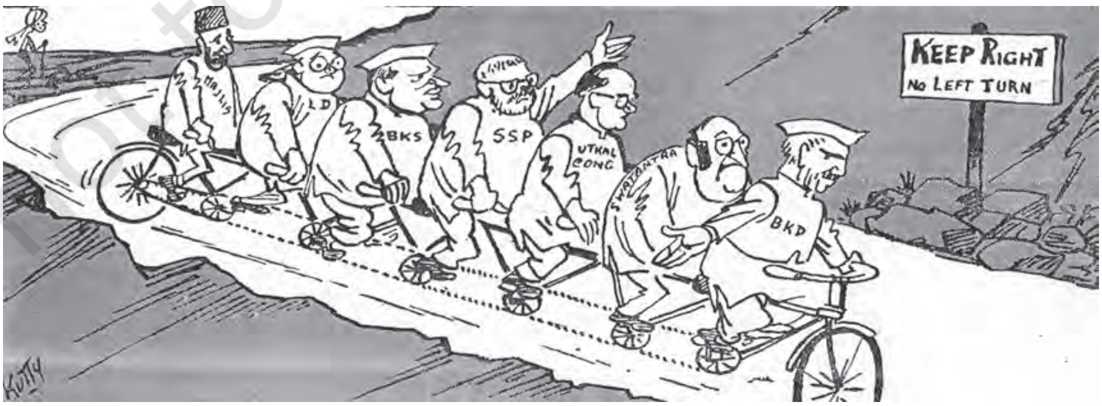

साभार: कुट्टी

1974 में गैर-साम्यवादी दलों का एक संयुक्त मोर्चा बनाने की कोशिशों पर कार्टूनिस्ट का नज़रिया।

© NCERT not to be republished

दल-बदल

1967 के चुनावों की एक खास बात दल-बदल भी है। इसने राज्यों में सरकारों के बनने-बिगड़ने में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। कोई जनप्रतिनिधि किसी खास दल के चुनाव चिह्न को लेकर चुनाव लड़े और जीत जाए और चुनाव जीतने के बाद इस दल को छोड़कर किसी दूसरे दल में शामिल हो जाए, तो इसे दल-बदल कहते हैं। 1967 के आम चुनावों के बाद कांग्रेस को छोड़ने वाले विधायकों ने तीन राज्यों–हरियाणा, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश–में गैर-कांग्रेसी सरकारों को बहाल करने में अहम भूमिका निभायी। इस दौर में राजनीतिक निष्ठा की इस अदल-बदल से 'आया राम-गया राम' का जुमला मशहूर हुआ।

'आया राम-गया राम'

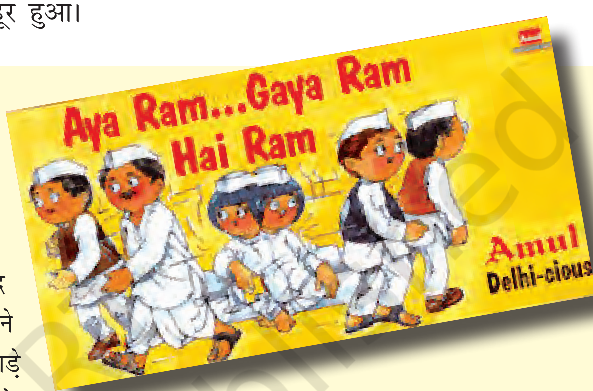

विधायकों द्वारा तुरंत-फुरंत पार्टी छोड़कर दूसरी-तीसरी पार्टी में शामिल होने की घटना से भारत के राजनीतिक शब्दकोश में 'आया राम-गया राम' का जुमला दाखिल हुआ। इस जुमले की प्रसिद्धि के साथ एक खास घटना जुड़ी हुई है। 1967 के चुनावों के बाद हरियाणा के एक विधायक–गया लाल ने राजनीतिक निष्ठा बदलने का जैसे एक कीर्तिमान ही स्थापित कर दिया था। उन्होंने एक पखवाड़े के अंदर तीन दफा अपनी पार्टी बदली। पहले वे कांग्रेस से यूनाइटेड फ्रंट में गए, फिर कांग्रेस में लौटे और कांग्रेस में लौटने के 9 घंटों के अंदर दोबारा यूनाइटेड फ्रंट में चले गए। कहा जाता है कि जब गया लाल ने यूनाइटेड फ्रंट छोड़कर कांग्रेस में आने की मंशा ज़ाहिर की तो कांग्रेस के नेता राव वीरेन्द्र सिंह ने उन्हें लेकर चंडीगढ़ में प्रेस के सामने घोषणा की –"गया राम था अब आया राम है।" गया लाल की इस हड़बड़ी को 'आया राम-गया राम' के जुमले में हमेशा के लिए दर्ज़ कर लिया गया। उनकी इस हड़बड़ी को लेकर बहुत-से चुटकुले और कार्टून बने। बाद के समय में दल-बदल रोकने के लिए संविधान में संशोधन किया गया।

कांग्रेस में विभाजन

हमने देखा कि 1967 के चुनावों के बाद केंद्र में कांग्रेस की सत्ता कायम रही, लेकिन उसे पहले जितना बहुमत हासिल नहीं था। साथ ही अनेक राज्यों में इस पार्टी के हाथ से सत्ता जाती रही। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कि चुनाव के नतीजों ने साबित कर दिया था कि कांग्रेस को चुनावों में हराया जा सकता है। बहरहाल, अब भी कांग्रेस का कोई विकल्प नहीं था। राज्यों में बनी अधिकतर गैर-कांग्रेसी गठबंधन की सरकारें ज़्यादा दिनों तक नहीं टिक पाईं। इन सरकारों ने बहुमत खोया और उन्हें या तो नए सिरे से गठबंधन बनाना पड़ा अथवा राष्ट्रपति शासन लागू करना पड़ा।

इंदिरा बनाम सिंडिकेट

इंदिरा गाँधी को असली चुनौती विपक्ष से नहीं बल्कि खुद अपनी पार्टी के भीतर से मिली। उन्हें 'सिंडिकेट' से निपटना पड़ा। 'सिंडिकेट' कांग्रेस

के. कामराज (1903-1975) : स्वतंत्रता-सेनानी और कांग्रेस के नेता; मद्रास (तमिलनाडु) के मुख्यमंत्री रहे; मद्रास प्रांत में शिक्षा का प्रसार करने और स्कूली बच्चों को 'दोपहर का भोजन' देने की योजना लागू करने के लिए प्रसिद्ध; 1963 में उन्होंने प्रस्ताव रखा कि सभी वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं को इस्तीफ़ा दे देना चाहिए, ताकि अपेक्षाकृत युवा पार्टी कार्यकर्ता कमान सँभाल सकें। यह प्रस्ताव 'कामराज योजना' के नाम से मशहूर हुआ। आप कांग्रेस अध्यक्ष भी रहे।

© NCERT not to be republished

कांग्रेस 'सिंडिकेट'

कांग्रेसी नेताओं के एक समूह को अनौपचारिक तौर पर 'सिंडिकेट' के नाम से इंगित किया जाता था। इस समूह के नेताओं का पार्टी के संगठन पर नियंत्रण था। 'सिंडिकेट' के अगुवा मद्रास प्रांत के भूतपूर्व मुख्यमंत्री और फिर कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष रह चुके के. कामराज थे। इसमें प्रांतों के ताकतवर नेता जैसे बंबई सिटी (अब मुंबई) के एस.के. पाटिल, मैसूर (अब कर्नाटक) के एस. निजलिंगप्पा, आंध्र प्रदेश के एन. संजीव रेड्डी और पश्चिम बंगाल के अतुल्य घोष शामिल थे। लालबहादुर शास्त्री और उसके बाद इंदिरा गाँधी, दोनों ही सिंडिकेट की सहायता से प्रधानमंत्री के पद पर आरूढ़ हुए थे। इंदिरा गाँधी के पहले मंत्रिपरिषद् में इस समूह की निर्णायक भूमिका रही। इसने तब नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन में भी अहम भूमिका निभायी थी। कांग्रेस के विभाजित होने के बाद सिंडीकेट के नेताओं और उनके प्रति निष्ठावान कांग्रेसी कांग्रेस (ओ) में ही रहे। चूँकि इंदिरा गाँधी की कांग्रेस (आर) ही लोकप्रियता की कसौटी पर सफल रही, इसलिए भारतीय राजनीति के ये बड़े और ताकतवर नेता 1971 के बाद प्रभावहीन हो गए।

एस. निजलिंगप्पा (1902-2000) : वरिष्ठ कांग्रेस नेता; संविधान सभा के सदस्य; लोकसभा के सदस्य; तत्कालीन मैसूर प्रांत (अब कर्नाटक) के मुख्यमंत्री; आधुनिक कर्नाटक के निर्माता के रूप में प्रसिद्ध; 1968-71 के दौरान कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष।

के भीतर ताकतवर और प्रभावशाली नेताओं का एक समूह था। 'सिंडिकेट' ने इंदिरा गाँधी को प्रधानमंत्री बनवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उसी ने इंदिरा गाँधी का कांग्रेस संसदीय दल के नेता के रूप में चुना जाना सुनिश्चित किया था। सिंडिकेट के नेताओं को उम्मीद थी कि इंदिरा गाँधी उनकी सलाहों पर अमल करेंगी। बहरहाल, इंदिरा गाँधी ने सरकार और पार्टी के भीतर खुद का मुकाम बनाना शुरू किया। उन्होंने अपने सलाहकारों और विश्वस्तों के समूह में पार्टी से बाहर के लोगों को रखा। धीरे-धीरे और बड़ी सावधानी से उन्होंने सिंडिकेट को हाशिए पर ला खड़ा किया।

इस तरह इंदिरा गाँधी ने दो चुनौतियों का सामना किया। उन्हें 'सिंडिकेट' के प्रभाव से स्वतंत्र अपना मुकाम बनाने की ज़रूरत थी। कांग्रेस ने 1967 के चुनाव में जो ज़मीन खोयी थी उसे भी उन्हें हासिल करना था। इंदिरा गाँधी ने बड़ी साहसिक रणनीति अपनायी। उन्होंने एक साधारण से सत्ता-संघर्ष को विचारधारात्मक संघर्ष में बदल दिया। उन्होंने सरकार की नीतियों को वामपंथी रंग देने के लिए कई कदम उठाए। 1967 की मई में कांग्रेस कार्यसमिति ने उनके प्रभाव से दस-सूत्री कार्यक्रम अपनाया। इस कार्यक्रम में बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण, आम बीमा के राष्ट्रीयकरण, शहरी संपदा और आय के परिसीमन, खाद्यान्न का सरकारी वितरण, भूमि सुधार तथा ग्रामीण गरीबों को

कर्पूरी ठाकुर (1924-1988) : दिसंबर 1970 और जून 1971 तथा जून 1977 और अप्रैल 1979 के दौरान बिहार के मुख्यमंत्री; स्वतंत्रता सेनानी एवं समाजवादी नेता; मज़दूर एवं किसान आंदोलनों में सक्रिय; लोहिया के प्रबल समर्थक; जेपी द्वारा चलाए गए आंदोलन में भागीदारी; मुख्यमंत्री के रूप में अपने दूसरे कार्यकाल के दौरान बिहार में पिछड़ों के लिए आरक्षण लागू करने वाले के रूप में पहचान; अंग्रेज़ी भाषा के इस्तेमाल के प्रबल विरोधी।

© NCERT not to be republished

आवासीय भूखंड देने के प्रावधान शामिल थे। हालाँकि सिंडिकेट के नेताओं ने औपचारिक तौर पर वामपंथी खेमे के इस कार्यक्रम को स्वीकृति दे दी, लेकिन इसे लेकर उनके मन में गहरे संदेह थे।

राष्ट्रपति पद का चुनाव, 1969

सिंडिकेट और इंदिरा गाँधी के बीच की गुटबाज़ी 1969 में राष्ट्रपति पद के चुनाव के समय खुलकर सामने आ गई। तत्कालीन राष्ट्रपति ज़ाकिर हुसैन की मृत्यु के कारण उस साल राष्ट्रपति का पद खाली था। इंदिरा गाँधी की असहमति के बावजूद उस साल सिंडिकेट ने तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष एन. संजीव रेड्डी को कांग्रेस पार्टी की तरफ़ से राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के रूप में खड़ा करवाने में सफलता पाई। एन. संजीव रेड्डी से इंदिरा गाँधी की बहुत दिनों से राजनीतिक अनबन चली आ रही थी। ऐसे में इंदिरा गाँधी ने भी हार नहीं मानी। उन्होंने तत्कालीन उपराष्ट्रपति वी.वी. गिरि को बढ़ावा दिया कि वे एक स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में राष्ट्रपति पद के लिए अपना नामांकन भरें। इंदिरा गाँधी ने

वी.वी. गिरि (1894-1980) : 1969 से 1974 तक भारत के राष्ट्रपति; कांग्रेस नेता एवं आंध्र प्रदेश के मज़दूर नेता; सिलोन (श्रीलंका) में भारतीय उच्चायुक्त; केंद्रीय मंत्रिमंडल में श्रम मंत्री, उत्तर प्रदेश, केरल, मैसूर (कर्नाटक) के राज्यपाल; उपराष्ट्रपति (1967 से 1969) एवं राष्ट्रपति ज़ाकिर हुसैन के निधन के बाद कार्यकारी राष्ट्रपति; इस्तीफ़ा एवं राष्ट्रपति चुनाव में स्वतंत्र प्रत्याशी; राष्ट्रपति के चुनाव में इंदिरा गाँधी के समर्थन से विजयी।

साभार: आर.के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 21 अगस्त 1969

यह कार्टून वी.वी. गिरि की जीत के बाद छपा था। इसमें उन्हें एक विजयी मुक्केबाज़ के रूप में दिखाया गया है। उनके गले में माला लटक रही है। उनका मुकाबला सिंडिकेट के उम्मीदवार से था। कार्टून में सिंडिकेट के प्रतीक के रूप में निजलिंगप्पा को घुटने टेकते दिखाया गया है। क्या आप बता सकते हैं कि इस कार्टून में इंदिरा गाँधी को मुक्केबाज़ी वाला दस्ताना पहने क्यों दिखाया गया है।

© NCERT not to be republished

इतिहास... लोकतंत्र की त्रासदी के ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है, जब जनसमर्थन की लहर के बूते अथवा किसी लोकतांत्रिक संगठन के बल पर सत्तासीन हुआ नेता राजनीतिक आत्ममोह का शिकार हो जाता है और चरित्रहीन चाटुकार दरबारियों की बातों में जीने लगता है...

एस. निजलिंगप्पा

इंदिरा गाँधी को पार्टी से निष्कासित करते हुए एस. निजलिंगप्पा ने उन्हें 11 नवंबर 1969 को एक चिट्ठी लिखी। उपर्युक्त पंक्तियाँ इसी पत्र का अंश हैं।

चौदह अग्रणी बैंकों के राष्ट्रीयकरण और भूतपूर्व राजा-महाराजाओं को प्राप्त विशेषाधिकार यानी 'प्रिवी पर्स' को समाप्त करने जैसी कुछ बड़ी और जनप्रिय नीतियों की घोषणा भी की। उस वक्त मोरारजी देसाई देश के उपप्रधानमंत्री और वित्तमंत्री थे। उपर्युक्त दोनों मुद्दों पर प्रधानमंत्री और उनके बीच गहरे मतभेद उभरे और इसके परिणामस्वरूप मोरारजी ने सरकार से किनारा कर लिया।

गुज़रे वक्त में भी कांग्रेस के भीतर इस तरह के मतभेद उठ चुके थे, लेकिन इस बार मामला कुछ अलग ही था। दोनों गुट चाहते थे कि राष्ट्रपति पद के चुनाव में ताकत को आजमा ही लिया जाए। तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष एस. निजलिंगप्पा ने 'व्हिप' जारी किया कि सभी 'कांग्रेसी सांसद और विधायक पार्टी के आधिकारिक उम्मीदवार संजीव रेड्डी को वोट डालें।' इंदिरा गाँधी के समर्थक गुट ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की विशेष बैठक आयोजित करने की याचना की, लेकिन उनकी यह याचना स्वीकार नहीं की गई। वी.वी. गिरि का छुपे तौर पर समर्थन करते हुए प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने खुलेआम अंतरात्मा की आवाज़ पर वोट डालने को कहा। इसका मतलब यह था कि कांग्रेस के सांसद और विधायक अपनी मनमर्ज़ी से किसी भी उम्मीदवार को वोट डाल सकते हैं। आखिरकार राष्ट्रपति पद के चुनाव में वी.वी. गिरि ही विजयी हुए। वे स्वतंत्र उम्मीदवार थे, जबकि एन. संजीव रेड्डी कांग्रेस पार्टी के आधिकारिक उम्मीदवार थे।

कांग्रेस पार्टी के आधिकारिक उम्मीदवार की हार से पार्टी का टूटना तय हो गया। कांग्रेस अध्यक्ष ने प्रधानमंत्री को अपनी पार्टी से निष्कासित कर दिया। पार्टी से निष्कासित प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने कहा कि उनकी पार्टी ही असली कांग्रेस है। 1969 के नवंबर तक सिंडिकेट की अगुवाई वाले कांग्रेसी खेमे को कांग्रेस (ऑर्गनाइजेशन) और इंदिरा गाँधी की अगुवाई वाले कांग्रेसी खेमे को कांग्रेस (रिक्विजिनिस्ट) कहा जाने लगा था। इन दोनों दलों को क्रमशः 'पुरानी कांग्रेस' और 'नयी कांग्रेस' भी कहा जाता था। इंदिरा गाँधी ने पार्टी की इस टूट को

'प्रिवी पर्स' की समाप्ति

पहले अध्याय में आपने देसी रियासतों के विलय के बारे में पढ़ा था। देसी रियासतों का विलय भारतीय संघ में करने से पहले सरकार ने यह आश्वासन दिया था कि रियासतों के तत्कालीन शासक परिवार को निश्चित मात्रा में निजी संपदा रखने का अधिकार होगा। साथ ही सरकार की तरफ़ से उन्हें कुछ विशेष भत्ते भी दिए जाएँगे। ये दोनों चीज़ें (यानी शासक की निजी संपदा और भत्ते) इस बात को आधार मानकर तय की जाएँगी कि जिस राज्य का विलय किया जाना है उसका विस्तार, राजस्व और क्षमता कितनी है। इस व्यवस्था को 'प्रिवी पर्स' कहा गया। रियासतों के विलय के समय राजा-महाराजाओं को दी गई इस विशेष सुविधा की कुछ खास आलोचना नहीं हुई थी। उस वक्त देश की एकता, अखंडता का लक्ष्य ही प्रमुख था।

बहरहाल ये वंशानुगत विशेषाधिकार भारतीय संविधान में वर्णित समानता और सामाजिक-आर्थिक न्याय के सिद्धांतों से मेल नहीं खाते थे। नेहरू ने कई दफे इस व्यवस्था को लेकर अपना असंतोष जताया था। 1967 के चुनावों के बाद इंदिरा गाँधी ने 'प्रिवी पर्स' को खत्म करने की माँग का समर्थन किया। उनकी राय थी कि सरकार को 'प्रिवी पर्स' की व्यवस्था समाप्त कर देनी चाहिए। मोरारजी देसाई प्रिवी पर्स की समाप्ति को नैतिक रूप से गलत मानते थे। उनका कहना था कि यह 'रियासतों के साथ विश्वासघात' के बराबर होगा।

प्रिवी पर्स की व्यवस्था को खत्म करने के लिए सरकार ने 1970 में संविधान में संशोधन के प्रयास किए, लेकिन राज्यसभा में यह मंजूरी नहीं पा सका। इसके बाद सरकार ने एक अध्यादेश जारी किया, लेकिन इसे सर्वोच्च न्यायालय ने निरस्त कर दिया। इंदिरा गाँधी ने इसे 1971 के चुनावों में एक बड़ा मुद्दा बनाया और इस मुद्दे पर उन्हें जन समर्थन भी खूब मिला। 1971 में मिली भारी जीत के बाद संविधान में संशोधन हुआ और इस तरह प्रिवी पर्स की समाप्ति की राह में मौजूद कानूनी अड़चनें खत्म हो गईं।

© NCERT not to be republished

JEWELLERY PEARLS, EMERALDS RUBIES NAVRATAN NEW DESIGNS GIRDHARILAL

THE HINDUSTAN TIMES

Regd No D144 — New Delhi Saturday August 16 1969 — Eighteen Paise

KUTAB MINAR ARTIST PENCILS for ARTISTS ARCHITECTS DRAUGHTSMEN AND ENGINEERS

PM INSISTS ON FREE VOTE

Congress splits on historic day

No-confidence move against Nijalingappa

Hindustan Times Correspondent

New Delhi, Aug. 15—Confirming the worst fears of the past few

States trend shows no major change

A decision to stand by the mandate and an equally pronounced reiteration of the demand for a free vote in the Presidential poll marked the final phase of the campaign by rival Congress factions in the States The following developments were reported on Thursday by Hindustan Times Correspondents:

1) Kashmir · Congress decided "almost unanimously" to vote for Mr Giri There are 62 Congress members, three Jan Sangh, three National Conference and three Independents in the Assembly. The three Independents are voting for Mr Giri.

2) Punjab: Leader of the Congress Legislature Party Harinder Singh and PCC President Zail Singh have withdrawn their earlier whips asking members to vote for Mr Reddy.

3) Haryana: Twelves Congress MLAs decided to vote according to their conscience.

4) Gujarat: No change in Congress MLAs decision to stand by the party mandate.

5) Madhya Pradesh: The dismissal of Mr D. P. Mishra's election petition brought a lull in the "free vote" campaign. The Lok Sevak Dal (29 seats) decided to give its first preference vote to Mr Reddy. Congress cross-voting will be substantial.

6) West Bengal: Congress whip was withdrawn. Members have been allowed to vote according to their conscience. Majority of the 33 Congress MLAs to vote for Mr Giri.

7) Assam: Congress members decided to stand by

© NCERT not to be republished

साभार: विजयन, शंकर्स वीकली

20 जुलाई 1969

1969 में कांग्रेस पार्टी में नेतृत्व के लिए प्रतिद्वंद्विता पर कार्टूनिस्ट का नज़रिया।

विचारधाराओं की लड़ाई के रूप में पेश किया। उन्होंने इसे 'समाजवादी' और 'पुरातनपंथी' तथा गरीबों के हिमायती और अमीरों के तरफ़दार के बीच की लड़ाई करार दिया।

1971 का चुनाव और कांग्रेस का पुनर्स्थापन

कांग्रेस की टूट से इंदिरा गाँधी की सरकार अल्पमत में आ गई। बहरहाल, डीएमके और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी समेत कुछ अन्य दलों से प्राप्त मुद्दा आधारित समर्थन के बल पर इंदिरा गाँधी की सरकार सत्ता में बनी रही। इस अरसे के दौरान सरकार ने सचेत रूप से अपनी छवि को समाजवादी रंग में पेश किया। इसी दौर में इंदिरा गाँधी ने भूमि सुधार के मौजूदा कानूनों के क्रियान्वयन के लिए ज़बरदस्त अभियान चलाया। उन्होंने भू-परिसीमन के कुछ और कानून भी बनवाए। दूसरे राजनीतिक दलों पर अपनी निर्भरता समाप्त करने, संसद में अपनी पार्टी की स्थिति मज़बूत करने और अपने कार्यक्रमों के पक्ष में जनादेश हासिल करने की गरज से इंदिरा गाँधी की सरकार ने 1970 के दिसंबर में लोकसभा भंग करने की सिफ़ारिश की। यह भी एक आश्चर्यजनक और साहसिक कदम था। लोकसभा के लिए पाँचवें आम चुनाव 1971 के फ़रवरी माह में हुए।

मुकाबला

चुनावी मुकाबला कांग्रेस (आर) के विपरीत जान पड़ रहा था। आखिर नयी कांग्रेस एक जर्जर होती हुई पार्टी का हिस्सा भर थी। हर किसी को विश्वास था कि कांग्रेस पार्टी की असली सांगठनिक ताकत कांग्रेस (ओ) के नियंत्रण में है। इसके अतिरिक्त, सभी बड़ी गैर-साम्यवादी और गैर-कांग्रेसी विपक्षी पार्टियों ने एक चुनावी गठबंधन बना लिया था। इसे 'ग्रैंड अलायंस' कहा गया। इससे इंदिरा गाँधी के लिए स्थिति और कठिन हो गई। संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी (एसएसपी), प्रजा सोशलिस्ट पार्टी (पीएसपी), भारतीय जनसंघ (बीजेएस), स्वतंत्र पार्टी और भारतीय क्रांतिदल (बीकेएस), चुनाव में एक छतरी के नीचे आ गए। शासक दल ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) के साथ गठजोड़ किया।

इसके बावजूद नयी कांग्रेस के साथ एक ऐसी बात थी, जिसका उसके बड़े विपक्षियों के पास अभाव था। नयी कांग्रेस के पास एक मुद्दा था; एक अजेंडा और कार्यक्रम था। 'ग्रैंड अलायंस' के पास कोई सुसंगत राजनीतिक कार्यक्रम नहीं था। इंदिरा गाँधी ने देश भर में घूम-घूम कर कहा कि विपक्षी गठबंधन के पास बस एक ही कार्यक्रम है : इंदिरा हटाओ। इसके विपरीत उन्होंने लोगों के सामने एक सकारात्मक कार्यक्रम रखा और इसे अपने मशहूर नारे 'गरीबी हटाओ' के ज़रिए एक शक्ल प्रदान किया। इंदिरा गाँधी ने सार्वजनिक क्षेत्र की संवृद्धि, ग्रामीण भू-स्वामित्व और शहरी संपदा के परिसीमन, आय और अवसरों की असमानता की समाप्ति तथा 'प्रिवी पर्स' की समाप्ति पर अपने चुनाव अभियान में ज़ोर दिया। 'गरीबी हटाओ' के नारे से इंदिरा गाँधी ने वंचित तबकों खासकर भूमिहीन किसान, दलित और आदिवासी, अल्पसंख्यक, महिला और बेरोज़गार नौजवानों के बीच अपने समर्थन का आधार तैयार करने की कोशिश की। 'गरीबी हटाओ' का नारा और इससे जुड़ा हुआ कार्यक्रम इंदिरा गाँधी की राजनीतिक रणनीति थी। इसके सहारे वे अपने लिए देशव्यापी राजनीतिक समर्थन की बुनियाद तैयार करना चाहती थीं।

© NCERT not to be republished

परिणाम और उसके बाद...

1971 के लोकसभा चुनावों के नतीजे उतने ही नाटकीय थे, जितना इन चुनावों को करवाने का फ़ैसला। कांग्रेस (आर) और सीपीआई के गठबंधन को इस बार जितने वोट या सीटें मिलीं, उतनी कांग्रेस पिछले चार आम चुनावों में कभी हासिल न कर सकी थी। इस गठबंधन को लोकसभा की 375 सीटें मिलीं और इसने कुल 48.4 प्रतिशत वोट हासिल किए। अकेले इंदिरा गाँधी की कांग्रेस (आर) ने 352 सीटें और 44 प्रतिशत वोट हासिल किए थे। अब ज़रा इस तसवीर की तुलना कांग्रेस (ओ) के उजाड़ से करें: इस पार्टी में बड़े-बड़े महारथी थे, लेकिन इंदिरा गाँधी की पार्टी को जितने वोट मिले थे, उसके एक-चौथाई वोट ही इसकी झोली में आए। इस पार्टी को महज़ 16 सीटें मिलीं। अपनी भारी-भरकम जीत के साथ इंदिरा गाँधी की अगुवाई वाली कांग्रेस ने अपने दावे को साबित कर दिया कि वही 'असली कांग्रेस' है और उसे भारतीय राजनीति में फिर से प्रभुत्व के स्थान पर पुनर्स्थापित किया। विपक्षी 'ग्रैंड अलायंस' धराशायी हो गया था। इस 'महाजोट' को 60 से भी कम सीटें मिली थीं।

साभार: आर के लक्ष्मण द टाइम्स ऑफ इंडिया

'द ग्रैंड फिनिश' नामक कार्टून में 1971 के आम चुनाव के परिणामों पर टिप्पणी की गई है। पराजित खिलाड़ियों के रूप में उस समय के प्रमुख विपक्षी नेताओं को दिखाया गया है।

साभार आर.के. लक्ष्मण, द टाइम्स ऑफ़ इंडिया

1971 के आमचुनाव की जीत में अनेक चुनौतियाँ और समस्याएँ भी छुपी थीं।

1971 के लोकसभा चुनावों के तुरंत बाद पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) में एक बड़ा राजनीतिक और सैन्य संकट उठ खड़ा हुआ। चौथे अध्याय में आप पढ़ चुके हैं कि 1971 के चुनावों के बाद पूर्वी पाकिस्तान में संकट पैदा हुआ और भारत-पाक के बीच युद्ध छिड़ गया। इसके परिणामस्वरूप बांग्लादेश बना। इन घटनाओं से इंदिरा गाँधी की लोकप्रियता में चार चाँद लग गए। विपक्ष के नेताओं तक ने उसके राज्यकौशल की प्रशंसा की। 1972 के राज्य विधानसभा के चुनावों में उनकी पार्टी को व्यापक सफलता मिली। उन्हें गरीबों और वंचितों के रक्षक और एक मज़बूत राष्ट्रवादी नेता के रूप में देखा गया। पार्टी के अंदर अथवा बाहर उसके विरोध की कोई गुंजाइश न बची।

कांग्रेस लोकसभा के चुनावों में जीती थी और राज्य स्तर के चुनावों में भी। इन दो लगातार जीतों के साथ कांग्रेस का दबदबा एक बार फिर कायम हुआ। कांग्रेस अब लगभग सभी राज्यों में सत्ता में थी। समाज के विभिन्न वर्गों में यह लोकप्रिय भी थी। महज चार साल की अवधि में इंदिरा गाँधी ने अपने नेतृत्व और कांग्रेस पार्टी के प्रभुत्व के सामने खड़ी चुनौतियों को धूल चटा दी थी।

साभार: कुट्टी

मुख्यमंत्री चुनने की इंदिरा गाँधी की शैली पर एक कार्टूनिस्ट की टिप्पणी

© NCERT not to be republished

कांग्रेस प्रणाली का पुनर्स्थापन?

बहरहाल कांग्रेस प्रणाली के पुनर्स्थापन का क्या मतलब निकलता है? इंदिरा गाँधी ने जो कुछ किया, वह पुरानी कांग्रेस को पुनर्जीवित करने का काम नहीं था। कई मामलों में यह पार्टी इंदिरा गाँधी के हाथों नयी तर्ज़ पर बनी थी। इस पार्टी को लोकप्रियता के लिहाज से वही स्थान प्राप्त था, जो उसे शुरुआती दौर में हासिल था, लेकिन यह अलग किस्म की पार्टी थी। यह पार्टी पूर्णतया अपने सर्वोच्च नेता की लोकप्रियता पर आश्रित थी। इस पार्टी का सांगठनिक ढाँचा भी अपेक्षाकृत कमज़ोर था। इस कांग्रेस पार्टी के भीतर कई गुट नहीं थे, यानी अब वह विभिन्न मतों और हितों को एक साथ लेकर चलने वाली पार्टी नहीं थी। इस पार्टी ने चुनाव जीते, लेकिन इस जीत के लिए पार्टी कुछ सामाजिक वर्गों जैसे गरीब, महिला, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यकों पर ज़्यादा निर्भर थी। जो कांग्रेस उभरकर सामने आई, वह एकदम नयी कांग्रेस थी। इंदिरा गाँधी ने कांग्रेस प्रणाली को पुनर्स्थापित ज़रूर किया, लेकिन कांग्रेस-प्रणाली की प्रकृति को बदलकर।

कांग्रेस प्रणाली के भीतर हर तनाव और संघर्ष को पचा लेने की क्षमता थी। कांग्रेस प्रणाली को इसी खासियत के कारण जाना जाता था, लेकिन नयी कांग्रेस ज़्यादा लोकप्रिय होने के बावजूद इस क्षमता से हीन थी। कांग्रेस ने अपनी पकड़ मज़बूत की और इंदिरा गाँधी की राजनीतिक हैसियत अप्रत्याशित रूप से बढ़ी, लेकिन जनता की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति की लोकतांत्रिक ज़मीन छोटी पड़ती गई। विकास और आर्थिक बदहाली के मुद्दों पर जनाक्रोश तथा लामबंदी लगातार बढ़ती रही। अगले अध्याय में आप पढ़ेंगे कि कैसे इन बातों से एक राजनीतिक संकट उठ खड़ा हुआ और जिससे देश के संवैधानिक लोकतंत्र के अस्तित्व पर ही खतरा मँडराने लगा था।

सिने-संसार

ज़ंजीर

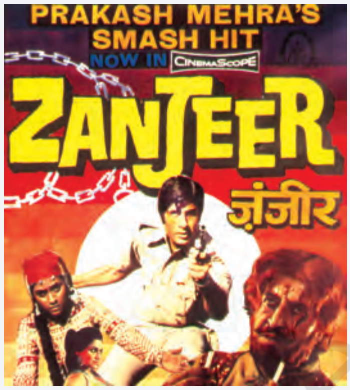

विजय एक नौजवान पुलिस अधिकारी है। वह गुंडागर्दी खत्म करना चाहता है, लेकिन उसे झूठे आरोप लगाकर जेल भेज दिया जाता है। जेल से बाहर आने पर विजय दोषी लोगों से प्रतिशोध लेने की ठानता है। उसे कई संकटों का सामना करना पड़ता है, लेकिन अंतत: वह खलनायक और उसके साथियों को सबक सिखाकर ही रहता है। व्यवस्था के भीतर ही कई लोग ऐसे हैं, जो विजय को समाजविरोधी तत्त्वों से लड़ने में मदद पहुँचाते हैं। इस फ़िल्म में नैतिक मूल्यों के पतन और उससे उपजी कुंठा को बहुत प्रभावशाली ढंग से दिखाया गया है। फ़िल्म के नायक विजय का गुस्सा और क्षोभ व्यवस्था की लाचारी को गहराई से चित्रित करता है।

'ज़ंजीर' के साथ सातवें दशक में एक नए तरह के गुस्सैल नौजवान नायक का जन्म हुआ।

वर्ष : 1973
निर्देशक : प्रकाश मेहरा
पटकथा : सलीम खान-जावेद अख्तर
अभिनय : अमिताभ बच्चन, अजित, जया भादुड़ी, प्राण

© NCERT not to be republished

प्रश्नावली

1. 1967 के चुनावों के बारे में निम्नलिखित में कौन-कौन से बयान सही हैं:
   (क) कांग्रेस लोकसभा के चुनाव में विजयी रही, लेकिन कई राज्यों में विधानसभा के चुनाव वह हार गई।
   (ख) कांग्रेस लोकसभा के चुनाव भी हारी और विधानसभा के भी।
   (ग) कांग्रेस को लोकसभा में बहुमत नहीं मिला, लेकिन उसने दूसरी पार्टियों के समर्थन से एक गठबंधन सरकार बनाई।
   (घ) कांग्रेस केंद्र में सत्तासीन रही और उसका बहुमत भी बढ़ा।

2. निम्नलिखित का मेल करें :

(क) सिंडिकेट	(i) कोई निर्वाचित जन-प्रतिनिधि जिस पार्टी के टिकट से जीता हो, उस पार्टी को छोड़कर अगर दूसरे दल में चला जाए।
(ख) दल-बदल	(ii) लोगों का ध्यान आकर्षित करने वाला एक मनभावन मुहावरा।
(ग) नारा	(iii) कांग्रेस और इसकी नीतियों के खिलाफ़ अलग-अलग विचारधाराओं की पार्टियों का एकजुट होना।
(घ) गैर-कांग्रेसवाद	(iv) कांग्रेस के भीतर ताकतवर और प्रभावशाली नेताओं का एक समूह।

3. निम्नलिखित नारे से किन नेताओं का संबंध है:
   (क) जय जवान, जय किसान
   (ख) इंदिरा हटाओ!
   (ग) गरीबी हटाओ!

4. 1971 के 'ग्रैंड अलायंस' के बारे में कौन-सा कथन ठीक है?
   (क) इसका गठन गैर-कम्युनिस्ट और गैर-कांग्रेसी दलों ने किया था।
   (ख) इसके पास एक स्पष्ट राजनीतिक तथा विचारधारात्मक कार्यक्रम था।
   (ग) इसका गठन सभी गैर-कांग्रेसी दलों ने एकजुट होकर किया था।

5. किसी राजनीतिक दल को अपने अंदरूनी मतभेदों का समाधान किस तरह करना चाहिए? यहाँ कुछ समाधान दिए गए हैं। प्रत्येक पर विचार कीजिए और उसके सामने उसके फ़ायदों और घाटों को लिखिए।
   (क) पार्टी के अध्यक्ष द्वारा बताए गए मार्ग पर चलना।
   (ख) पार्टी के भीतर बहुमत की राय पर अमल करना।
   (ग) हरेक मामले पर गुप्त मतदान कराना।
   (घ) पार्टी के वरिष्ठ और अनुभवी नेताओं से सलाह करना।

© NCERT not to be republished

6. निम्नलिखित में से किसे/किन्हें 1967 के चुनावों में कांग्रेस की हार के कारण के रूप में स्वीकार किया जा सकता है? अपने उत्तर की पुष्टि में तर्क दीजिए:
   (क) कांग्रेस पार्टी में करिश्माई नेता का अभाव।
   (ख) कांग्रेस पार्टी के भीतर टूट।
   (ग) क्षेत्रीय, जातीय और सांप्रदायिक समूहों की लामबंदी को बढ़ाना।
   (घ) गैर-कांग्रेसी दलों के बीच एकजुटता।
   (ङ) कांग्रेस पार्टी के अंदर मतभेद।
7. 1970 के दशक में इंदिरा गाँधी की सरकार किन कारणों से लोकप्रिय हुई थी?
8. 1960 के दशक की कांग्रेस पार्टी के संदर्भ में 'सिंडिकेट' का क्या अर्थ है? सिंडिकेट ने कांग्रेस पार्टी में क्या भूमिका निभाई?
9. कांग्रेस पार्टी किन मसलों को लेकर 1969 में टूट की शिकार हुई?
10. निम्नलिखित अनुच्छेद को पढ़ें और इसके आधार पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दें:

    इंदिरा गाँधी ने कांग्रेस को अत्यंत केंद्रीकृत और अलोकतांत्रिक पार्टी संगठन में तब्दील कर दिया, जबकि नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस शुरुआती दशकों में एक संघीय, लोकतांत्रिक और विचारधाराओं के समाहार का मंच थी। नयी और लोकलुभावन राजनीति ने राजनीतिक विचारधारा को महज चुनावी विमर्श में बदल दिया। कई नारे उछाले गए, लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि उसी के अनुकूल सरकार की नीतियाँ भी बनानी थीं–1970 के दशक के शुरुआती सालों में अपनी बड़ी चुनावी जीत के जश्न के बीच कांग्रेस एक राजनीतिक संगठन के तौर पर मर गई।

    – सुदीप्त कविराज

   (क) लेखक के अनुसार नेहरू और इंदिरा गाँधी द्वारा अपनाई गई रणनीतियों में क्या अंतर था?
   (ख) लेखक ने क्यों कहा है कि सत्तर के दशक में कांग्रेस 'मर गई'?
   (ग) कांग्रेस पार्टी में आए बदलावों का असर दूसरी पार्टियों पर किस तरह पड़ा?

खुद करें-खुद सीखें

- राजनीतिक दलों द्वारा गढ़े गए नारों की एक सूची बनाएँ।
- क्या आपको लगता है कि चीज़ों के विज्ञापन और राजनीतिक दलों के नारे, घोषणापत्र तथा विज्ञापनों में कोई समानता है?
- मँहगाई राजनीतिक दलों की नीतियों पर क्या प्रभाव डालती है? इस पर चर्चा कीजिए।

© NCERT not to be republished

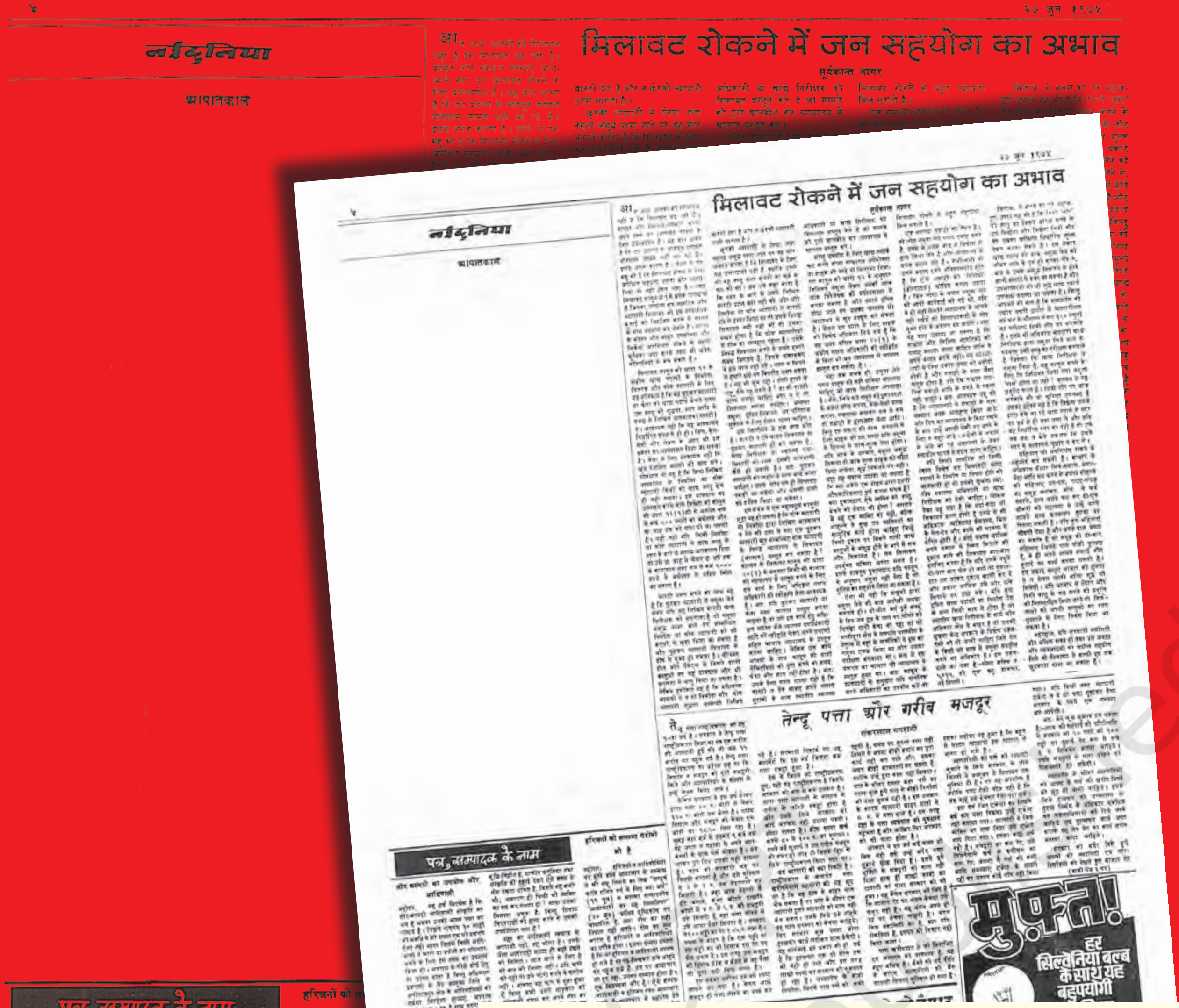

27 जून, 1975 के 'नई दुनिया' अखबार का संपादकीय भी बाकी दिनों की ही तरह बदस्तूर मौजूद था। बस अंतर यह था कि 'संपादकीय' की जगह खाली छोड़ दी गई थी। संपादकीय को आपातकालीन अधिकारों के अंतर्गत 'सेंसर' कर दिया गया था। कई अन्य अखबारों में भी जगह-जगह रिक्त स्थान छोड़े जाते थे। कई दफे ऐसा आपातकाल के प्रति विरोध जताने के लिए किया जाता था। बाद में खाली जगह छोड़ने पर भी पाबंदी लगा दी गई।

इस अध्याय में...

हम देख चुके हैं कि 1971 के बाद कांग्रेस को नवजीवन मिला लेकिन इस पार्टी में अब पहले वाली बात नहीं रही। कांग्रेस पार्टी अब बदल चुकी थी। 1973 से 1975 के बीच घटी घटनाओं से यह अंतर और भी ज़्यादा स्पष्ट हो गया। इन घटनाओं से भारत की लोकतांत्रिक राजनीति और संविधान निर्देशित सांस्थानिक संतुलन को नयी चुनौतियों ने घेरा। 1973 से 1975 के बीच आए बदलावों की परिणति देश में 'आपातकाल' लागू करने के रूप में हुई। 1975 के जून माह में देश में आपातकाल की घोषणा कर दी गई। आमतौर पर आपातकाल से हमारे मन में युद्ध और आक्रमण अथवा प्राकृतिक आपदा की तसवीर कौंधती है लेकिन अपने देश में आपातकाल की यह घोषणा अंदरूनी गड़बड़ियों की आशंका के मद्देनजर की गई थी। आपातकाल की घोषणा जिस नाटकीय रूप में हुई थी उसी अंदाज़ में इसका खात्मा भी हुआ। आपातकाल की घोषणा के कारण 1977 के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस हार गई।

इस अध्याय में हम अपना ध्यान भारतीय लोकतंत्र के इतिहास के इसी निर्णायक दौर पर केंद्रित करेंगे। साथ ही हम कुछ ऐसे सवाल पूछेंगे जो सालों गुज़रने के बाद भी विवादास्पद बने रहे, जैसे-

- आपातकाल क्यों लागू किया गया? क्या ऐसा करना ज़रूरी था?
- आपातकाल लागू करने का व्यावहारिक अर्थ क्या था?
- दलगत राजनीति के लिहाज से आपातकाल के क्या परिणाम हुए?
- आपातकाल से भारतीय लोकतंत्र ने क्या सबक सीखे?

© NCERT not to be republished

12122CH06

अध्याय 6

लोकतांत्रिक व्यवस्था का संकट

आपातकाल की पृष्ठभूमि

1967 के बाद से भारतीय राजनीति में जो बदलाव आ रहे थे उनके बारे में हम पहले ही पढ़ चुके हैं। इंदिरा गाँधी एक कद्दावर नेता के रूप में उभरी थीं और उनकी लोकप्रियता अपने चरम पर थी। इस दौर में दलगत प्रतिस्पर्धा कहीं ज़्यादा तीखी और ध्रुवीकृत हो चली थी। इस अवधि में न्यायपालिका और सरकार के आपसी रिश्तों में भी तनाव आए। सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार की कई पहलकदमियों को संविधान के विरुद्ध माना। कांग्रेस पार्टी का मानना था कि अदालत का यह रवैया लोकतंत्र के सिद्धांतों और संसद की सर्वोच्चता के विरुद्ध है। कांग्रेस ने यह आरोप भी लगाया कि अदालत एक यथास्थितिवादी संस्था है और यह संस्था गरीबों को लाभ पहुँचाने वाले कल्याण-कार्यक्रमों को लागू करने की राह में रोड़े अटका रही है। कांग्रेस के विपक्ष में जो दल थे, उन्हें लग रहा था कि सरकारी प्राधिकार को निजी प्राधिकार मानकर इस्तेमाल किया जा रहा है और राजनीति हद से ज़्यादा व्यक्तिगत होती जा रही है। कांग्रेस की टूट से इंदिरा गाँधी और उनके विरोधियों के बीच मतभेद गहरे हो गए थे।

आर्थिक संदर्भ

1971 के चुनाव में कांग्रेस ने 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया था। बहरहाल 1971–72 के बाद के सालों में भी देश की सामाजिक-आर्थिक दशा में खास सुधार नहीं हुआ। बांग्लादेश के संकट से भारत की अर्थव्यवस्था पर भारी बोझ पड़ा था। लगभग 80 लाख लोग पूर्वी पाकिस्तान की सीमा पार करके भारत आ गए थे। इसके बाद पाकिस्तान से युद्ध भी करना पड़ा। युद्ध के बाद अमरीका ने भारत को हर तरह की सहायता देना बंद कर दिया। इसी अवधि में अंतर्राष्ट्रीय बाजार में तेल की कीमतों में कई गुना बढ़ोतरी हुई। इससे विभिन्न चीज़ों की कीमतें भी तेज़ी से बढ़ीं। 1973 में चीज़ों की कीमतों में 23 फीसदी और 1974 में 30 फीसदी का इज़ाफ़ा हुआ। इस तीव्र मूल्यवृद्धि से लोगों को भारी कठिनाई हुई।

औद्योगिक विकास की दर बहुत कम थी और बेरोज़गारी बहुत बढ़ गई थी। ग्रामीण इलाकों में बेरोज़गारी बेतहाशा बढ़ी थी। खर्चे को कम करने के लिए सरकार ने अपने कर्मचारियों के वेतन को रोक लिया। इससे सरकारी कर्मचारियों में बहुत असंतोष पनपा। 1972–73 के वर्ष में मानसून असफल रहा। इससे कृषि की पैदावार में भारी गिरावट आई। खाद्यान्न का उत्पादन 8 प्रतिशत कम हो गया। आर्थिक स्थिति की बदहाली को लेकर पूरे देश में असंतोष का माहौल था। इस स्थिति में गैर-कांग्रेसी पार्टियों ने बड़े कारगर तरीके से जन-विरोध की अगुवाई की। 1960 के दशक से ही छात्रों के बीच विरोध के स्वर उठने लगे थे। ये स्वर इस अवधि में और ज़्यादा

अच्छा तो यही होता कि 1973 का यह साल जितनी जल्दी हो सके, बीत जाता।

© NCERT not to be republished

गरीब जनता पर सचमुच भारी मुसीबत आई होगी। आखिर गरीबी हटाओ के वादे का हुआ क्या?

प्रबल हो उठे। संसदीय राजनीति में विश्वास न रखने वाले कुछ मार्क्सवादी समूहों की सक्रियता भी इस अवधि में बढ़ी। इन समूहों ने मौजूदा राजनीतिक प्रणाली और पूँजीवादी व्यवस्था को खत्म करने के लिए हथियार उठाया तथा राज्यविरोधी तकनीकों का सहारा लिया। ये समूह मार्क्सवादी-लेनिनवादी (अब माओवादी) अथवा नक्सलवादी के नाम से जाने गए। ऐसे समूह पश्चिम बंगाल में सबसे ज़्यादा सक्रिय थे। पश्चिम बंगाल की सरकार ने इन्हें दबाने के लिए कठोर कदम उठाए।

गुजरात और बिहार के आंदोलन

गुजरात और बिहार दोनों ही राज्यों में कांग्रेस की सरकार थी। यहाँ के छात्र-आंदोलन ने इन दोनों प्रदेशों की राजनीति पर गहरा असर तो डाला ही, राष्ट्रीय स्तर की राजनीति पर भी इसके दूरगामी प्रभाव हुए। 1974 के जनवरी माह में गुजरात के छात्रों ने खाद्यान्न, खाद्य तेल तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की बढ़ती हुई कीमत तथा उच्च पदों पर जारी भ्रष्टाचार के खिलाफ़ आंदोलन छेड़ दिया। छात्र-आंदोलन में बड़ी राजनीतिक पार्टियाँ भी शरीक हो गईं और इस आंदोलन ने विकराल रूप धारण कर लिया। ऐसे में गुजरात में राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया। विपक्षी दलों ने राज्य की विधानसभा के लिए दोबारा चुनाव कराने की माँग की। कांग्रेस (ओ) के प्रमुख नेता मोरारजी देसाई ने कहा कि अगर राज्य में नए सिरे से चुनाव नहीं करवाए गए तो मैं अनिश्चितकालीन भूख-हड़ताल पर बैठ जाऊँगा। मोरारजी अपने कांग्रेस के दिनों में इंदिरा गाँधी के मुख्य विरोधी रहे थे। विपक्षी दलों द्वारा समर्थित छात्र-आंदोलन के गहरे दबाव में 1975 के जून में विधानसभा के चुनाव हुए। कांग्रेस इस चुनाव में हार गई।

सम्पूर्ण क्रांति अब नारा है भावी इतिहास हमारा है!

1974 के बिहार आंदोलन का एक नारा

1974 के मार्च माह में बढ़ती हुई कीमतों, खाद्यान्न के अभाव, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार के खिलाफ़ बिहार में छात्रों ने आंदोलन छेड़ दिया। आंदोलन के क्रम में उन्होंने जयप्रकाश नारायण (जेपी) को बुलावा भेजा। जेपी तब सक्रिय राजनीति छोड़ चुके थे और सामाजिक कार्यों में लगे हुए थे। छात्रों ने अपने आंदोलन की अगुवाई के लिए जयप्रकाश नारायण को बुलावा भेजा था। जेपी ने छात्रों का निमंत्रण इस शर्त पर स्वीकार किया कि आंदोलन अहिंसक रहेगा और अपने को सिर्फ़ बिहार तक सीमित नहीं रखेगा। इस प्रकार छात्र-आंदोलन ने एक राजनीतिक चरित्र ग्रहण किया और उसके भीतर राष्ट्रव्यापी अपील आई। जीवन के हर क्षेत्र के लोग अब आंदोलन से आ जुड़े। जयप्रकाश नारायण ने बिहार की कांग्रेस सरकार को बर्खास्त करने की माँग की। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दायरे में 'सम्पूर्ण क्रांति' का आह्वान किया ताकि उन्हीं के शब्दों में 'सच्चे लोकतंत्र' की स्थापना की जा सके। बिहार की सरकार के खिलाफ़ लगातार घेराव, बंद और हड़ताल का एक सिलसिला चल पड़ा। बहरहाल, सरकार ने इस्तीफ़ा देने से इनकार कर दिया।

आंदोलन का प्रभाव राष्ट्रीय राजनीति पर पड़ना शुरू हुआ। जयप्रकाश नारायण चाहते थे कि यह आंदोलन देश के दूसरे हिस्सों में भी फैले। जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में चल रहे आंदोलन के साथ ही साथ रेलवे के कर्मचारियों ने भी एक राष्ट्रव्यापी हड़ताल का आह्वान किया। इससे देश के रोज़मर्रा के कामकाज के ठप्प हो

इंदिरा इज़ इंडिया, इंडिया इज़ इंदिरा

कांग्रेस अध्यक्ष डी.के. बरुआ (1974) ने यह नारा दिया था।

© NCERT not to be republished

साभार: आर.के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया, 16 अप्रैल 1974

© NCERT not to be republished

जाने का खतरा पैदा हो गया। 1975 में जेपी ने जनता के 'संसद-मार्च' का नेतृत्व किया। देश की राजधानी में अब तक इतनी बड़ी रैली नहीं हुई थी। जयप्रकाश नारायण को अब भारतीय जनसंघ, कांग्रेस (ओ), भारतीय लोकदल, सोशलिस्ट पार्टी जैसे गैर-कांग्रेसी दलों का समर्थन मिला। इन दलों ने जेपी को इंदिरा गाँधी के विकल्प के रूप में पेश किया। बहरहाल जेपी के विचारों और उनके द्वारा अपनायी गई जन-प्रतिरोध की रणनीति की आलोचनाएँ भी मुखर हुईं। गुजरात और बिहार, दोनों ही राज्यों के आंदोलन को कांग्रेस विरोधी आंदोलन माना गया। कहा गया कि ये आंदोलन राज्य सरकार के खिलाफ़ नहीं बल्कि इंदिरा गाँधी के नेतृत्व के खिलाफ़ चलाए गए हैं। इंदिरा गाँधी का मानना था कि ये आंदोलन उनके प्रति व्यक्तिगत विरोध से प्रेरित हैं।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण (जेपी) (1902-1979) : युवावस्था में मार्क्सवादी; कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी के संस्थापक महासचिव; 1942 के भारत-छोड़ो आंदोलन के नायक; नेहरू के उत्तराधिकारी के रूप में देखे गए; नेहरू मंत्रिमंडल में शामिल होने से इनकार; 1955 के बाद सक्रिय राजनीति छोड़ी; गाँधीवादी बनने के बाद भूदान आंदोलन में सक्रिय; नगा विद्रोहियों से सुलह की बातचीत की; कश्मीर में शांति प्रयास किए; चंबल के डकैतों से आत्मसमर्पण कराया; बिहार आंदोलन के नेता; आपातकाल के विरोध के प्रतीक बन गए थे; जनता पार्टी के गठन के प्रेरणास्रोत।

न्यायपालिका से संघर्ष

न्यायपालिका के साथ इस दौर में सरकार और शासक दल के गहरे मतभेद पैदा हुए। क्या आपको संसद और न्यायपालिका के बीच चले लंबे संघर्ष की चर्चा याद है? इसके बारे में

1974 की रेल हड़ताल

यदि रेलगाड़ियों का चलना बंद हो जाए तो क्या होगा? एक या दो दिन नहीं, बल्कि हफ़्ते भर से ज़्यादा समय तक रेलगाड़ियाँ न चलें तो? निश्चित ही बहुत-से लोगों का आना-जाना दूभर हो जाएगा, लेकिन बात यहीं तक सीमित नहीं रहेगी। देश की अर्थव्यवस्था ठप्प हो जाएगी, क्योंकि रेलगाड़ियों के माध्यम से ही देश में एक जगह से दूसरी जगह सामानों की ज़्यादातर ढुलाई होती है। क्या आप जानते हैं कि 1974 में ठीक ऐसा ही वाकया पेश आया था? रेलवे कर्मचारियों के संघर्ष से संबंधित राष्ट्रीय समन्वय समिति ने जॉर्ज फर्नान्डिस के नेतृत्व में रेलवे कर्मचारियों की एक राष्ट्रव्यापी हड़ताल का आह्वान किया। बोनस और सेवा से जुड़ी शर्तों के संबंध में अपनी माँगों को लेकर सरकार पर दबाव बनाने के लिए हड़ताल का यह आह्वान किया गया था। सरकार इन माँगों के खिलाफ़ थी। ऐसे में भारत के इस सबसे बड़े सार्वजनिक उद्यम के कर्मचारी 1974 के मई महीने में हड़ताल पर चले गए। रेलवे कर्मचारियों की हड़ताल से मज़दूरों के असंतोष को बढ़ावा मिला। इस हड़ताल से मज़दूरों के अधिकार जैसे मसले तो उठे ही, यह सवाल भी उठा कि आवश्यक सेवाओं से जुड़े हुए कर्मचारी अपनी माँगों को लेकर हड़ताल कर सकते हैं या नहीं।

सरकार ने इस हड़ताल को अवैधानिक करार दिया। सरकार ने हड़ताली कर्मचारियों की माँगों को मानने से इनकार कर दिया। उसने इसके कई नेताओं को गिरफ़्तार किया और रेल लाइनों की सुरक्षा में सेना को तैनात कर दिया। ऐसे में 20 दिन के बाद यह हड़ताल बगैर किसी समझौते के वापस ले ली गई।

© NCERT not to be republished

आपने पिछले साल पढ़ा था। इस क्रम में तीन संवैधानिक मसले उठे थे: क्या संसद मौलिक अधिकारों में कटौती कर सकती है? सर्वोच्च न्यायालय का जवाब था कि संसद ऐसा नहीं कर सकती। दूसरा यह कि क्या संसद संविधान में संशोधन करके संपत्ति के अधिकार में काट-छाँट कर सकती है? इस मसले पर भी सर्वोच्च न्यायालय का यही कहना था कि सरकार, संविधान में इस तरह संशोधन नहीं कर सकती कि अधिकारों की कटौती हो जाए। तीसरे, संसद ने यह कहते हुए संविधान में संशोधन किया कि वह नीति-निर्देशक सिद्धांतों को प्रभावकारी बनाने के लिए मौलिक अधिकारों में कमी कर सकती है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रावधान को भी निरस्त कर दिया। इससे सरकार और न्यायपालिका के बीच संबंधों में तनाव आया। आपको याद होगा कि इस संकट की परिणति केशवानंद भारती के मशहूर मुकदमे के रूप में सामने आई। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने फ़ैसला सुनाया कि संविधान का एक बुनियादी ढाँचा है और संसद इन ढाँचागत विशेषताओं में संशोधन नहीं कर सकती है।

क्या 'प्रतिबद्ध न्यायपालिका' और 'प्रतिबद्ध नौकरशाही' का मतलब यह है कि न्यायाधीश और सरकारी अधिकारी शासक दल के प्रति निष्ठावान हों?

दो और बातों ने न्यायपालिका और कार्यपालिका के संबंधों में तनाव बढ़ाया। 1973 में केशवानंद भारती के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा फ़ैसला सुनाने के तुरंत बाद भारत के मुख्य न्यायाधीश का पद खाली हुआ। सर्वोच्च न्यायालय के सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश को भारत का मुख्य न्यायाधीश बनाने की परिपाटी चली आ रही थी, लेकिन 1973 में सरकार ने तीन

वरिष्ठ न्यायाधीशों की अनदेखी करके न्यायमूर्ति ए.एन. रे को मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया। यह निर्णय राजनीतिक रूप से विवादास्पद बन गया क्योंकि सरकार ने जिन तीन न्यायाधीशों की वरिष्ठता की अनदेखी इस मामले में की थी उन्होंने सरकार के इस कदम के विरुद्ध फ़ैसला दिया। ऐसे में संविधान की व्याख्या और राजनीतिक विचारधाराओं का बड़ी तेज़ी से घालमेल हुआ। जो लोग प्रधानमंत्री के नज़दीकी थे वे एक ऐसी 'प्रतिबद्ध' न्यायपालिका तथा नौकरशाही की ज़रूरत के बारे में बातें करने लगे जो विधायिका और कार्यपालिका की सोच के अनुकूल आचरण करे। इस संघर्ष का चरमबिंदु तब आया जब एक उच्च न्यायालय ने इंदिरा गाँधी के निर्वाचन को अवैध घोषित कर दिया।

आपातकाल की घोषणा

12 जून 1975 के दिन इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश जगमोहन लाल सिन्हा ने एक फ़ैसला सुनाया। इस फ़ैसले में उन्होंने लोकसभा के लिए इंदिरा गाँधी के निर्वाचन को अवैधानिक करार दिया। न्यायमूर्ति ने यह फ़ैसला समाजवादी नेता राजनारायण द्वारा दायर एक चुनाव याचिका के मामले में सुनाया था। राजनारायण, इंदिरा गाँधी के खिलाफ़ 1971 में बतौर उम्मीदवार चुनाव में खड़े हुए थे। याचिका में इंदिरा गाँधी के निर्वाचन को चुनौती देते हुए तर्क दिया गया था कि उन्होंने चुनाव-प्रचार में सरकारी कर्मचारियों की सेवाओं का इस्तेमाल किया था। उच्च न्यायालय के इस फ़ैसले का मतलब यह था कि कानूनन अब इंदिरा गाँधी सांसद नहीं रहीं और अगर अगले छह महीने की अवधि में दोबारा सांसद निर्वाचित नहीं होतीं, तो प्रधानमंत्री के पद पर कायम नहीं रह सकतीं। 24 जून 1975 को सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के इस फ़ैसले पर आंशिक स्थगनादेश सुनाते हुए कहा कि जब तक इस फ़ैसले को लेकर की गई अपील की सुनवाई नहीं होती तब तक इंदिरा गाँधी सांसद बनी रहेंगी; लेकिन वे लोकसभा की कार्रवाई में भाग नहीं ले सकती हैं।

संकट और सरकार का फ़ैसला

एक बड़े राजनीतिक संघर्ष के लिए अब मैदान तैयार हो चुका था। जयप्रकाश नारायण की अगुवाई में विपक्षी दलों ने इंदिरा गाँधी के इस्तीफ़े के लिए दबाव डाला। इन दलों ने 25 जून 1975 को दिल्ली के रामलीला मैदान में एक विशाल प्रदर्शन किया। जयप्रकाश नारायण ने इंदिरा गाँधी से इस्तीफ़े की माँग करते हुए राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह की घोषणा की। जेपी ने सेना, पुलिस और सरकारी कर्मचारियों का आह्वान किया कि वे सरकार के अनैतिक और अवैधानिक आदेशों का पालन न करें। इससे भी सरकारी कामकाज के ठप्प हो जाने का अंदेशा पैदा हुआ। देश का राजनीतिक मिजाज़ अब पहले से कहीं ज़्यादा कांग्रेस के खिलाफ़ हो गया।

यह तो सेना से सरकार के खिलाफ़ बगावत करने को कहने जैसा जान पड़ता है! क्या यह बात लोकतांत्रिक है?

सरकार ने इन घटनाओं के मद्देनजर जवाब में 'आपातकाल' की घोषणा कर दी। 25 जून 1975 के दिन सरकार ने घोषणा की कि देश में गड़बड़ी की आशंका है और इस तर्क के साथ उसने संविधान के अनुच्छेद 352 को लागू कर दिया। इस अनुच्छेद के अंतर्गत प्रावधान किया गया है कि बाहरी अथवा अंदरूनी गड़बड़ी की आशंका होने पर सरकार आपातकाल लागू कर सकती है। सरकार का निर्णय था कि गंभीर संकट की घड़ी आन पड़ी है और इस वजह से आपातकाल की घोषणा ज़रूरी हो गई है। तकनीकी रूप से देखें तो ऐसा करना

साभार : आर.के. लक्ष्मण, द टाइम्स ऑफ इंडिया, 26 जून 1975

यह कार्टून आपातकाल की घोषणा के चंद रोज़ पहले छपा था। इसमें मौजूदा राजनीतिक संकट की आहटों को पढ़ा जा सकता है। कुर्सी को पीछे से सहारा देता हाथ कांग्रेस अध्यक्ष डी.के. बरुआ का है।

क्या राष्ट्रपति को मंत्रिमंडल की सिफ़ारिश के बगैर आपातकाल की घोषणा करनी चाहिए थी? कितनी अजीब बात है!

सरकार की शक्तियों के दायरे में था क्योंकि हमारे संविधान में सरकार को आपातकाल की स्थिति में विशेष शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

आपातकाल की घोषणा के साथ ही शक्तियों के बँटवारे का संघीय ढाँचा व्यावहारिक तौर पर निष्प्रभावी हो जाता है और सारी शक्तियाँ केंद्र सरकार के हाथ में चली आती हैं। दूसरे, सरकार चाहे तो ऐसी स्थिति में किसी एक अथवा सभी मौलिक अधिकारों पर रोक लगा सकती है अथवा उनमें कटौती कर सकती है। संविधान के प्रावधान में आए शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आपातकाल को वहाँ एक असाधारण स्थिति के रूप में देखा गया है जब सामान्य लोकतांत्रिक राजनीति के कामकाज नहीं किए जा सकते। इसी कारण सरकार को आपातकाल की स्थिति में विशेष शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

25 जून 1975 की रात में प्रधानमंत्री ने राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद से आपातकाल लागू करने की सिफारिश की। राष्ट्रपति ने तुरंत यह उद्घोषणा कर दी। आधी रात के बाद सभी बड़े अखबारों के दफ्तर की बिजली काट दी गई। तड़के सबेरे बड़े पैमाने पर विपक्षी

© NCERT not to be republished

नईदुनिया

इन्दौर गुरुवार २६ जून १९७५

अखबारों पर बंदिश लगी, हटी

देश में तानाशाही रोकने के लंबे संघर्ष हेतु तैयार रहें

रामलीला मैदान की विशाल सभा में जयबाबू की घोषणा

श्रीमती गांधी को प्रधान... बने रहना...

कानून मन्त्री अब... कह नहीं सकते

CHIEF SUBS/SUBS:

Message to Chief Sub, Bombay/Ahmedabad, from Chief Sub, Delhi.

The censor rang up to say that the Prime Minister's interview to the correspondent of the "Daily Telegraph" should be sent to him before publication.

September 28, 1976

To Editor/News-Editor/Chief Subs/Subs/Reporters.

No news, comments, rumour or other reports relating to the family planning programme should be published without clearance from the Censor.

Editorial, 7/9/1976

11 दिसंबर 1975

THE TIMES OF INDIA

BOMBAY: FRIDAY, JUNE 27, 1975

STATE OF EMERGENCY DECLARED

Several leaders arrested

Security in peril, says P.M.

CM warns against call

Rights suspended

Be vigilant, states told

Pre-censorship

CHIEF SUBS/SUBS/CHIEF REPORTER/REPORTERS:

Chief Sub, Delhi, to Chief Sub, Bombay/Ahmedabad:

Phone from censor (Mr. Laxmi Chand): "Only official version of Indo-Pak talks today to be used. No comments or editorials to be written."

RAMSON PAINTS BOMBAY-7.

SEA PALACE HOTEL

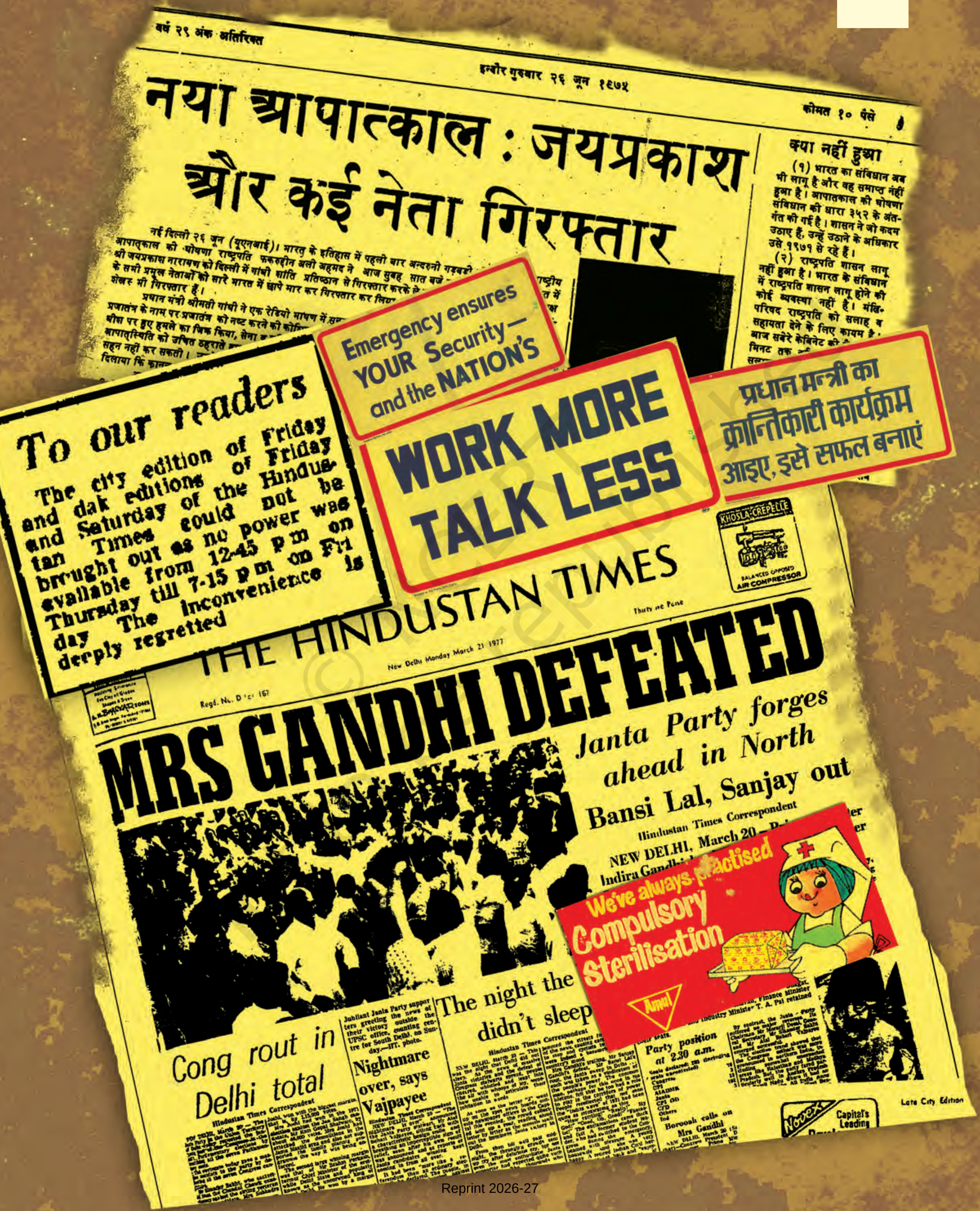
वर्ष २९ अंक अतिरिक्त
इन्दौर गुरुवार २६ जून १९७५
कीमत १० पैसे
नया आपात्काल : जयप्रकाश और कई नेता गिरफ्तार
क्या नहीं हुआ
Emergency ensures YOUR Security— and the NATION'S
WORK MORE TALK LESS
प्रधान मन्त्री का क्रान्तिकारी कार्यक्रम आइए, इसे सफल बनाएं
To our readers
The city edition of Friday and dak editions of Friday and Saturday of the Hindustan Times could not be brought out as no power was available from 12-45 p m on Thursday till 7-15 p m on Friday The inconvenience is deeply regretted
KHOSLA-CREPELLE
BALANCED OPPOSED AIR COMPRESSOR
THE HINDUSTAN TIMES
New Delhi Monday March 21 1977
MRS GANDHI DEFEATED
Janta Party forges ahead in North
Bansi Lal, Sanjay out
Hindustan Times Correspondent
We've always practised Compulsory Sterilisation
Amul
The night the
didn't sleep
Cong rout in Delhi total
Nightmare over, says Vajpayee
Party position at 2.30 a.m.
Late City Edition

दलों के नेताओं और कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी हुई। 26 जून की सुबह 6 बजे एक विशेष बैठक में मंत्रिमंडल को इन बातों की सूचना दी गई, लेकिन तब तक बहुत कुछ हो चुका था।

परिणाम

सरकार के इस फ़ैसले से विरोध-आंदोलन एकबारगी रुक गया; हड़तालों पर रोक लगा दी गई। अनेक विपक्षी नेताओं को जेल में डाल दिया गया। राजनीतिक माहौल में तनाव भरा एक गहरा सन्नाटा छा गया। आपातकालीन प्रावधानों के अंतर्गत प्राप्त अपनी शक्तियों पर अमल करते हुए सरकार ने प्रेस की आज़ादी पर रोक लगा दी। समाचारपत्रों को कहा गया कि कुछ भी छापने से पहले अनुमति लेना जरूरी है। इसे प्रेस सेंसरशिप के नाम से जाना जाता है। सामाजिक और सांप्रदायिक गड़बड़ी की आशंका के मद्देनजर सरकार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) और जमात-ए-इस्लामी पर प्रतिबंध लगा दिया। धरना, प्रदर्शन और हड़ताल की भी अनुमति नहीं थी। सबसे बड़ी बात यह हुई कि आपातकालीन प्रावधानों के अंतर्गत नागरिकों के विभिन्न मौलिक अधिकार निष्प्रभावी हो गए। उनके पास अब यह अधिकार भी नहीं रहा कि मौलिक अधिकारों की बहाली के लिए अदालत का दरवाज़ा खटखटाएँ।

सरकार ने निवारक नज़रबंदी का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया। इस प्रावधान के अंतर्गत लोगों को गिरफ़्तार इसलिए नहीं किया जाता कि उन्होंने कोई अपराध किया है बल्कि इसके विपरीत, इस प्रावधान के अंतर्गत लोगों को इस आशंका से गिरफ्तार किया जाता है कि वे कोई अपराध कर सकते हैं। सरकार ने आपातकाल के दौरान निवारक नज़रबंदी अधिनियमों का प्रयोग करके बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ कीं। जिन राजनीतिक कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार किया गया। वे बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का सहारा लेकर अपनी गिरफ्तारी को चुनौती भी नहीं दे सकते थे। गिरफ्तार लोगों अथवा उनके पक्ष से किन्हीं और ने उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में कई मामले दायर किए, लेकिन सरकार का कहना था कि गिरफ्तार लोगों को गिरफ्तारी का कारण बताना कतई ज़रूरी नहीं है। अनेक उच्च न्यायालयों ने फ़ैसला दिया कि आपातकाल की घोषणा के बावजूद अदालत किसी व्यक्ति द्वारा दायर की गई ऐसी बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को विचार के लिए स्वीकार कर सकती है जिसमें उसने अपनी गिरफ़्तारी को चुनौती दी हो। 1976 के अप्रैल माह में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने उच्च न्यायालयों के फ़ैसले को उलट दिया और सरकार की दलील मान ली। इसका आशय यह था कि सरकार आपातकाल के दौरान नागरिक से जीवन और आज़ादी का अधिकार वापस ले सकती है। सर्वोच्च न्यायालय के इस फ़ैसले से नागरिकों के लिए अदालत के दरवाज़े बंद हो गए। इस फ़ैसले को सर्वोच्च न्यायालय के सर्वाधिक विवादास्पद फ़ैसलों में एक माना गया।

आपातकाल की मुखालफत और प्रतिरोध की कई घटनाएँ घटीं। पहली लहर में जो राजनीतिक कार्यकर्ता गिरफ़्तारी से बच गए थे वे 'भूमिगत' हो गए और उन्होंने सरकार के खिलाफ़ मुहिम चलायी। 'इंडियन एक्सप्रेस' और 'स्टेट्समैन' जैसे अखबारों ने प्रेस पर लगी सेंसरशिप का विरोध किया। जिन समाचारों को छापने से रोका जाता था उनकी जगह ये अखबार खाली छोड़ देते थे। 'सेमिनार' और 'मेनस्ट्रीम' जैसी पत्रिकाओं ने सेंसरशिप के आगे घुटने टेकने की जगह बंद होना मुनासिब समझा। सेंसरशिप को धत्ता बताते हुए गुपचुप तरीके से अनेक न्यूज़लेटर और लीफ़लेट्स निकले। पद्मभूषण से सम्मानित कन्नड़ लेखक शिवराम कारंत और पद्मश्री से सम्मानित हिंदी लेखक फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने लोकतंत्र के दमन के

© NCERT not to be republished

जिन चंद लोगों ने प्रतिरोध किया, उनकी बात छोड़ दें- बाकियों के बारे में सोचें कि उन्होंने क्या किया! क्या कर रहे थे बड़े-बड़े अधिकारी, बुद्धिजीवी, सामाजिक-धार्मिक नेता और नागरिक ...?

विरोध में अपनी-अपनी पदवी लौटा दी। बहरहाल, मुखालफत और प्रतिरोध के इतने प्रकट कदम कुछ ही लोगों ने उठाए।

संसद ने संविधान के सामने कई नयी चुनौतियाँ खड़ी कीं। इंदिरा गाँधी के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फ़ैसले की पृष्ठभूमि में संविधान में संशोधन हुआ। इस संशोधन के द्वारा प्रावधान किया गया कि प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद के निर्वाचन को अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती। आपातकाल के दौरान ही संविधान का 42वाँ संशोधन पारित हुआ। आप पढ़ चुके हैं कि इस संशोधन के जरिए संविधान के अनेक हिस्सों में बदलाव किए गए। 42वें संशोधन के जरिए हुए अनेक बदलावों में एक था–देश की विधायिका के कार्यकाल को 5 से बढ़ाकर 6 साल करना। यह व्यवस्था मात्र आपातकाल की अवधि भर के लिए नहीं की गई थी। इसे आगे के दिनों में भी स्थायी रूप से लागू किया जाना था। इसके अतिरिक्त अब आपातकाल के दौरान चुनाव को एक साल के लिए स्थगित किया जा सकता था। इस तरह देखें तो 1971 के बाद अब चुनाव 1976 के बदले 1978 में करवाए जा सकते थे।

आपातकाल के सबक

आपातकाल से एकबारगी भारतीय लोकतंत्र की ताकत और कमजोरियाँ उजागर हो गईं। हालाँकि बहुत-से पर्यवेक्षक मानते हैं कि आपातकाल के दौरान भारत लोकतांत्रिक नहीं रह गया था, लेकिन यह भी ध्यान देने की बात है कि थोड़े ही दिनों के अंदर कामकाज फिर से लोकतांत्रिक ढर्रे पर लौट आया। इस तरह आपातकाल का एक सबक तो यही है कि भारत से लोकतंत्र को विदा कर पाना बहुत कठिन है।

दूसरे, आपातकाल से संविधान में वर्णित आपातकाल के प्रावधानों के कुछ अर्थगत उलझाव भी प्रकट हुए, जिन्हें बाद में सुधार लिया गया। अब 'अंदरूनी' आपातकाल सिर्फ़ 'सशस्त्र विद्रोह' की स्थिति में लगाया जा सकता है। इसके लिए यह भी ज़रूरी है कि आपातकाल की घोषणा की सलाह मंत्रिमंडल राष्ट्रपति को लिखित में दे।

तीसरे, आपातकाल से हर कोई नागरिक अधिकारों के प्रति ज़्यादा सचेत हुआ। आपातकाल की समाप्ति के बाद अदालतों ने व्यक्ति के नागरिक अधिकारों की रक्षा में सक्रिय भूमिका निभाई। न्यायपालिका आपातकाल के वक्त नागरिक अधिकारों की कारगर तरीके से रक्षा नहीं कर पाई थी। इसे महसूस करके अब वह नागरिक अधिकारों की रक्षा में तत्पर हो गई। आपातकाल के बाद नागरिक अधिकारों के कई संगठन वजूद में आए।

बहरहाल, आपातकाल के संकटपूर्ण वर्षों ने कई ऐसे सवाल छोड़े हैं जिन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। इस अध्याय में हम पढ़ चुके हैं कि लोकतांत्रिक सरकार के रोज़मर्रा के कामकाज और विभिन्न दलों और समूहों के निरंतर जारी राजनीतिक विरोध के बीच तनाव की स्थिति बनती है। ऐसे में दोनों के बीच एक सधा हुआ संतुलन क्या हो सकता है? क्या नागरिकों को विरोध की कार्रवाई में शामिल होने की पूरी आज़ादी होनी चाहिए अथवा उन्हें इसका कोई अधिकार ही नहीं होना चाहिए। ऐसे विरोध की सीमा क्या मानी जाए?

दूसरे, आपातकाल का वास्तविक क्रियान्वयन पुलिस और प्रशासन के ज़रिए हुआ। ये संस्थाएँ स्वतंत्र होकर काम नहीं कर पाईं। इन्हें शासक दल ने अपना राजनीतिक औज़ार बनाकर इस्तेमाल किया। शाह कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार पुलिस और प्रशासन राजनीतिक दबाव की चपेट में आ गए थे। यह समस्या आपातकाल के बाद भी खत्म नहीं हुई।

आज भारत की आज़ादी का दिन है... भारत के लोकतंत्र का दीपक बुझने न पाए।

फ्री जेपी कैम्पेन
यह विज्ञापन *द टाइम्स* (लंदन) में 15 अगस्त 1975 को छपवाया गया था।

आपातकाल के बाद की राजनीति

जैसे ही आपातकाल खत्म हुआ और लोकसभा के चुनावों की घोषणा हुई, वैसे ही आपातकाल का सबसे ज़रूरी और कीमती सबक राजव्यवस्था ने सीख लिया। 1977 के चुनाव एक तरह से आपातकाल के अनुभवों के बारे में जनमत-संग्रह थे। उत्तर भारत में तो खासतौर पर क्योंकि यहाँ आपातकाल का असर सबसे ज़्यादा महसूस किया गया था। विपक्ष ने 'लोकतंत्र बचाओ' के नारे पर चुनाव लड़ा। जनादेश निर्णायक तौर पर आपातकाल के विरुद्ध था। सबक एकदम साफ़ था और कई राज्यों के विधानसभा चुनावों में भी स्थिति यही रही। जिन सरकारों को जनता ने लोकतंत्र-विरोधी माना उसे मतदाता के रूप में उसने भारी दंड दिया। इस अर्थ में देखें तो 1975-77 के अनुभवों की एक परिणति भारतीय लोकतंत्र की बुनियाद को पुख्ता बनाने में हुई।

लोकसभा के चुनाव–1977

18 महीने के आपातकाल के बाद 1977 के जनवरी माह में सरकार ने चुनाव कराने का फ़ैसला किया। इसी के मुताबिक सभी नेताओं और राजनीतिक कार्यकर्ताओं को जेल से रिहा कर दिया गया। 1977 के मार्च में चुनाव हुए। ऐसे में विपक्ष को चुनावी तैयारी का बड़ा कम समय मिला, लेकिन राजनीतिक बदलाव की गति बड़ी तेज़ थी। आपातकाल लागू होने के पहले ही बड़ी विपक्षी पार्टियाँ एक-दूसरे के नज़दीक आ रही थीं। चुनाव के ऐन पहले इन पार्टियों ने एकजुट होकर जनता पार्टी नाम से एक नया दल बनाया। नयी पार्टी ने जयप्रकाश नारायण का नेतृत्व स्वीकार किया। कांग्रेस के कुछ नेता भी, जो आपातकाल के खिलाफ़ थे, इस पार्टी में शामिल हुए। कांग्रेस के कुछ अन्य नेताओं ने जगजीवन राम के नेतृत्व में एक नयी पार्टी बनाई। इस पार्टी का नाम 'कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी' था और बाद में यह पार्टी भी जनता पार्टी में शामिल हो गई।

1977 के चुनावों को जनता पार्टी ने आपातकाल के ऊपर जनमत संग्रह का रूप दिया। इस पार्टी ने चुनाव-प्रचार में शासन के अलोकतांत्रिक चरित्र और आपातकाल के दौरान की गई ज़्यादतियों पर ज़ोर दिया। हज़ारों लोगों की गिरफ्तारी और प्रेस की सेंसरशिप की पृष्ठभूमि में जनमत कांग्रेस के विरुद्ध था। जनता पार्टी के गठन के कारण यह भी सुनिश्चित हो गया कि गैर-कांग्रेसी वोट एक ही जगह पड़ेंगे। बात बिलकुल साफ़ थी कि कांग्रेस के लिए अब बड़ी मुश्किल आ पड़ी थी।

लेकिन चुनाव के अंतिम नतीजों ने सबको चौंका दिया। आज़ादी के बाद पहली बार ऐसा हुआ कि कांग्रेस लोकसभा का चुनाव हार गई। कांग्रेस को

मोरारजी देसाई (1896–1995) : स्वतंत्रता सेनानी, गाँधीवादी नेता; खादी, प्राकृतिक चिकित्सा और निग्रह के प्रतिपादक; बॉम्बे प्रांत के मुख्यमंत्री; 1967–1969 के बीच उप-प्रधानमंत्री; पार्टी में टूट के बाद कांग्रेस (ओ) में शामिल; 1977–1979 तक एक गैर-कांग्रेसी दल की तरफ़ से प्रधानमंत्री रहे।

© NCERT not to be republished

रे बाबा! इस आम आदमी से बच के रहना। अब वह अपने साथ कोई बदतमीज़ी बर्दाश्त नहीं कर सकता है।

साभार: आर.के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 29 मार्च 1977

देखिए कि एक कार्टूनिस्ट ने 1977 के चुनावों में हारने और जीतने वालों को किस तरह देखा है! आम आदमी के साथ खड़े हुए लोगों में जगजीवन राम, मोरारजी देसाई, चरण सिंह और अटलबिहारी वाजपेयी को दिखाया गया है।

लोकसभा की मात्र 154 सीटें मिली थीं। उसे 35 प्रतिशत से भी कम वोट हासिल हुए। जनता पार्टी और उसके साथी दलों को लोकसभा की कुल 542 सीटों में से 330 सीटें मिलीं। खुद जनता पार्टी अकेले 295 सीटों पर जीत गई थी और उसे स्पष्ट बहुमत मिला था। उत्तर भारत में चुनावी माहौल कांग्रेस के एकदम खिलाफ़ था। कांग्रेस बिहार, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा और पंजाब में एक भी सीट न पा सकी। राजस्थान और मध्य प्रदेश में उसे महज एक-एक सीट मिली। इंदिरा गाँधी रायबरेली से और उनके पुत्र संजय गाँधी अमेठी से चुनाव हार गए।

बहरहाल अगर आप चुनावी नतीजों के नक्शे पर नज़र दौड़ाएँ, तो पाएँगे कि कांग्रेस देश में हर जगह चुनाव नहीं हारी थी। महाराष्ट्र, गुजरात और उड़ीसा में उसने कई सीटों पर अपना कब्ज़ा बरकरार रखा था और दक्षिण भारत के राज्यों में तो एक तरह से उसकी चुनावी विजय का चक्का बेरोक-टोक चला था। इसके कई कारण रहे। पहली बात तो यह थी कि आपातकाल का प्रभाव हर राज्य पर एकसमान नहीं पड़ा था। लोगों को ज़बरन उजाड़ने और विस्थापित करने अथवा ज़बरन नसबंदी करने का काम ज़्यादातर उत्तर भारत के राज्यों में हुआ था, लेकिन इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उत्तर भारत में राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता की प्रकृति में दूरगामी बदलाव आए थे। उत्तर भारत का मध्यवर्ग कांग्रेस से दूर जाने लगा था और मध्यवर्ग के कई तबके जनता पार्टी को एक मंच के रूप में पाकर इससे आ जुड़े। इस अर्थ में देखें, तो 1977 के चुनाव सिर्फ़ आपातकाल की कथा नहीं कहते हैं, बल्कि इसके आगे की भी कुछ बातों का संकेत करते हैं।

© NCERT not to be republished

1977 में बनी गैर-कांग्रेसी सरकार का शपथ ग्रहण समारोह। चित्र में जयप्रकाश नारायण, जे. बी. कृपलानी, मोरारजी देसाई और अटलबिहारी वाजपेयी बैठे हुए नज़र आ रहे हैं।

जनता सरकार

1977 के चुनावों के बाद बनी जनता पार्टी की सरकार में कोई खास तालमेल नहीं था। चुनाव के बाद नेताओं के बीच प्रधानमंत्री के पद के लिए होड़ मची। इस होड़ में मोरारजी देसाई, चरण सिंह और जगजीवन राम शामिल थे। मोरारजी देसाई 1966-67 से ही इंदिरा गाँधी के प्रतिद्वंद्वी थे। चरण सिंह, भारतीय लोकदल के प्रमुख और उत्तर प्रदेश के किसान नेता थे। जगजीवन राम को कांग्रेसी सरकारों में मंत्री पद पर रहने का विशाल अनुभव था। बहरहाल मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने, लेकिन इससे जनता पार्टी के भीतर सत्ता की खींचतान खत्म न हुई।

आपातकाल का विरोध जनता पार्टी को कुछ ही दिनों के लिए एकजुट रख सका। इस पार्टी के आलोचकों ने कहा कि जनता पार्टी के पास किसी दिशा, नेतृत्व अथवा एक साझे कार्यक्रम का अभाव था। जनता पार्टी की सरकार कांग्रेस द्वारा अपनाई गई नीतियों में कोई बुनियादी बदलाव नहीं ला सकी। जनता पार्टी बिखर गई और मोरारजी देसाई के नेतृत्व वाली सरकार ने 28 माह में ही अपना बहुमत खो दिया। कांग्रेस पार्टी के समर्थन पर दूसरी सरकार चरण सिंह के नेतृत्व में बनी। लेकिन बाद में कांग्रेस पार्टी ने समर्थन वापस लेने का फ़ैसला किया। इस वज़ह से चरण सिंह की सरकार मात्र 4 महीने तक सत्ता में रही। 1980 के जनवरी में लोकसभा के लिए नए सिरे से चुनाव हुए। इस चुनाव में जनता पार्टी बुरी तरह परास्त हुई। जनता पार्टी को उत्तर भारत में करारी शिकस्त मिली, जबकि 1977 के चुनाव में उत्तर भारत में इस पार्टी को ज़बरदस्त सफलता मिली थी। इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी ने 1980 के चुनाव में एक बार फिर 1971 के चुनावों वाली कहानी दुहराते हुए भारी सफलता हासिल की। कांग्रेस पार्टी को 353 सीटें मिलीं और वह सत्ता में आई। 1977-79 के चुनावों ने लोकतांत्रिक राजनीति का एक और सबक सिखाया–सरकार अगर अस्थिर हो और उसके भीतर कलह हो, तो मतदाता ऐसी सरकार को कड़ा दंड देते हैं।

© NCERT not to be republished

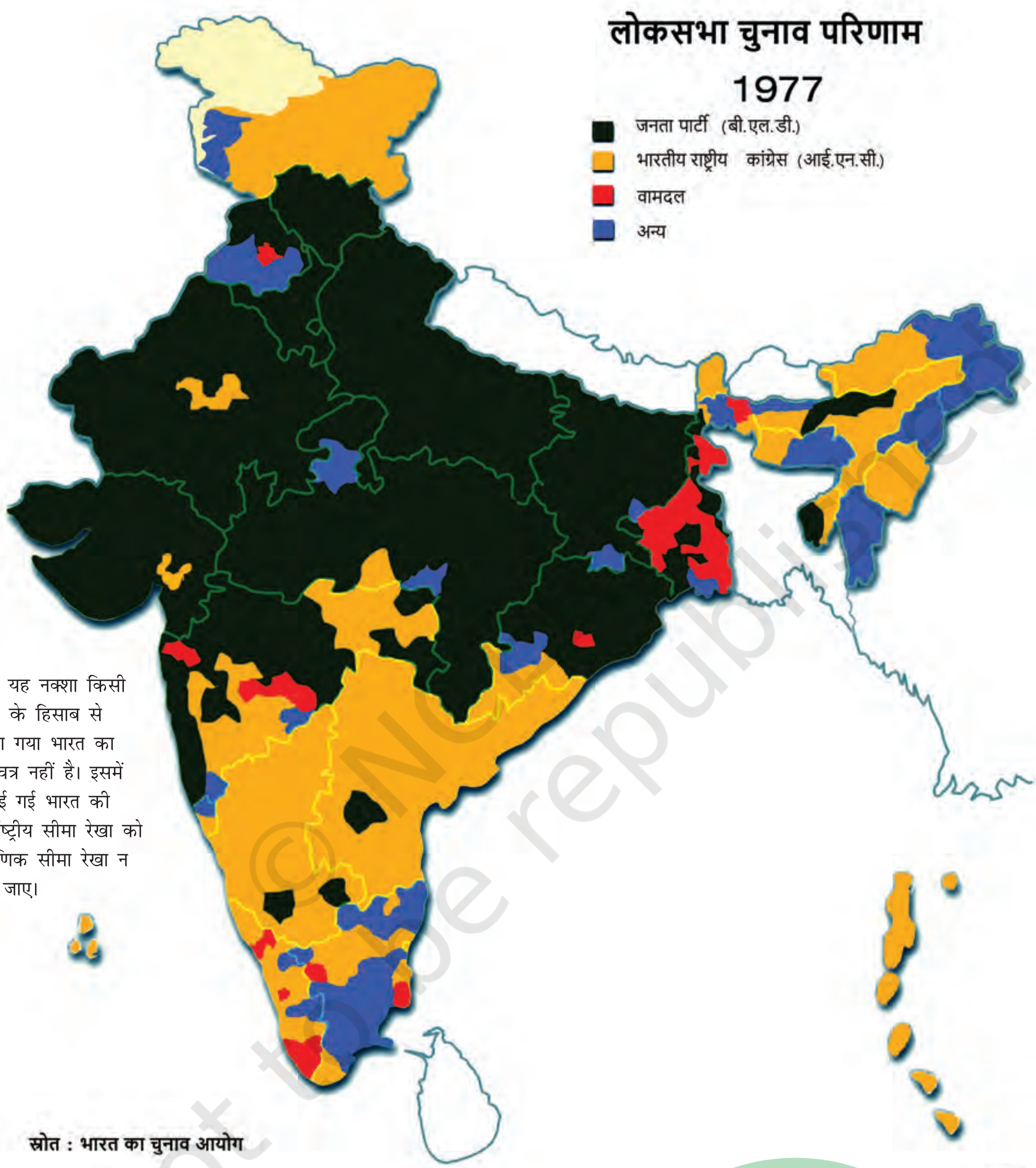

नोटः यह नक्शा किसी पैमाने के हिसाब से बनाया गया भारत का मानचित्र नहीं है। इसमें दिखाई गई भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को प्रामाणिक सीमा रेखा न माना जाए।

स्रोत : भारत का चुनाव आयोग

© NCERT not to be republished

इस मानचित्र में उन जगहों को चिह्नित करें, जहाँ

- कांग्रेस हारी
- कांग्रेस बुरी तरह पराजित हुई
- ऐसे राज्य जहाँ कांग्रेस और उसके साथी दलों को भारी विजय मिली।

अगर उत्तर और दक्षिण के राज्यों में मतदाताओं ने इतने अलग ढर्रे पर मतदान किया, तो हम कैसे कहें कि 1977 के चुनावों का जनादेश क्या था?

साभार: अतनु राय/इंडिया टुडे

साभार: आर.के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ़ इंडिया, 13 नवंबर 1979

साभार: आर.के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ़ इंडिया

जनता पार्टी की गुटबाजी पर बहुत-से कार्टून बने। उसकी कुछ बानगी यहाँ आप भी देखें। ये कार्टून अंग्रेज़ी भाषा के अखबार और पत्रिकाओं में छपे।

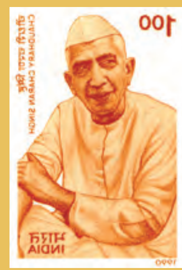

चौधरी चरण सिंह (1902–1987) : जुलाई 1979 से जनवरी 1980 के बीच भारत के प्रधानमंत्री; स्वतंत्रता सेनानी; उत्तर प्रदेश की राजनीति में सक्रिय; ग्रामीण एवं कृषि विकास के समर्थक; कांग्रेस छोड़ी और 1967 में भारतीय क्रांति दल का गठन; उत्तर प्रदेश में दो बार मुख्यमंत्री; बाद में 1977 में जनता पार्टी के संस्थापको में से एक, उप-प्रधानमंत्री और गृहमंत्री (1977–79); लोकदल के संस्थापक।

जगजीवन राम
(1908-1986) : स्वतंत्रता सेनानी एवं बिहार के कांग्रेसी नेता; 1977-79 के बीच भारत के उप-प्रधनमंत्री; संविधान सभा के सदस्य; 1952 से मृत्युपर्यंत सांसद; स्वतंत्र भारत के पहले मंत्रिमंडल में श्रम मंत्री; 1952 से 1977 के बीच अनेक मंत्रालयों की जिम्मेदारी; विद्वान और कुशल प्रशासक।

विरासत

लेकिन क्या 1980 के चुनाव में सिर्फ़ इंदिरा गाँधी की वापसी हुई थी? क्या मामला इतना भर था? 1977 और 1980 के चुनावों के बीच दलगत प्रणाली में नाटकीय बदलाव आए। 1969 के बाद से कांग्रेस का सबको समाहित करके चलने वाला स्वभाव बदलना शुरू हुआ। 1969 से पहले तक कांग्रेस विविध विचारधारात्मक गति-मति के नेताओं और कार्यकर्ताओं को एक में समेटकर चलती थी। अपने बदले हुए स्वभाव में कांग्रेस ने स्वयं को विशेष विचारधारा से जोड़ा। उसने अपने को देश की एकमात्र समाजवादी और ग़रीबों की हिमायती पार्टी बताना शुरू किया। इस तरह 1970 के दशक के शुरुआती सालों से कांग्रेस की सफलता इस बात पर निर्भर रही कि वह गहरे सामाजिक और विचारधारात्मक विभाजन के आधार पर लोगों को अपनी तरफ़ कितना खींच पाती है। इसके साथ-साथ यह पार्टी अब एक नेता यानी इंदिरा गाँधी की लोकप्रियता पर भी निर्भर हुई। कांग्रेस की प्रकृति में आए बदलावों के मद्देनजर अन्य विपक्षी दल 'गैर-कांग्रेसवाद' की राजनीति की तरफ़ मुड़े। विपक्ष के नेताओं को अब यह बात साफ़-साफ़ नज़र आने लगी कि चुनावों में गैर-कांग्रेसी वोट बिखरने नहीं चाहिए। इस चीज़ ने 1977 के चुनावों में एक बड़ी भूमिका निभाई।

अप्रत्यक्ष रूप से 1977 के बाद पिछड़े वर्गों की भलाई का मुद्दा भारतीय राजनीति पर हावी होना शुरू हुआ। हमने ऊपर गौर किया था कि 1977 के चुनाव-परिणामों पर

साभार: इंडिया टुडे

साभार: आर.के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ़ इंडिया

यह कार्टून 1980 के चुनावों के बाद छपा था।

© NCERT not to be republished

पिछड़ी जातियों के मतदान का असर पड़ा था, खासकर उत्तर भारत में। लोकसभा के चुनावों के बाद, 1977 में कई राज्यों में विधानसभा के भी चुनाव हुए। इसमें भी उत्तर भारत के राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं। इन सरकारों के बनने में पिछड़ी जाति के नेताओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बिहार में 'अन्य पिछड़ी जातियों' के आरक्षण के सवाल पर बहुत शोर मचा। इसके बाद केंद्र की जनता पार्टी की सरकार ने मंडल आयोग नियुक्त किया। इस आयोग और पिछड़ी जातियों की राजनीति की भूमिका के बारे में ज़्यादा विस्तार से आप अंतिम अध्याय में पढ़ेंगे। आपातकाल के बाद हुए चुनावों ने दलीय व्यवस्था के भीतर इस बदलाव की प्रक्रिया शुरू कर दी।

आपातकाल और इसके आसपास की अवधि को हम संवैधानिक संकट की अवधि के रूप में भी देख सकते हैं। संसद और न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र को लेकर छिड़ा संवैधानिक संघर्ष भी आपातकाल के मूल में था। दूसरी तरफ़ यह राजनीतिक संकट का भी दौर था। सत्ताधारी पार्टी के पास पूर्ण बहुमत था। फिर भी, इसके नेतृत्व ने लोकतंत्र को ठप्प करने का फ़ैसला किया। भारतीय संविधान के निर्माताओं को विश्वास था कि सभी राजनीतिक दल लोकतांत्रिक मानकों का पालन करेंगे। उन्हें यह भी विश्वास था कि आपातकाल की स्थिति में भी सरकार अपनी असाधारण शक्तियों का इस्तेमाल विधि के शासन के दायरे में रहते हुए ही करेगी। इसी उम्मीद में सरकार को आपातकाल से जुड़े प्रावधानों के अंतर्गत व्यापक और चहुँमुखी शक्तियाँ दे दी गईं। इन शक्तियों का आपातकाल के दौरान दुरुपयोग हुआ। यह राजनीतिक संकट तत्कालीन संवैधानिक संकट से कहीं ज़्यादा संगीन था।

इस दौर में एक और महत्वपूर्ण मसला संसदीय लोकतंत्र में जन आंदोलन की भूमिका और उसकी सीमा को लेकर उठा। स्पष्ट ही इस दौर में संस्था आधारित लोकतंत्र और स्वत:स्फूर्त जन-भागीदारी पर आधारित लोकतंत्र में तनाव नज़र आया। इस तनाव का एक कारण यह भी कहा जा सकता है कि हमारी दलीय प्रणाली जनता की आकांक्षाओं को अभिव्यक्त कर पाने में सक्षम साबित नहीं हुई। आगे के अध्याय में हम इस तनाव की कुछ अभिव्यक्तियों को समझने की कोशिश करेंगे। इस अध्याय में हम विशेष रूप से क्षेत्रीय पहचान से जुड़ी बहसों के बारे में पढ़ेंगे।

सिने-संसार

हजारों ख्वाहिशें ऐसी

सिद्धार्थ, विक्रम और गीता मेधावी और सामाजिक सरोकार वाले छात्र हैं। दिल्ली में अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद तीनों अलग-अलग राह पर निकल पड़ते हैं। सिद्धार्थ सामाजिक बदलाव के लिए क्रांतिकारी विचारधारा का हिमायती है। विक्रम की दलील ज़िंदगी में कामयाबी हासिल करने की है, चाहे इसके लिए जो भी कीमत चुकानी पड़े। अपनी ज़िंदगी के मकसद को हासिल करने निकले इन लोगों के सुख-दुख के इर्द-गिर्द यह कहानी चलती है।

फ़िल्म की पृष्ठभूमि सत्तर के दशक की है। इस फ़िल्म के युवा चरित्र उस दौर की अपेक्षाओं और आदर्शवाद की उपज हैं। सिद्धांत क्रांति के अपने मकसद में सफल नहीं होता है, लेकिन वह गरीबों के दुख-दर्द इस तरह अपना चुका है कि उसे क्रांति की जगह ऐसे लोगों की हालत में थोड़ी बेहतरी ला पाना भी अच्छा लगने लगता है। दूसरी तरफ़, विक्रम एक आमफहम राजनीतिक तिकड़मबाज बन जाता है। लेकिन अपने इस काम को लेकर उसका मन कचोटता रहता है।

वर्ष : 2005
निर्देशक : सुधीर मिश्र
पटकथा : रुचि नारायण, शिव कुमार, सुब्रह्मण्यम
अभिनय : के.के. मेनन, शाइनी आहूजा, चित्रांगदा सिंह

प्रश्नावली

1. बताएँ कि आपातकाल के बारे में निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत–
   (क) आपातकाल की घोषणा 1975 में इंदिरा गाँधी ने की।
   (ख) आपातकाल में सभी मौलिक अधिकार निष्क्रिय हो गए।
   (ग) बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति के मद्देनज़र आपातकाल की घोषणा की गई थी।
   (घ) आपातकाल के दौरान विपक्ष के अनेक नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया।
   (ङ) सी.पी.आई. ने आपातकाल की घोषणा का समर्थन किया।

2. निम्नलिखित में से कौन-सा आपातकाल की घोषणा के संदर्भ से मेल नहीं खाता है:
   (क) 'संपूर्ण क्रांति' का आह्वान
   (ख) 1974 की रेल-हड़ताल
   (ग) नक्सलवादी आंदोलन
   (घ) इलाहाबाद उच्च न्यायालय का फ़ैसला
   (ङ) शाह आयोग की रिपोर्ट के निष्कर्ष

3. निम्नलिखित में मेल बैठाएँ

(क) संपूर्ण क्रांति	(i) इंदिरा गाँधी
(ख) गरीबी हटाओ	(ii) जयप्रकाश नारायण
(ग) छात्र आंदोलन	(iii) बिहार आंदोलन
(घ) रेल हड़ताल	(iv) जॉर्ज फर्नांडिस

4. किन कारणों से 1980 में मध्यावधि चुनाव करवाने पड़े?
5. जनता पार्टी ने 1977 में शाह आयोग को नियुक्त किया था। इस आयोग की नियुक्ति क्यों की गई थी और इसके क्या निष्कर्ष थे?
6. 1975 में राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा करते हुए सरकार ने इसके क्या कारण बताए थे?
7. 1977 के चुनावों के बाद पहली दफा केंद्र में विपक्षी दल की सरकार बनी। ऐसा किन कारणों से संभव हुआ?
8. हमारी राजव्यवस्था के निम्नलिखित पक्ष पर आपातकाल का क्या असर हुआ?
   - नागरिक अधिकारों की दशा और नागरिकों पर इसका असर
   - कार्यपालिका और न्यायपालिका के संबंध
   - जनसंचार माध्यमों के कामकाज
   - पुलिस और नौकरशाही की कार्रवाइयाँ

© NCERT not to be republished

9. भारत की दलीय प्रणाली पर आपातकाल का किस तरह असर हुआ? अपने उत्तर की पुष्टि उदाहरणों से करें।

10. निम्नलिखित अवतरण को पढ़ें और इसके आधार पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दें–

1977 के चुनावों के दौरान भारतीय लोकतंत्र, दो-दलीय व्यवस्था के जितना नज़दीक आ गया था उतना पहले कभी नहीं आया। बहरहाल अगले कुछ सालों में मामला पूरी तरह बदल गया। हारने के तुरंत बाद कांग्रेस दो टुकड़ों में बँट गई..... जनता पार्टी में भी बड़ी अफरा-तफरी मची.........डेविड बटलर, अशोक लाहिड़ी और प्रणव रॉय

– पार्था चटर्जी

(क) किन वज़हों से 1977 में भारत की राजनीति दो-दलीय प्रणाली के समान जान पड़ रही थी?

(ख) 1977 में दो से ज़्यादा पार्टियाँ अस्तित्व में थीं। इसके बावजूद लेखकगण इस दौर को दो-दलीय प्रणाली के नज़दीक क्यों बता रहे हैं?

(ग) कांग्रेस और जनता पार्टी में किन कारणों से टूट पैदा हुई?

© NCERT not to be republished

साभार: उत्तराखंड सांस्कृतिक मोर्चा

क्षेत्रीय आकांक्षाओं को अकसर क्षेत्र विशेष की भाषा में अभिव्यक्त किया जाता है और ये आकांक्षाएँ स्थानीय जनता या शासकों को संबोधित की जाती हैं।

यहाँ जो पोस्टर दिखाया गया है, उसे इस संदर्भ में विशेष कहा जाएगा कि उसमें सात भाषाओं का इस्तेमाल किया गया है। स्पष्ट है कि इन भाषाओं के इस्तेमाल का उद्देश्य तमाम भारतीय नागरिकों तक अपनी बात पहुँचाना है। पोस्टर से यह बात साफ ज़ाहिर है कि क्षेत्रीय आकांक्षाओं का राष्ट्रीय भावनाओं से कोई बुनियादी टकराव नहीं है।

इस अध्याय में...

आज़ादी के बाद के पहले दशक में राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया चली। हमने इसके बारे में इस किताब के पहले अध्याय में पढ़ा था। लेकिन राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया एक ही बार में पूरी नहीं हो जाती। वक्त गुजरने के साथ नई चुनौतियाँ आईं। कुछ पुरानी समस्याएँ ऐसी थीं कि उनका समाधान पूरी तरह से न हो सका था। लोकतंत्र के रास्ते पर जैसे-जैसे हम बढ़े, वैसे-वैसे अलग-अलग इलाकों के लोगों में स्वायत्तता की भावना पैदा हुई। कभी-कभी स्वायत्तता की आकांक्षा की अभिव्यक्ति भारत के संघीय ढाँचे के हदों को पार करके भी हुई। स्वायत्तता की ऐसी आकांक्षाओं ने कभी-कभार हिंसक रूप लिया और संघर्ष लंबा खिंचा। इन संघर्षों में लोगों ने आक्रामक तेवर अपनाए और बहुधा हथियार भी उठाए।

यह नई चुनौती 1980 के दशक में पूरी ताकत के साथ उभरी थी। इस वक्त तक जनता पार्टी के रूप में गैर-कांग्रेसवाद का प्रयोग अपनी अंतिम साँसें ले चुका था और केंद्र में थोड़ी-बहुत राजनीतिक स्थिरता की स्थिति थी। इस दशक को कुछ बड़े संघर्ष और समझौते के दशक के रूप में याद किया जाएगा। इस दशक में असम, पंजाब, मिजोरम और जम्मू-कश्मीर में क्षेत्रीय आकांक्षाओं ने सर उठाया और सरकार को बड़े जतन के साथ समझौते करने पड़े। इस अध्याय में हम इन्हीं मामलों के बारे में पढ़ेंगे ताकि इन सवालों को उठा सकें:

- क्षेत्रीय आकांक्षाओं और उनसे उपजे तनाव को किन कारणों से बल मिलता है?
- भारत सरकार ने ऐसी चुनौतियों और तनावों के प्रति क्या कदम उठाए?
- लोकतांत्रिक अधिकारों और राष्ट्रीय एकता के बीच संतुलन साधने में किस किस्म की कठिनाइयाँ आती हैं?
- लोकतंत्र में विविधताओं के बीच एकता कायम करने के लिहाज से हमें क्या सीख मिलती है?

अध्याय 7

क्षेत्रीय आकांक्षाएँ

क्षेत्र और राष्ट्र

1980 के दशक को स्वायत्तता की माँग के दशक के रूप में भी देखा जा सकता है। इस दौर में देश के कई हिस्सों से स्वायत्तता की माँग उठी और इसने संवैधानिक हदों को भी पार किया। इन आंदोलनों में शामिल लोगों ने अपनी माँग के पक्ष में हथियार उठाए; सरकार ने उनको दबाने के लिए जवाबी कार्रवाई की और इस क्रम में राजनीतिक तथा चुनावी प्रक्रिया अवरुद्ध हुई। आश्चर्य नहीं कि स्वायत्तता की माँग को लेकर चले अधिकतर संघर्ष लंबे समय तक ज़ारी रहे और इन संघर्षों पर विराम लगाने के लिए केंद्र सरकार को सुलह की बातचीत का रास्ता अख्तियार करना पड़ा अथवा स्वायत्तता के आंदोलन की अगुवाई कर रहे समूहों से समझौते करने पड़े। बातचीत की एक लंबी प्रक्रिया के बाद ही दोनों पक्षों के बीच समझौता हो सका। बातचीत का लक्ष्य यह रखा गया कि विवाद के मुद्दों को संविधान के दायरे में रहकर निपटा लिया जाए। बहरहाल, समझौते तक पहुँचने की यह यात्रा बड़ी दुर्गम रही और इसमें जब-तब हिंसा के स्वर उभरे।

भारत सरकार का नज़रिया

राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया और भारत के संविधान के बारे में पढ़ते हुए विविधता के एक बुनियादी सिद्धांत की चर्चा हमारी नजरों से बार-बार गुजरी है : भारत में विभिन्न क्षेत्र और भाषायी समूहों को अपनी संस्कृति बनाए रखने का अधिकार होगा। हमने एकता की भावधारा से बँधे एक ऐसे सामाजिक जीवन के निर्माण का निर्णय लिया था, जिसमें इस समाज को आकार देने वाली तमाम संस्कृतियों की विशिष्टता बनी रहे। भारतीय राष्ट्रवाद ने एकता और विविधता के बीच संतुलन साधने की कोशिश की है। राष्ट्र का मतलब यह नहीं है कि क्षेत्र को नकार दिया जाए। इस अर्थ में भारत का नज़रिया यूरोप के कई देशों से अलग रहा, जहाँ सांस्कृतिक विभिन्नता को राष्ट्र की एकता के लिए खतरे के रूप में देखा गया।

भारत ने विविधता के सवाल पर लोकतांत्रिक दृष्टिकोण अपनाया। लोकतंत्र में क्षेत्रीय आकांक्षाओं की राजनीतिक अभिव्यक्ति की अनुमति है और लोकतंत्र क्षेत्रीयता को राष्ट्र-विरोधी नहीं मानता। इसके अतिरिक्त लोकतांत्रिक राजनीति में इस बात के पूरे अवसर होते हैं कि विभिन्न दल और समूह क्षेत्रीय पहचान, आकांक्षा अथवा किसी खास क्षेत्रीय समस्या को आधार बनाकर लोगों की भावनाओं की नुमाइंदगी करें। इस तरह लोकतांत्रिक राजनीति की प्रक्रिया में क्षेत्रीय आकांक्षाएँ और बलवती होती हैं। साथ ही लोकतांत्रिक राजनीति का एक अर्थ यह भी है कि क्षेत्रीय मुद्दों और समस्याओं पर नीति-निर्माण की प्रक्रिया में समुचित ध्यान दिया जाएगा और उन्हें इसमें भागीदारी दी जाएगी।

© NCERT not to be republished

ऐसी व्यवस्था में कभी-कभी तनाव या परेशानियाँ खड़ी हो सकती हैं। कभी ऐसा भी हो सकता है कि राष्ट्रीय एकता के सरोकार क्षेत्रीय आकांक्षाओं और ज़रूरतों पर भारी पड़ें। कभी ऐसा भी हो सकता है कि कोई क्षेत्रीय सरोकारों के कारण राष्ट्र की वृहत्तर आवश्यकताओं से आँखें मूँद लें। जो राष्ट्र चाहते हैं कि विविधताओं का सम्मान हो साथ ही राष्ट्र की एकता भी बनी रहे, वहाँ क्षेत्रों की ताकत, उनके अधिकार और अलग अस्तित्व के मामले पर राजनीतिक संघर्ष का होना एक आम बात है।

तनाव के दायरे

आपने पहले अध्याय में पढ़ा था कि आज़ादी के तुरंत बाद हमारे देश को विभाजन, विस्थापन, देसी रियासतों के विलय और राज्यों के पुनर्गठन जैसे कठिन मसलों से जूझना पड़ा। देश और विदेश के अनेक पर्यवेक्षकों का अनुमान था कि भारत एकीकृत राष्ट्र के रूप में ज़्यादा दिनों तक टिक नहीं पाएगा। आज़ादी के तुरंत बाद जम्मू-कश्मीर का मसला सामने आया। यह सिर्फ़ भारत और पाकिस्तान के बीच संघर्ष का मामला नहीं था। कश्मीर घाटी के लोगों की राजनीतिक आकांक्षाओं का सवाल भी इससे जुड़ा हुआ था। ठीक इसी तरह पूर्वोत्तर के कुछ भागों में भारत का अंग होने के मसले पर सहमति नहीं थी। पहले नगालैंड में और फिर मिजोरम में भारत से अलग होने की माँग करते हुए जोरदार आंदोलन चले। दक्षिण भारत में भी द्रविड़ आंदोलन से जुड़े कुछ समूहों ने एक समय अलग राष्ट्र की बात उठायी थी।

अलगाव के इन आंदोलनों के अतिरिक्त देश में भाषा के आधार पर राज्यों के गठन की माँग करते हुए जन आंदोलन चले। मौजूदा आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात ऐसे ही आंदोलनों वाले राज्य हैं। दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों - खासकर तमिलनाडु में हिंदी को राजभाषा बनाने के खिलाफ़ विरोध-आंदोलन चला। 1950 के दशक के उत्तरार्द्ध से पंजाबी-भाषी लोगों ने अपने लिए एक अलग राज्य बनाने की आवाज़ उठानी शुरू कर दी। उनकी माँग आखिरकार मान ली गई और 1966 में पंजाब और हरियाणा नाम से राज्य बनाए गए। बाद में छत्तीसगढ़, उत्तराखंड और झारखंड का गठन हुआ। कहा जा सकता है कि विविधता की चुनौती से निपटने के लिए देश की अंदरूनी सीमा रेखाओं का पुनर्निर्धारण किया गया।

बहरहाल, इन प्रयासों का मतलब यह नहीं था कि हर परेशानी का हमेशा के लिए हल निकल आया। कश्मीर और नगालैंड जैसे कुछ क्षेत्रों में चुनौतियाँ इतनी विकट और जटिल थीं कि राष्ट्र-निर्माण के पहले दौर में इनका समाधान नहीं किया जा सका। इसके अतिरिक्त पंजाब, असम और मिजोरम में नई चुनौतियाँ उभरीं। आइए, हम इन मामलों पर तनिक विस्तार से बात करें और इसके साथ-साथ राष्ट्र-निर्माण के क्रम में पेश आई कुछ पुरानी कठिनाइयों और उनके उदाहरणों को याद करने की कोशिश करें। ऐसे मामलों में मिली सफलता या विफलता सिर्फ़ अतीत के अध्ययन के लिए एक जरूरी प्रस्थान-बिंदु नहीं बल्कि भारत के भविष्य को समझने के लिए भी एक ज़रूरी सबक है।

© NCERT not to be republished

जम्मू एवं कश्मीर

आपने जैसा कि आपने गत वर्ष पढ़ा है, जम्मू और कश्मीर को अनुच्छेद 370 के अंतर्गत विशेष दर्जा दिया गया था। परंतु इसके बावजूद भी जम्मू और कश्मीर को हिंसा, सीमा पार का आतंकवाद और राजनीतिक अस्थिरता झेलनी पड़ी और इसके आंतरिक तथा बाहरी प्रभाव भी सामने आए। इसके परिणाम स्वरूप कई लोग भी मारे गए, जिनमें निर्दोष नागरिक, सुरक्षाकर्मी और उग्रवादी शामिल थे। इसके अलावा, कश्मीर घाटी से बड़े पैमाने पर कश्मीरी पंडितों का पलायन भी हुआ।

केंद्र शासित प्रदेश—जम्मू एवं कश्मीर तथा लद्दाख

स्रोत: https://pib.gov.in

जम्मू और कश्मीर तीन सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों-जम्मू, कश्मीर और लद्दाख से बना हुआ है। जम्मू क्षेत्र में छोटी पहाड़ियाँ और मैदानी भाग हैं। इसमें मुख्य रूप से हिन्दू रहते हैं। मुसलमान, सिख और अन्य मतों के लोग भी रहते हैं। कश्मीर क्षेत्र में मुख्य रूप से कश्मीर घाटी है। यहाँ रहने वाले अधिकांश कश्मीरी मुसलमान हैं और शेष हिन्दू, सिख, बौद्ध तथा अन्य हैं। लद्दाख मुख्य रूप से पहाड़ी क्षेत्र है। इसकी जनसंख्या बहुत कम है, जिसमें लगभग बराबर संख्या में बौद्ध और मुसलमान हैं।

समस्या की जड़ें

1947 से पहले जम्मू और कश्मीर (जे एंड के) एक राजसी रियासत थी। इसके शासक, महाराजा हरि सिंह भारत या पाकिस्तान में शामिल होना नहीं चाहते थे, बल्कि अपनी रियासत के लिए स्वतंत्र दर्जा चाहते थे। पाकिस्तानी नेताओं ने सोचा कि कश्मीर क्षेत्र पाकिस्तान का 'हिस्सा' है, क्योंकि रियासत की अधिकांश आबादी मुसलमान थी। परंतु उस रियासत के लोगों ने इसे इस तरह नहीं देखा - उन्होंने सोचा कि सबसे पहले वे कश्मीरी हैं। क्षेत्रीय अभिलाषा का यह मुद्दा कश्मीरियत कहलाता है। राज्य में नेशनल कॉन्फ्रेंस के शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में चलाया गया लोकप्रिय आंदोलन महाराजा से छुटकारा पाना चाहता था। साथ ही पाकिस्तान में शामिल होने के विरुद्ध था। नेशनल कॉन्फ्रेंस एक धर्मनिरपेक्ष संगठन था और इसका कॉंग्रेस के साथ लंबे समय से संबंध था। शेख अब्दुल्ला नेहरू सहित कुछ राष्ट्रवादी नेताओं के व्यक्तिगत मित्र थे।

अक्टूबर 1947 में, पाकिस्तान ने कश्मीर पर कब्जा करने के लिए अपनी तरफ से कबायली घुसपैठिए भेजे। इसने महाराजा को भारतीय सैनिक सहायता लेने के लिए बाध्य किया। भारत ने सैनिक सहायता दी और कश्मीर घाटी से घुसपैठियों को वापस खदेड़ दिया, परंतु यह तभी हुआ जब महाराजा ने भारत सरकार के साथ विलय प्रपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए।

द्रविड़ आंदोलन

'उत्तर हर दिन बढ़ता जाए, दक्षिण दिन-दिन घटता जाए'

यह द्रविड़ आंदोलन के एक बेहद लोकप्रिय नारे का हिंदी रूपांतर है। यह आंदोलन भारत के क्षेत्रीय आंदोलनों में सबसे ताकतवर आंदोलन था। भारतीय राजनीति में यह आंदोलन क्षेत्रीयतावादी भावनाओं की सर्वप्रथम और सबसे प्रबल अभिव्यक्ति था। हालाँकि आंदोलन के नेतृवर्ग के एक हिस्से की आकांक्षा एक स्वतंत्र द्रविड़ राष्ट्र बनाने की थी, पर आंदोलन ने कभी सशस्त्र संघर्ष की राह नहीं अपनायी। नेतृत्व ने अपनी माँग आगे बढ़ाने के लिए सार्वजनिक बहसों और चुनावी मंच का ही इस्तेमाल किया। द्रविड़ आंदोलन की बागडोर तमिल समाज सुधारक ई.वी. रामास्वामी नायकर 'पेरियार' के हाथों में थी। इस आंदोलन से एक राजनीतिक संगठन-'द्रविड़ कड़गम' का सूत्रपात हुआ। यह संगठन ब्राह्मणों के वर्चस्व का विरोध करता था तथा उत्तरी भारत के राजनीतिक, आर्थिक और साँस्कृतिक प्रभुत्व को नकारते हुए क्षेत्रीय गौरव की प्रतिष्ठा पर जोर देता था। प्रारंभ में, द्रविड़ आंदोलन समग्र दक्षिण भारतीय संदर्भ में अपनी बात रखता था लेकिन अन्य दक्षिणी राज्यों से समर्थन न मिलने के कारण यह आंदोलन धीरे-धीरे तमिलनाडु तक ही सिमट कर रह गया। बाद में द्रविड़ कड़गम दो धड़ों में बंट गया और आंदोलन की समूची राजनीतिक विरासत द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के पाले में केंद्रित हो गई। 1953-54 के दौरान डीएमके ने तीन-सूत्री आंदोलन के साथ राजनीति में कदम रखा। आंदोलन की तीन माँगें थी : पहली, कल्लाकुडी नामक रेलवे स्टेशन का नया नाम-डालमियापुरम निरस्त किया जाए और स्टेशन का मूल नाम बहाल किया जाए। संगठन की यह माँग उत्तर भारतीय आर्थिक प्रतीकों के प्रति उसके विरोध को प्रकट करती थी।

ई. वी. रामास्वामी नायकर (1879-1973) : पेरियार के नाम से प्रसिद्ध; ऊनीश्वरवाद के प्रबल समर्थक; जाति-विरोधी आंदोलन एवं द्रविड़ अस्मिता के उद्‌भावक; राजनीतिक जीवन की शुरुआत कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में; आत्मसम्मान आंदोलन के जनक (1925); ब्राह्मण विरोधी आंदोलन का नेतृत्व; जस्टिस पार्टी के कार्यकर्ता और द्रविड़ कड़गम की स्थापना; हिंदी और उत्तर भारतीय वर्चस्व का विरोध; 'उत्तर भारतीय लोग एवं ब्राह्मण द्रविड़ों से अलग आर्य हैं' इस मत का प्रतिपादन किया।

साभार : हिंदू

तमिलनाडु में हिंदी विरोधी आंदोलन, 1965

© NCERT not to be republished

HINDI PROTAGONISTS ALLEGE BID TO REVERSE POLICY

"The Times of India" News Service

NEW DELHI, December 2.

A STORM broke out in the Lok Sabha today during question-hour when protagonists of Hindi contested the Government's right to refer the question of medium of instruction to the Education Commission after Parliament had set its seal of approval on the Government's language policy.

Despite the Education Minister, Mr. M. C. Chagla's assurance that there had been no change in the language policy and that the findings of the commission were not binding on the Government, excitement ran high and a spate of points of order

the Government's policy which was quite correct. His remark that the findings of the Commission were not binding on the Government or his Ministry was greeted with loud cries. "Then why appoint a commission?".

The furore started when Mr. Prakash Vir Shastri asked whether the reference to the Commission meant that the Minister did not agree with the Government's policy? Would it not also mean that Parliament, which had endorsed the policy, was being bypassed?

GOVT. POLICY

Other questions were also on similar lines. Mr. Bhagwat Jha Azad said that he had appointed a Commission

before Parliament and it would be open to the House to take whatever attitude it liked on them.

Earlier, answering questions on the report of the Sampurnanand Committee, Mr. Chagla said that he had been consistently taking the position that regional languages should become the media of instruction in universities. But they should go slow in the matter. That was also the recommendation of the National Integration Committee.

He said that Gujarat was the only State which had introduced English from Standard VIII. Most other States had introduced it from Standard V. One or two States were starting English from Standard III.

दूसरी माँग इस बात को लेकर थी कि स्कूली पाठ्यक्रम में तमिल संस्कृति के इतिहास को ज़्यादा महत्त्व दिया जाए। संगठन की तीसरी माँग राज्य सरकार के शिल्पकर्म शिक्षा कार्यक्रम को लेकर थी। संगठन के अनुसार यह नीति समाज में ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण को बढ़ावा देती थी। डीएमके हिंदी को राजभाषा का दर्ज़ा देने के भी खिलाफ़ थी। 1965 के हिंदी विरोधी आंदोलन की सफलता ने डीएमके को जनता के बीच और भी लोकप्रिय बना दिया।

राजनीतिक आंदोलनों के एक लंबे सिलसिले के बाद डीएमके को 1967 के विधानसभा चुनावों में बड़ी सफलता हाथ लगी। तब से लेकर आज तक तमिलनाडु की राजनीति में द्रविड़ दलों का वर्चस्व कायम है। डीएमके के संथापक सी. अन्नादुरै की मृत्यु के बाद दल में दोफाड़ हो गया। इसमें एक दल मूल नाम यानी डीएमके को लेकर आगे चला जबकि दूसरा दल खुद को आल इंडिया अन्ना द्रमुक कहने लगा। यह दल स्वयं को द्रविड़ विरासत का असली हकदार बताता था। तमिलनाडु की राजनीति में ये दोनों दल चार दशकों से दबदबा बनाए हुए हैं। इनमें से एक न एक दल 1996 से केंद्र में सत्तारूढ़ गठबंधन का हिस्सा रहा है। 1990 के दशक में एमडीएमके (मरुमलर्ची द्रविड़ मुनेत्र कड़गम), पीएमके (पट्टाली मक्कल कच्ची), डीएमडीके (देसिया मुरपोक्कू द्रविड़ कड़गम) जैसे कई अन्य दल अस्तित्व में आए। तमिलनाडु की राजनीति में इन सभी दलों ने क्षेत्रीय गौरव के मुद्दे को किसी न किसी रूप में जिंदा रखा है। एक समय क्षेत्रीय राजनीति को भारतीय राष्ट्र के लिए खतरा माना जाता था। लेकिन तमिलनाडु की राजनीति क्षेत्रवाद और राष्ट्रवाद के बीच सहकारिता की भावना का अच्छा उदाहरण पेश करती है।

Jeeps, Command Cars Station Wagons, Chevrolet Trucks, Used Cars EXCELLENT CONDITION and New B.S.A. Motor Cycles Pearey Lal & Sons Ltd. New Delhi, Peshawar & Rawalpindi

DELHI EDITION

Regd. No. L. 1732.

The Hindustan Times

LARGEST CIRCULATION IN NORTHERN, NORTH-WESTERN AND CENTRAL INDIA

B.RAMCHAND & CO

VOL. XXIV. NO. 295 NEW DELHI: TUESDAY, OCTOBER 28, 1947. PRICE TWO ANNAS

KASHMIR ACCEDES TO INDIA

PLEBISCITE SOON ON RULER'S DECISION

Troops And Arms Flown To Srinagar

CONTACT WITH RAIDERS NEAR BARAMULA

MORE REINFORCEMENTS BEING DISPATCHED

Indian Army troops came in contact yesterday afternoon with the invading raiders at a point near Baramula, according to information received in New Delhi.

In response to the appeal made by Maharaja of Kashmir detachments of Indian troops left Delhi by plane early yesterday morning and arrived at Srinagar shortly after 9 a.m. Besides R.I.A.F. transports, a number of civil aircraft were commandeered to fly men and ammunition for the protection of Srinagar. The whole movement of troops was undertaken at short notice and the first squadron

SHEIKH ABDULLA TO FORM INTERIM GOVT.

UNION TROOPS RUSHED FOR PROTECTION OF STATE

(By Our Special Representative)

NEW DELHI, Monday.—In view of grave emergency the Maharaja of Kashmir has acceded to the Indian Dominion. In a letter to Lord Mountbatten he declares that "the other alternative is to leave my State and my people to freebooters." He adds: "This alternative I will never allow to happen so long as I am the Ruler of the State and I have life to defend my country."

The Maharaja has also stated that he has decided to invite

साभार हिंदुस्तान टाइम्स

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला (1905-1982) : जम्मू एवं कश्मीर के नेता; जम्मू-कश्मीर की स्वायत्तता एवं धर्मनिरपेक्षता के समर्थक; राजशाही के खिलाफ़ जन आंदोलन का नेतृत्व; धर्मनिरपेक्षता के आधार पर पाकिस्तान का विरोध; नेशनल कांफ्रेंस के नेता; भारत में विलय के बाद जम्मू-कश्मीर के प्रधानमंत्री (1947); भारत सरकार द्वारा बर्खास्तगी और कारावास (1953-1964); पुन: कारावास (1965-1968); 1974 में इंदिरा गाँधी के साथ समझौता, राज्य के मुख्यमंत्री पद पर आरूढ़।

परंतु चूँकि पाकिस्तान ने राज्य के एक बड़े हिस्से पर नियंत्रण जारी रखा, इसलिए मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाया गया, जिसने दिनांक 21 अप्रैल, 1948 के अपने प्रस्ताव में मामले को निपटाने के लिए एक तीन चरणों वाली प्रक्रिया की अनुशंसा की। पहला पाकिस्तान को अपने वे सारे नागरिक वापस बुलाने थे, जो कश्मीर में घुस गए थे। दूसरा, भारत को धीरे धीरे अपनी फौज कम करनी थी ताकि कानून व्यवस्था बनी रहे। तीसरा, एक स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से जनमत संग्रह कराया जाना था। परंतु, इस प्रस्ताव के अंतर्गत कोई प्रगति न हो सकी। इसी बीच मार्च 1948 में शेख अब्दुल्ला जम्मू और कश्मीर के प्रधानमंत्री बन गए जबकि भारत अनुच्छेद 370 के अंतर्गत उसे अस्थाई स्वायत्तता देने के लिए सहमत हो गया। उस समय राज्य में सरकार का मुखिया प्रधानमंत्री कहलाता था।

बाहरी और आंतरिक झगड़े

तब से जम्मू और कश्मीर की राजनीति बाहरी और आंतरिक दोनों कारणों से विवादास्पद और द्वंद्व-पूर्ण बनी रही। बाहर से पाकिस्तान ने सदा दावा किया कि कश्मीर घाटी पाकिस्तान का हिस्सा होना चाहिए। जैसा हमने ऊपर जाना, पाकिस्तान ने 1947 में राज्य में कबायली हमला करवाया, जिसके

परिणामस्वरूप राज्य का एक हिस्सा पाकिस्तानी नियंत्रण में आ गया। हालाँकि यह पाकिस्तान अधिकृत जम्मू-कश्मीर (पी.ओ.जे.के) भारतीय क्षेत्र है, जिस पर पाकिस्तान का अवैध कब्जा है। 1947 से कश्मीर का मामला भारत और पाकिस्तान के बीच द्वंद्व का प्रमुख मुद्दा बना रहा।

आंतरिक रूप से भारतीय संघ में कश्मीर के दर्जे के बारे में विवाद है। आपने गत वर्ष भारत का संविधान : सिद्धान्त और व्यवहार में अनुच्छेदों 370 और 371 के अंतर्गत विशेष प्रावधानों के बारे में पढ़ा है। इस विशेष दर्जे ने दो विपरीत प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया। जम्मू और कश्मीर के बाहर लोगों का एक वर्ग है जो विश्वास करता था कि अनुच्छेद 370 द्वारा प्रदत्त राज्य का विशेष दर्जा राज्य को भारत से पूर्ण रूप से एकीकृत नहीं होने देता है। इस वर्ग को लगा कि अनुच्छेद 370 को रद्द कर देना चाहिए और जम्मू और कश्मीर को भारत के किसी भी अन्य राज्य की तरह माना जाना चाहिए।

दूसरे वर्ग, अधिकांश कश्मीरियों, का मानना है कि अनुच्छेद 370 द्वारा प्रदत्त स्वायत्तता पर्याप्त नहीं है। उनकी कम से कम तीन मुख्य शिकायतें थीं। पहली यह कि कबायली हमले से उत्पन्न परिस्थिति के सामान्य होने पर विलय मामला राज्य के लोगों को विचार करने के लिए देने का वायदा अभी तक पूरा नहीं हुआ है। इससे 'जनमत-संग्रह' की माँग उठी। दूसरे, यह अनुभव किया जा रहा था कि अनुच्छेद 370 द्वारा दिया गया विशेष संघीय दर्जा व्यवहारिक रूप से कम कर दिया गया है। इससे स्वायत्तता को बहाल करने या 'अधिक राज्य स्वायत्तता' की माँग उठी। तीसरी, यह अनुभव किया गया कि जिस प्रकार का लोकतन्त्र शेष भारत में है, वैसा जम्मू और कश्मीर राज्य में लागू नहीं किया गया है।

1948 से राजनीति

प्रधानमंत्री बनने के बाद, शेख अब्दुल्ला ने भूमि सुधार और अन्य नीतियाँ शुरू की जिनसे सामान्य जन को लाभ पहुँचा। परंतु कश्मीर के दर्जे पर उनकी स्थिति के विषय में उनके और केंद्र सरकार के बीच मतभेद

सिने-संसार

रोज़ा

इस तमिल फिल्म में एक नवोढ़ा पत्नी के दुख और साहस की कहानी बयान की गयी है। रोज़ा के पति का उग्रवादी अपहरण कर लेते हैं। वह खुफिया संदेशों को पढ़ने में माहिर है। उसे कश्मीर में तैनात किया गया है जहाँ उसका काम दुश्मन के खुफिया संदेशों को पढ़ना है। पति-पत्नी में जैसे ही दाम्पत्य का प्रेम बढ़ने लगता है वैसे ही पति का अपहरण हो जाता है। अपहरणकर्त्ताओं की माँग है कि रोज़ा के पति ऋषि को तभी छोड़ा जाएगा जब जेल में बंद उनके सरगना को छोड़ दिया जाए।

रोज़ा का संसार ढहने लगता है। वह अधिकारियों और राजनेताओं के दरवाज़े खटखटाते हुए दर-दर भटकती है। यह फिल्म भारत-पाकिस्तान विवाद की पृष्ठभूमि में बनी थी इस वजह से लोगों में यह बड़ी लोकप्रिय हुई। इस फिल्म को हिंदी सहित अन्य भाषाओं में भी रूपांतरित किया गया।

वर्ष : 1992
निर्देशक : मणिरत्नम्
पटकथा : मणिरत्नम्
अभिनय (हिंदी): मधु, अरविन्द स्वामी, पंकज कपूर, जनगराज।

© NCERT not to be republished

बढ़ता गया। उन्हें 1953 में पद्च्युत कर दिया गया और कई वर्षों तक कैद रखा गया। उनके बाद आए नेतृत्व को उतना लोकप्रिय समर्थन नहीं मिला और वह राज्य में शासन चला पाए जिसका मुख्य कारण केंद्र का समर्थन था। विभिन्न चुनावों में अनाचार और हेरफेर संबंधी गंभीर आरोप थे।

1953 और 1974 के बीच की अवधि में कांग्रेस पार्टी ने राज्य की नीतियों पर प्रभाव डाला। नेशनल कॉन्फ्रेंस (शेख अब्दुल्ला रहित) का एक धड़ा कांग्रेस के सक्रिय समर्थन के साथ कुछ समय तक सत्ता में रहा परंतु बाद में यह काँग्रेस में मिल गया। इस प्रकार काँग्रेस को राज्य पर सीधा नियंत्रण प्राप्त हुआ और परिवर्तन किए गए। इसी बीच शेख अब्दुल्ला और भारत सरकार के मध्य समझौते पर पहुँचने के लिए कई प्रयास हुए। 1965 में जम्मू और कश्मीर के संविधान के प्रावधान में एक परिवर्तन किया गया, जिसके अंतर्गत राज्य के प्रधानमंत्री का पदनाम बदलकर मुख्यमंत्री कर दिया गया। इसके अनुसार, भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के गुलाम मोहम्मद सादिक राज्य के पहले मुख्यमंत्री बने। 1974 में इंदिरा गाँधी का शेख अब्दुल्ला के साथ एक समझौता हुआ और वे राज्य के मुख्यमंत्री बन गए। उन्होंने नेशनल कॉन्फ्रेंस को पुनर्जीवित किया जिसने 1977 के विधान सभा चुनाव में बहुमत से जीत हासिल की। शेख अब्दुल्ला का 1982 में निधन हो गया और नेशनल कॉन्फ्रेंस का नेतृत्व उनके पुत्र फारूक अब्दुल्ला के पास चला गया, जो मुख्यमंत्री बने। परंतु जल्द ही उन्हें राज्यपाल द्वारा पदच्युत

The Times of India

Published simultaneously in Bombay, Delhi and Calcutta.

NO. 221. VOL. CXV. BOMBAY: MONDAY, AUGUST 10, 1953 2½ ANNAS

SHEIKH ABDULLAH ARRESTED

STRICT SECURITY ARRANGEMENTS

Permits Issued Invalidated

"The Times of India" News Service

NEW DELHI, August 9: Security arrangements for entry into Jammu and Kashmir by air and road have been tightened following the latest developments in the State. Permits issued till today have been invalidated on police instructions.

The Indian Airlines service flight to Jammu and Srinagar this morning was cancelled a few minutes before the scheduled time of departure. Intending passengers, including some journalists, were told at Safdarjang airport that the flight had been cancelled owing to bad weather.

Yuvraja Karan Singh

CHARGES OF CORRUPTION AND MALADMINISTRATION

Bakshi Ghulam Mohammed Sworn In As Prime Minister

POLICE OPEN FIRE ON VIOLENT DEMONSTRATORS

"The Times of India" News Service

SRINAGAR, August 9.

THE arrest of Sheikh Mohammad Abdullah, the 48-year-old Prime Minister of Kashmir, at his week-end retreat at Gulmarg today, followed swiftly upon his dramatic removal from office late last night by the Sadar-i-Riyasat as his Cabinet "had lost the confidence of the people."

The dismissed Prime Minister, who was taken into custody under the Public Security Act, was charged with disruptionism, corruption, nepotism, maladministration and establishing foreign contacts of a kind dangerous to the peace of the State.

The dismissal of Sheikh Abdullah was followed by the elevation of the Deputy Prime Minister, Bakshi Ghulam Mohammed, to the Premiership of the State. He was sworn in at 4-35 a.m. by the Sadar-i-Riyasat, with Pandit Girdharilal Dogra, one of the out-going Ministers of the dissolved Cabinet, as second Minister.

Bakshi G. Mohammed.

Sheikh Abdullah

On assumption of office the new Prime Minister said that he would announce the names of other members of his Cabinet in the next few days.

Mirza Afzal Baig, a close associate of Sheikh Abdullah and the Revenue Minister in his Cabinet, was also arrested on similar charges at Srinagar, with 30 other persons.

SOBER SATISFACTION IN DELHI

"Timely Action By The Sadar-i-Riyasat"

"The Times of India" News Service

NEW DELHI, August 9.

NEWS of the dismissal of Sheikh Abdullah by the Sadar-i-Riyasat of Kashmir broke here this morning with total unexpectedness.

It was obvious that events were moving to a climax, but the present finale was not anticipated as such an immediate possibility.

Grave Threat To Freedom

PREMIER'S CALL

Kashmir Faces Crisis

"The Times of India" News Service

SRINAGAR, August 9.

Bakshi Ghulam Mohammed, the new Premier of Kashmir, tonight called for unity in the State to avert the present crisis which, he said, threatened to open up "explosive possibilities for the future of the people of Jammu and Kashmir".

In his first broadcast from Radio Kashmir after taking over this morning, he accused some of his former colleagues of thinking in terms of an "independent State in Kashmir with the connivance and support of interested foreign Powers."

These forces and their foreign supporters should be foiled in time, he said.

THE "LION" IS ANGRY

"The Times of India" News Service

CALM U.S. RECEPTION TO H-BOMB CLAIM

Serious Consideration Of M. Malenkov's Speech

"U.P.A." and "The Times of India" News Service

NEW YORK, August 9.

THE United States reacted today with considered calm to Russia's claim that she had the hydrogen bomb.

The mood of serious consideration was in sharp contrast with the anxiety and alarm expressed just four years ago when former President Truman announced that Russia had the atom bomb.

In New York and Washington, American and U.N. diplomats studied Premier Malenkov's statement for hints on future Soviet moves.

There was widespread belief that M. Malenkov may be bidding for a stronger hand in the coming Korean political conference and in the Big-Four talks on Germany.

"Application Of Stalinist Line"

REACTIONS IN LONDON

"U.P.A." & "The Times of India" News Service

LONDON, August 9.

Observers here interpret the Russian Premier's speech yesterday as the

साभार: टाइम्स ऑफ इंडिया

कर दिया गया और नेशनल कॉन्फेरेंस से अलग हुआ एक गुट एक अल्प अवधि के लिए सत्ता में आया।

केंद्र सरकार के हस्तक्षेप से फारूक अब्दुल्ला की सरकार को पदच्युत करने पर कश्मीर में नाराजगी की भावना पैदा हुई। इंदिरा गाँधी और शेख अब्दुल्ला में हुए समझौते के बाद कश्मीरियों में लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं के प्रति जो विश्वास उत्पन्न हुआ था, उसे धक्का लगा।

यह भावना कि केन्द्र राज्य की राजनीति हस्तक्षेप कर रहा है, पुष्ट हुई जब 1986 में नेशनल कांफ्रेंस केंद्र में शासक दल काँग्रेस के साथ चुनावी गठबंधन करने को राजी हो गई।

सशस्त्र विद्रोह और उसके बाद

यह वो वातावरण था जिसमें 1987 के विधानसभा चुनाव सम्पन्न हुए। सरकारी परिणामों ने नेशनल कॉन्फेरेंस–काँग्रेस गठबंधन की भारी जीत दर्शाई और फारूक अब्दुल्ला मुख्यमंत्री के रूप में वापस लौटे। परंतु यह व्यापक रूप से माना जा रहा था कि परिणामों में लोकप्रिय चयन की झलक नहीं है, और सम्पूर्ण चुनाव प्रक्रिया में गड़बड़ी हुई थी। 1980 के दशक के प्रारम्भ से ही राज्य में अकुशल प्रशासन के विरुद्ध एक व्यापक नाराजगी चल रही थी। यह नाराजगी और अधिक बढ़ गई क्योंकि सामान्य रूप से विद्यमान भावना यह थी कि केंद्र के आदेश पर राज्य द्वारा लोकतान्त्रिक प्रक्रियाएँ कमजोर की जा रही हैं। इससे कश्मीर में राजनीतिक संकट उत्पन्न हुआ जो उग्रवाद के उठने से गहरा गया।

1989 तक, राज्य एक पृथक कश्मीरी राष्ट्र बनाने को लेकर एक उग्रवादी आंदोलन के कब्जे में आ गया। इन विद्रोहियों को पाकिस्तान से नैतिक, आर्थिक और फौजी समर्थन मिला। कई वर्षों तक राज्य, राष्ट्रपति शासन और प्रभावी रूप से सशत्र सेनाओं के नियंत्रण में रहा। 1990 से पूरा समय, जम्मू और कश्मीर ने विद्रोहियों के हाथों और सेना की कार्रवाई से असाधारण हिंसा को झेला। राज्य में 1996 में ही जाकर विधानसभा चुनाव हुए जिसमें फारूक अब्दुल्ला के नेतृत्व वाली नेशनल कॉन्फेरेंस जम्मू और कश्मीर के लिए क्षेत्रीय स्वायत्ता की माँग के साथ सत्ता में आई। अवधि के अंत में, 2002 में जम्मू और कश्मीर राज्य में चुनाव हुए। नेशनल कॉन्फेरेंस बहुमत प्राप्त करने में विफल रही और इसके स्थान पर पीपल्स डेमोक्रेटिक पार्टी (पीडीपी) और काँग्रेस की मिली–जुली सरकार आ गई।

2002 और इससे आगे

गठबंधन के समझौते के अनुसारए मुफ्ती मोहम्मद पहले तीन वर्ष सरकार के मुखिया रहे, जिनके बाद भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के गुलामनबी आज़ाद मुखिया बने जो जुलाई, 2008 में लागू राष्ट्रपति शासन के कारण अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पाए। उससे अगला चुनाव नवंबर–दिसंबर 2008 में हुआ। एक और मिली–जुली सरकार (नेशनल कॉन्फेरेंस और भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस से बनी) 2009 में उमर अब्दुल्ला के नेतृत्व में सत्ता में आई। परंतु, राज्य को लगातार हुर्रियत कॉन्फेरेंस द्वारा पैदा की गई गड़बड़ियों का सामना करना पड़ा। 2014 में, राज्य में फिर चुनाव हुए, जिसमें पिछले 25 वर्षों में सबसे अधिक मतदान होना रिकार्ड किया गया। परिणाम स्वरूप पीडीपी के मुफ्ती मोहम्मद सईद के नेतृत्व में बीजेपी के साथ एक मिली–जुली सरकार सत्ता में आई। मुफ्ती मोहम्मद सईद के निधन के बाद, उनकी बेटी महबूबा मुफ्ती

© NCERT not to be republished

अप्रैल, 2016 में राज्य की पहली महिला मुख्यमंत्री बनी। महबूबा मुफ्ती के कार्यकाल में बाहरी और भीतरी तनाव बढ़ाने वाली बड़ी आतंकवादी घटनाएँ हुईं। जून, 2018 में बीजेपी द्वारा मुफ्ती सरकार को दिया गया समर्थन वापस लेने के बाद राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। 5 अगस्त, 2019 को जम्मू और कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम 2019 द्वारा अनुच्छेद 370 समाप्त कर दिया गया और राज्य को पुनर्गठित कर दो केंद्र शासित प्रदेश—जम्मू और कश्मीर तथा लद्दाख बना दिए गए।

जम्मू और कश्मीर तथा लद्दाख भारत में बहुलवादी समाज के जीते-जागते उदाहरण हैं। वहाँ न केवल सभी प्रकार (धार्मिक, सांस्कृतिक, भाषाई, जातीय और जनजातीय) की विविधताएँ हैं बल्कि वहाँ विविध प्रकार की राजनीतिक और विकास की आकांक्षाएँ हैं, जिन्हें नवीनतम अधिनियम द्वारा प्राप्त करने की इच्छा की गई है।

पंजाब

1980 के दशक में पंजाब में भी बड़े बदलाव आए। इस प्रांत की सामाजिक बुनावट विभाजन के समय पहली बार बदली थी। बाद में इसके कुछ हिस्सों से हरियाणा और हिमाचल प्रदेश नामक राज्य बनाए गए। इससे भी पंजाब की सामाजिक संरचना बदली। हालाँकि 1950 के दशक में देश के शेष हिस्से को भाषायी आधार पर पुनर्गठित किया गया था लेकिन पंजाब को 1966 तक इंतज़ार करना पड़ा। इस साल पंजाबी-भाषी प्रांत का निर्माण हुआ। सिखों की राजनीतिक शाखा के रूप में 1920 के दशक में अकाली दल का गठन हुआ था। अकाली दल ने 'पंजाबी सूबा' के गठन का आंदोलन चलाया। पंजाबी-भाषी सूबे में सिख बहुसंख्यक हो गए।

राजनीतिक संदर्भ

पंजाब सूबे के पुनर्गठन के बाद अकाली दल ने यहाँ 1967 और इसके बाद 1977 में सरकार बनायी। दोनों ही मौके पर गठबंधन सरकार बनी। अकालियों के आगे यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि सूबे के नए सीमांकन के बावजूद उनकी राजनीतिक स्थिति डावांडोल है। पहली बात तो यही कि उनकी सरकार को केंद्र ने कार्यकाल पूरा करने से पहले बर्खास्त कर दिया था। दूसरे, अकाली दल को पंजाब के हिंदुओं के बीच कुछ खास समर्थन हासिल नहीं था। तीसरे, सिख समुदाय भी दूसरे धार्मिक समुदायों की तरह जाति और वर्ग के धरातल पर बँटा हुआ था। कांग्रेस को दलितों के बीच चाहे वे सिख हों या हिंदू—अकालियों से कहीं ज्यादा समर्थन प्राप्त था।

इन्हीं परिस्थितियों के मद्देनज़र 1970 के दशक में अकालियों के एक तबके ने पंजाब के लिए स्वायत्तता की माँग उठायी। 1973 में, आनंदपुर साहिब में हुए एक सम्मेलन में इस आशय का प्रस्ताव पारित हुआ। आनंदपुर साहिब प्रस्ताव में क्षेत्रीय स्वायत्तता की बात उठायी गई थी। प्रस्ताव की माँगों में केंद्र-राज्य संबंधों को पुनर्परिभाषित करने की बात भी शामिल थी। इस प्रस्ताव में सिख 'कौम' (नेशन या समुदाय) की आकांक्षाओं पर ज़ोर देते हुए सिखों के 'बोलबाला' (प्रभुत्व या वर्चस्व) का ऐलान किया गया। यह प्रस्ताव भारत में संघवाद को मजबूत करने की अपील करता है।

मास्टर तारा सिंह (1885-1967) : प्रमुख सिख धार्मिक एवं राजनीतिक नेता; शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी (एसजीपीसी) के शुरुआती नेताओं में से एक; अकाली आंदोलन के नेता; स्वतंत्रता आंदोलन के समर्थक लेकिन सिर्फ मुस्लिमों के साथ समझौते की कांग्रेस नीति के विरोधी; स्वतंत्रता के बाद अलग पंजाब राज्य के निर्माण के समर्थक।

© NCERT not to be republished

आनंदपुर साहिब प्रस्ताव का सिख जन-समुदाय पर बड़ा कम असर पड़ा। कुछ साल बाद जब 1980 में अकाली दल की सरकार बर्खास्त हो गई तो अकाली दल ने पंजाब तथा पड़ोसी राज्यों के बीच पानी के बँटवारे के मुद्दे पर एक आंदोलन चलाया। धार्मिक नेताओं के एक तबके ने स्वायत्त सिख पहचान की बात उठायी।

हिंसा का चक्र

जल्दी ही आंदोलन का नेतृत्व नरमपंथी अकालियों के हाथ से निकलकर चरमपंथी तत्त्वों के हाथ में चला गया और आंदोलन ने सशस्त्र विद्रोह का रूप ले लिया। उग्रवादियों ने अमृतसर स्थित सिखों के तीर्थ स्वर्णमंदिर में अपना मुख्यालय बनाया और स्वर्णमंदिर एक हथियारबंद किले में तब्दील हो गया। 1984 के जून माह में भारत सरकार ने 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' चलाया। यह स्वर्णमंदिर में की गई सैन्य कार्रवाई का कूट नाम था। इस सैन्य-अभियान में सरकार ने उग्रवादियों को तो सफ़लतापूर्वक मार भगाया लेकिन सैन्य कार्रवाई से ऐतिहासिक स्वर्णमंदिर को क्षति भी पहुँची। इससे सिखों की भावनाओं को गहरी चोट लगी। भारत और भारत से बाहर बसे अधिकतर सिखों ने सैन्य-अभियान को अपने धर्म-विश्वास पर हमला माना। इन बातों से उग्रवादी और चरमपंथी समूहों को और बल मिला।

कुछ और त्रासद घटनाओं ने पंजाब की समस्या को एक जटिल रास्ते पर ला खड़ा किया। प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की 31 अक्तूबर 1984 के दिन उनके आवास के बाहर उन्हीं के अंगरक्षकों ने हत्या कर दी। ये अंगरक्षक सिख थे और ऑपरेशन ब्लू स्टार का बदला लेना चाहते थे। एक तरफ पूरा देश इस घटना से शोक-संतप्त था तो दूसरी तरफ दिल्ली सहित उत्तर भारत के कई हिस्सों में सिख समुदाय के विरुद्ध हिंसा भड़क उठी। यह हिंसा कई हफ्तों तक जारी रही। दो हज़ार से ज्यादा की तादाद में सिख, दिल्ली में मारे गए। देश की राजधानी दिल्ली इस हिंसा से सबसे ज्यादा प्रभावित हुई थी। कानपुर, बोकारो और चास जैसे देश के कई जगहों पर सैकड़ों सिख मारे गए। कई सिख-परिवारों में कोई भी पुरुष न बचा। इन परिवारों को गहरा भावनात्मक आघात पहुँचा और आर्थिक हानि उठानी पड़ी। सिखों को सबसे ज्यादा दुख इस बात का था कि सरकार ने स्थिति को सामान्य बनाने के लिए बड़ी देर से कदम उठाए। साथ ही, हिंसा करने वाले लोगों को कारगर तरीके से दंड भी नहीं दिया गया। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने 2005 में संसद में अपने भाषण के दौरान इस रक्तपात पर अफसोस जताया और सिख-विरोधी हिंसा के लिए देश से माफी माँगी।

संत हरचंद सिंह लोंगोवाल (1932-1985) : सिखों के धार्मिक एवं राजनीतिक नेता; छठे दशक के दौरान राजनीतिक जीवन की शुरुआत अकाली नेता के रूप में; 1980 में अकाली दल के अध्यक्ष; अकालियों की प्रमुख माँगों को लेकर प्रधानमंत्री राजीव गाँधी से समझौता; अज्ञात सिख युवक द्वारा हत्या।

नईदुनिया

स्वर्ण मंदिर पर सेना का कब्जा : भिंडरांवाले का पता नहीं

लड़ाई में ५६ सैनिकों सहित ३२५ मरे, अकाल तख्त को क्षति

पंजाब के ३८ गुरुद्वारों, ५ मंदिरों व १ मस्जिद में एक साथ सेना का प्रवेश, सेना पर राकेट व मिसाइलों से प्रहार, लोंगोवाल व टोहरा सुरक्षित

चंडीगढ़ ६ जून (प्रे)। रात १ बजे प्राप्त समाचार के अनुसार सुरक्षा सेना ने स्वर्ण मंदिर परिसर को आतंकवादियों से पूरी तरह मुक्त करा लिया। लेफ्टिनेंट जनरल रणजीतसिंह दयाल ने बताया कि सारा सक्रिय विरोध समाप्त हो गया। हरमिंदर साहिब में छुपे २२ आतंकवादियों ने भी सफेद झंडे दिखाते हुए आत्म समर्पण कर दिया। इस बात की पुष्टि नहीं हो पाई कि इनमें भिंडरांवाले हैं या नहीं? वैसे वार्ता ने खबर दी है कि अकाल तख्त के तलघर में कुछ लोग छुपे हैं और वहां से गोलीबारी जारी है। अनुमान है कि भिंडरांवाला, सिख छात्र फेडरेशन के अध्यक्ष अमरीकसिंह और मेजर शुबेगसिंह भी इसी में छुपे हुए हैं। देर रात सुरक्षा बल तलघर में अश्रुगैस छोड़ने की कार्रवाई करेगा। इससे पूर्व मिली खबरों के अनुसार आतंकवादियों से स्वर्ण मंदिर को मुक्त कराने के लिए गत रात से ही सुरक्षा सेना ने जबर्दस्त कार्रवाई शुरू कर दी थी। इस प्रयास में कम से कम ३०८ लोग मारे गए, जिनमें सुरक्षा सेना के ५१ जवान भी हैं। स्वर्ण मंदिर से कुल ४५० आतंकवादी पकड़े गए। सेना की कार्रवाई से अकाल तख्त का कुछ हिस्सा क्षतिग्रस्त [illegible] को पकड़ा और भारी मात्रा में हथियार व गोला-

साभार: नई दुनिया

शांति की ओर

1984 के चुनावों के बाद सत्ता में आने पर नए प्रधानमंत्री

© NCERT not to be republished

ARMY CONTROLS TEMPLE

250 terrorists and 59 jawans killed

Last bastion of resistance crumbles; 700 arrested

Jammu seals border

Bhindranwale not among the dead

THE TIMES OF INDIA

BOMBAY: THURSDAY, JUNE 7, 1984

24 PAGES

SURRENDER AT GOLDEN TEMPLE

No damage caused to Harmandir Sahib

58 armymen and 250 terrorists killed

CHANDIGARH, June 6 (PTI).

SECURITY forces tonight completed their task of flushing out terrorists from the Golden Temple complex.

साभार : रघुराय

इंदिरा गांधी की हत्या के विषय पर बने एक दीवार-चित्र को यहाँ महिलाएँ देख रही हैं।

''इस बात के साक्ष्य मिले हैं कि 31-10-84 को या तो बैठकें हुई अथवा हमलावरों से संपर्क साधा गया और उनसे सिखों को जान से मारने तथा उनके घरों और दुकानों को लूटने के लिए कहा गया। बड़े व्यवस्थित तरीके से हमले हुए और हमलावरों को पुलिस का भी ज्यादा भय नहीं था। इससे जान पड़ता है मानो इन्हें आश्वासन दिया गया हो कि इन कामों को अंजाम देते समय या उसके बाद भी इन्हें कोई नुकसान नहीं पहुँचाया जाएगा।''

न्यायमूर्ति नानावती जाँच आयोग, रिपोर्ट, खंड-**I**, 2005

राजीव गाँधी ने नरमपंथी अकाली नेताओं से बातचीत की शुरुआत की। अकाली दल के तत्कालीन अध्यक्ष हरचंद सिंह लोगोंवाल के साथ 1985 के जुलाई में एक समझौता हुआ। इस समझौते को राजीव गाँधी लोंगोवाल समझौता अथवा पंजाब समझौता कहा जाता है। समझौता पंजाब में अमन कायम करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। इस बात पर सहमति हुई कि चंडीगढ़ पंजाब को दे दिया जाएगा और पंजाब तथा हरियाणा के बीच सीमा-विवाद को सुलझाने के लिए एक अलग आयोग की नियुक्ति होगी। समझौते में यह भी तय हुआ कि पंजाब-हरियाणा-राजस्थान के बीच रावी-व्यास के पानी के बँटवारे के बारे में फ़ैसला करने के लिए एक ट्रिब्यूनल (न्यायाधिकरण) बैठाया जाएगा। समझौते के अंतर्गत सरकार पंजाब में उग्रवाद

© NCERT not to be republished

Special Edition

THE TIMES OF INDIA

INDIRA GANDHI SHOT AT

CONDITION CRITICAL

Two shot dead

Blood transfusion

MRS. INDIRA GANDHI

साभार: टाइम्स ऑफ इंडिया

इंदिरा गाँधी की हत्या के दिन टाइम्स ऑफ इंडिया ने अखबार का एक विशेष अपराह्न संस्करण प्रकाशित किया।

से प्रभावित लोगों को मुआवजा देने और उनके साथ बेहतर सलूक करने पर राजी हुई। साथ ही, पंजाब से विशेष सुरक्षा बल अधिनियम को वापस लेने की बात पर भी सहमति हुई।

बहरहाल, पंजाब में न तो अमन आसानी से कायम हुआ और न ही समझौते के तत्काल बाद। हिंसा का चक्र लगभग एक दशक तक चलता रहा। उग्रवादी हिंसा और इस हिंसा को दबाने के लिए की गई कार्रवाइयों में मानवाधिकार का व्यापक उल्लंघन हुआ। साथ ही, पुलिस की ओर से भी ज्यादती हुई। राजनीतिक रूप से देखें तो घटनाओं के इस चक्र में अकाली दल बिखर गया। केंद्र सरकार को राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करना पड़ा। इससे राज्य में सामान्य राजनीतिक तथा चुनावी प्रक्रिया बाधित हुई। संशय और हिंसा से भरे माहौल में राजनीतिक प्रक्रिया को फिर से पटरी पर लाना आसान नहीं था। 1992 में पंजाब में चुनाव हुए तो महज 24 फीसदी मतदाता वोट डालने के लिए आए।

उग्रवाद को सुरक्षा बलों ने आखिरकार दबा दिया लेकिन पंजाब के लोगों ने, चाहे वे सिख हों या हिंदू, इस क्रम में अनगिनत दुख उठाए। 1990 के दशक के मध्यवर्ती वर्षों में पंजाब में शांति बहाल हुई। 1997 में अकाली दल (बादल) और भाजपा के गठबंधन को बड़ी विजय मिली। उग्रवाद के खात्मे के बाद के दौर में यह पंजाब का पहला चुनाव था। राज्य में एक बार फिर आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के सवाल प्रमुख हो उठे। हालाँकि धार्मिक पहचान यहाँ की जनता के लिए लगातार प्रमुख बनी हुई है लेकिन राजनीति अब धर्मनिरपेक्षता की राह पर चल पड़ी है।

पूर्वोत्तर

पूर्वोत्तर में क्षेत्रीय आकांक्षाएँ 1980 के दशक में एक निर्णायक मोड़ पर आ गई थीं। क्षेत्र में आठ राज्य हैं, अरुणाचल प्रदेश, असम, नागालैंड, मणिपुर, त्रिपुरा, मिजोरम और मेघालय, जो पहले उत्तर-पूर्व क्षेत्र का गठन करते थे, उन्हें अक्सर ''सात बहनें'' कहा जाता है। सिक्किम, जिसे सूची में जोड़ा गया है, को उन सात राज्यों का 'भाई' कहा जाता है। इस क्षेत्र में देश की कुल 4 फीसदी आबादी निवास करती है। लेकिन भारत के कुल क्षेत्रफल में पूर्वोत्तर के हिस्से को देखते हुए यह आबादी दोगुनी कही जाएगी। 22 किलोमीटर लंबी एक पतली-सी राहदारी इस इलाके को शेष भारत से जोड़ती है अन्यथा इस क्षेत्र की सीमाएँ चीन, म्यांमार और बांग्लादेश से लगती हैं और यह इलाका भारत के लिए एक तरह से दक्षिण-पूर्व एशिया का प्रवेश-द्वार है।

''सिख समुदाय से ही नहीं पूरे भारत राष्ट्र से माफी माँगने में मुझे कोई संकोच नहीं क्योंकि 1984 में जो कुछ हुआ वह राष्ट्र की अवधारणा तथा संविधान के लिखे का नकार था। इसलिए, मैं यहाँ किसी झूठी प्रतिष्ठा को लेकर नहीं खड़ा हूँ। अपनी सरकार की तरफ़ से, इस देश की समूची जनता की तरफ़ से मैं अपना सिर शर्म से झुकाता हूँ कि ऐसा हादसा पेश आया। लेकिन, मान्यवर, राष्ट्र के जीवन में ऐसी घड़ियाँ आती हैं। अतीत हमारे साथ होता है। हम अतीत को दोबारा नहीं लिख सकते। लेकिन, मनुष्य के रूप में हमारे पास वह इच्छाशक्ति और क्षमता है कि हम अपने लिए एक बेहतर भविष्य का निर्माण कर सकें।''

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह
11 अगस्त, 2005 को राज्यसभा की बहस में हिस्सा लेते हुए।

© NCERT not to be republished

इस इलाके में 1947 के बाद से अनेक बदलाव आए हैं। त्रिपुरा, मणिपुर और मेघालय का खासी पहाड़ी क्षेत्र, पहले अलग-अलग रियासत थे। आज़ादी के बाद भारत संघ में इनका विलय हुआ। पूर्वोत्तर के पूरे इलाके का बड़े व्यापक स्तर पर राजनीतिक पुनर्गठन हुआ है। नगालैंड को 1963 में राज्य बनाया गया। मणिपुर, त्रिपुरा और मेघालय 1972 में राज्य बने जबकि मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश को 1987 में राज्य का दर्ज़ा दिया गया। 1947 के भारत-विभाजन से पूर्वोत्तर के इलाके भारत के शेष भागों से एकदम अलग-थलग पड़ गए और इसका अर्थव्यवस्था पर इससे दुष्प्रभाव पड़ा। भारत के शेष भागों से अलग-थलग पड़ जाने के कारण इस इलाके में विकास पर ध्यान नहीं दिया जा सका। यहाँ की राजनीति भी अपने ही दायरे में सीमित रही। इसके साथ-साथ पड़ोसी राज्यों और देशों से आने वाले शरणार्थियों के कारण इलाके की जनसंख्या की संरचना में बड़ा बदलाव आया।

पूर्वोत्तर का अलग-थलग पड़ जाना, इस इलाके की जटिल सामाजिक संरचना और देश के अन्य हिस्सों के मुकाबले इस इलाके का आर्थिक रूप से पिछड़ा होना, जैसी कई बातों ने एक साथ मिलकर एक जटिल स्थिति पैदा की। ऐसे में पूर्वोत्तर के राज्यों से बड़ी बेतरतीब किस्म की माँगें उठीं। इस इलाके में भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा काफी बड़ी है लेकिन पूर्वोत्तर और भारत के शेष भागों के बीच संचार-व्यवस्था बड़ी लचर है। इससे भी पूर्वोत्तर की राजनीति का स्वभाव ज्यादा संवेदनशील रहा। पूर्वोत्तर के राज्यों में राजनीति पर तीन मुद्दे हावी हैं: स्वायत्तता की माँग, अलगाव के आंदोलन और 'बाहरी' लोगों का विरोध। इसमें पहले मुद्दे यानी स्वायत्तता की माँग पर 1970 के दशक में कुछ शुरुआती पहल की गई थी। इससे शेष दो मुद्दों ने 1980 के दशक में नाटकीय मोड़ लिया।

स्वायत्तता की माँग

आजादी के वक्त मणिपुर और त्रिपुरा को छोड़ दें तो यह पूरा इलाका असम कहलाता था। गैर-असमी लोगों को जब लगा कि असम की सरकार उन पर असमी भाषा थोप रही है तो इस इलाके से राजनीतिक स्वायत्तता की माँग उठी। पूरे राज्य में असमी भाषा को लादने के खिलाफ विरोध प्रदर्शन और दंगे हुए। बड़े जनजाति समुदाय के नेता असम से अलग होना चाहते थे। इन लोगों ने 'ईस्टर्न इंडिया ट्राइबल यूनियन' का गठन किया जो 1960 में कहीं ज्यादा व्यापक 'ऑल पार्टी हिल्स कांफ्रेंस' में तब्दील हो गया। इन नेताओं की माँग थी कि असम से अलग एक जनजातीय राज्य बनाया जाए। आखिरकार एक जनजातीय राज्य की जगह असम को काटकर कई जनजातीय राज्य बने। केंद्र सरकार ने अलग-थलग वक्त पर असम को बाँटकर मेघालय, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश बनाया। त्रिपुरा और मणिपुर को भी राज्य का दर्जा दिया गया।

1972 तक पूर्वोत्तर का पुनर्गठन पूरा हो चुका था। लेकिन, स्वायत्तता की माँग खत्म न हुई। उदाहरण के लिए, असम के बोडो, करबी और दिमसा जैसे समुदायों ने अपने लिए अलग राज्य की माँग की। अपनी माँग के पक्ष में उन्होंने जनमत तैयार करने के प्रयास किए,

नोट: यह नक्शा कोई पैमाने के हिसाब से बनाया गया भारत का मानचित्र नहीं है। इसमें दिखाई गई भारत की अंतरराष्ट्रीय सीमा रेखा को प्रामाणिक सीमा रेखा न माना जाए।

© NCERT not to be republished

जन आंदोलन चलाए और विद्रोही कार्रवाइयाँ भी कीं। कई दफ़ा ऐसा भी हुआ कि एक ही इलाके पर एक से ज्यादा समुदायों ने अपनी दावेदारी जतायी। छोटे-छोटे और निरंतर लघुतर होते राज्य बनाते चले जाना संभव नहीं था।

इस वजह से संघीय राजव्यवस्था के कुछ और प्रावधानों का उपयोग करके स्वायत्तता की माँग को संतुष्ट करने की कोशिश की गई और इन समुदायों को असम में ही रखा गया। करबी और दिमसा समुदायों को जिला-परिषद् के अंतर्गत स्वायत्तता दी गई जबकि बोडो जनजाति को हाल ही में स्वायत्त परिषद् का दर्जा दिया गया है।

मेरी दोस्त चोन कहती है कि दिल्ली के लोग यूरोप के नक्शे के बारे में ज्यादा जानते हैं और अपने देश के पूर्वोत्तर के हिस्से के बारे में कम। अपने सहपाठियों को देखकर तो यही लगता है कि उसकी बात एक हद तक सही है।

अलगाववादी आंदोलन

स्वायत्तता की माँगों से निपटना आसान था क्योंकि संविधान में विभिन्नताओं का समाहार संघ में करने के लिए प्रावधान पहले से मौजूद थे। लेकिन जब कुछ समूहों ने अलग देश बनाने की माँग की और वह भी किसी क्षणिक आवेश में नहीं बल्कि सिद्धांतगत तैयारी के साथ, तो इस माँग से निपटना मुश्किल हो गया। देश के नेतृत्व को पूर्वोत्तर के दो राज्यों में अलगाववादी माँग का लंबे समय तक सामना करना पड़ा। इन दो मामलों की आपसी तुलना हमें लोकतांत्रिक राजनीति के कुछ सबक सिखाती है।

आज़ादी के बाद मिजो पर्वतीय क्षेत्र को असम के भीतर ही एक स्वायत्त जिला बना दिया गया था। कुछ मिजो लोगों का मानना था कि वे कभी भी 'ब्रिटिश इंडिया' के अंग नहीं रहे इसलिए भारत संघ से उनका कोई नाता नहीं है। 1959 में मिजो पर्वतीय इलाके में भारी अकाल पड़ा। असम की सरकार इस अकाल में समुचित प्रबंध करने में नाकाम रही। इसी के बाद अलगाववादी आंदोलन को जनसमर्थन मिलना शुरू हुआ। मिजो लोगों ने गुस्से में आकर लालडेंगा के नेतृत्व में मिजो नेशनल फ्रंट बनाया।

1966 में मिजो नेशनल फ्रंट ने आज़ादी की माँग करते हुए सशस्त्र अभियान शुरू किया। इस तरह भारतीय सेना और मिजो विद्रोहियों के बीच दो दशक तक चली लड़ाई की शुरुआत हुई। मिजो नेशनल फ्रंट ने गुरिल्ला युद्ध किया। उसे पाकिस्तान की सरकार ने समर्थन दिया था और तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान में मिजो विद्रोहियों ने अपने ठिकाने बनाए। भारतीय सेना ने विद्रोही गतिविधियों को दबाने के लिए जवाबी कार्रवाई की। इसमें आम जनता को भी कष्ट उठाने पड़े। एक दफ़े तो वायुसेना तक का इस्तेमाल किया गया। सेना के इन कदमों से स्थानीय लोगों में क्रोध और अलगाव की भावना और तेज हुई।

दो दशकों तक चले बगावत में हर पक्ष को हानि उठानी पड़ी। इसी बात को भाँपकर दोनों पक्षों के नेतृत्व ने समझदारी से काम लिया। पाकिस्तान में निर्वासित जीवन जी रहे लालडेंगा भारत आए और उन्होंने भारत सरकार के साथ बातचीत शुरू की। राजीव गाँधी ने इस बातचीत को एक सकारात्मक समाधान तक पहुँचाया। 1986 में राजीव गाँधी और लालडेंगा के बीच एक शांति समझौता हुआ। समझौते के अंतर्गत मिजोरम को पूर्ण राज्य का दर्जा मिला और उसे कुछ विशेष अधिकार दिए गए। मिजो नेशनल फ्रंट अलगाववादी संघर्ष की राह छोड़ने पर राजी हो गया। लालडेंगा मुख्यमंत्री बने। यह समझौता मिजोरम के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ। आज मिजोरम पूर्वोत्तर का सबसे शांतिपूर्ण राज्य है और उसने कला, साहित्य तथा विकास की दिशा में अच्छी प्रगति की है।

लालडेंगा
(1937-1990) : मिजो नेशनल फ्रंट के संस्थापक और नेता: 1959 के अकाल के बाद विद्रोही बन गए: भारत के खिलाफ़ दो दशक तक सशस्त्र संघर्ष का नेतृत्व; 1986 में प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के साथ सुलह और एक समझौते पर हस्ताक्षर किए; नव-निर्मित मिजोरम के मुख्यमंत्री बने।

साभार: द टाइम्स ऑफ इंडिया

नगालैंड की कहानी भी मिजोरम की तरह है लेकिन नगालैंड का अलगावादी आंदोलन ज्यादा पुराना है और अभी इसका मिजोरम की तरह खुशगवार हल नहीं निकल पाया है। अंगमी जापू फ़िज़ो के नेतृत्व में नगा लोगों के एक तबके ने 1951 में अपने को भारत से आज़ाद घोषित कर दिया था। फ़िज़ो ने बातचीत के कई प्रस्ताव ठुकराए। हिंसक विद्रोह के एक दौर के बाद नगा लोगों के एक तबके ने भारत सरकार के साथ एक समझौते पर दस्तखत किए लेकिन अन्य विद्रोहियों ने इस समझौते को नहीं माना। नगालैंड की समस्या का समाधान होना अब भी बाकी है।

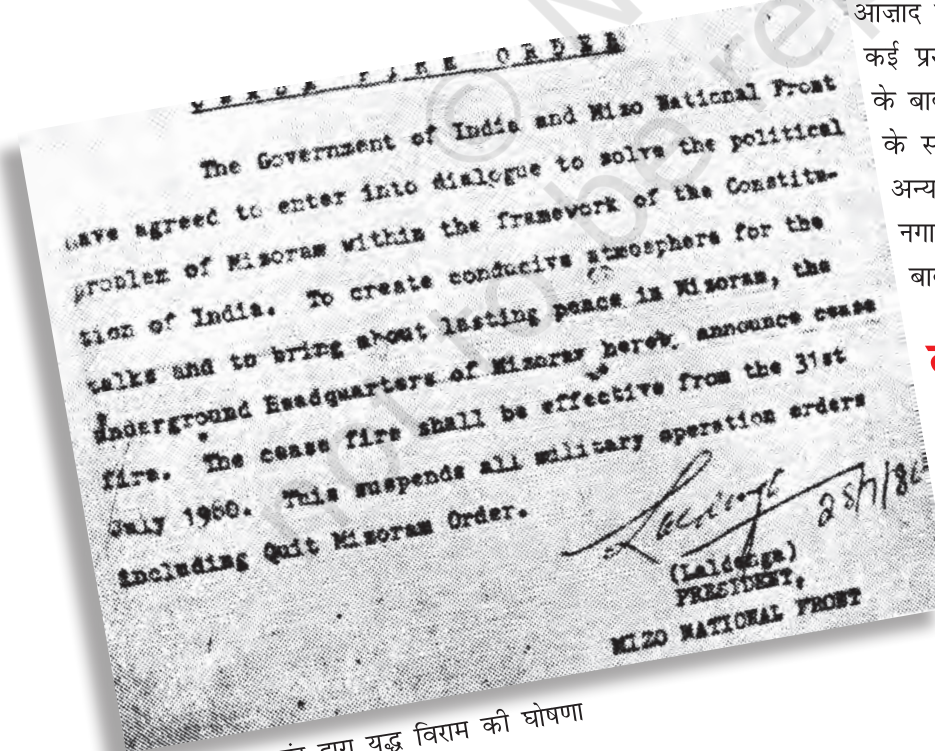
CEASE FIRE ORDER

The Government of India and Mizo National Front have agreed to enter into dialogue to solve the political problem of Mizoram within the framework of the Constitution of India. To create conducive atmosphere for the talks and to bring about lasting peace in Mizoram, the Underground Headquarters of Mizoram hereby announce cease fire. The cease fire shall be effective from the 31st July 1980. This suspends all military operation orders including Quit Mizoram Order.

(Laldenga)
PRESIDENT,
MIZO NATIONAL FRONT

मिजो नेशनल फ्रंट द्वारा युद्ध विराम की घोषणा

बाहरी लोगों के खिलाफ़ आंदोलन

पूर्वोत्तर में बड़े पैमाने पर आप्रवासी आए हैं। इससे एक खास समस्या पैदा हुई है। स्थानीय जनता इन्हें 'बाहरी' समझती है और 'बाहरी' लोगों के खिलाफ़ उसके मन में गुस्सा है। भारत के दूसरे राज्यों अथवा किसी अन्य देश से

आए लोगों को यहाँ की जनता रोजगार के अवसरों और राजनीतिक सत्ता के एतबार से एक प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखती है। स्थानीय लोग बाहर से आए लोगों के बारे में मानते हैं कि ये लोग यहाँ की जमीन हथिया रहे हैं। पूर्वोत्तर के कई राज्यों में इस मसले ने राजनीतिक रंग ले लिया है और कभी-कभी इन बातों के कारण हिंसक घटनाएँ भी होती हैं।

1979 से 1985 तक चला असम आंदोलन बाहरी लोगों के खिलाफ़ चले आंदोलनों का सबसे अच्छा उदाहरण है। असमी लोगों को संदेह था कि बांग्लादेश से आकर बहुत-सी मुस्लिम आबादी असम में बसी हुई है। लोगों के मन में यह भावना घर कर गई थी कि इन विदेशी लोगों को पहचानकर उन्हें अपने देश नहीं भेजा गया तो स्थानीय असमी जनता अल्पसंख्यक हो जाएगी। कुछ आर्थिक मसले भी थे। असम में तेल, चाय और कोयले जैसे प्राकृतिक संसाधनों की मौजूदगी के बावजूद व्यापक गरीबी थी। यहाँ की जनता ने माना कि असम के प्राकृतिक संसाधन बाहर भेजे जा रहे हैं और असमी लोगों को कोई फ़ायदा नहीं हो रहा है।

1979 में ऑल असम स्टूडेंटस् यूनियन (आसू-**AASU**) ने विदेशियों के विरोध में एक आंदोलन चलाया। 'आसू' एक छात्र-संगठन था और इसका जुड़ाव किसी भी राजनीतिक दल से नहीं था। 'आसू' का आंदोलन अवैध आप्रवासी, बंगाली और अन्य लोगों के दबदबे तथा मतदाता सूची में लाखों आप्रवासियों के नाम दर्ज कर लेने के खिलाफ़ था। आंदोलन की माँग थी कि 1951 के बाद जितने भी लोग असम में आकर बसे हैं उन्हें असम से बाहर भेजा जाए। इस आंदोलन ने कई नए तरीकों को आजमाया और असमी जनता के हर तबके का समर्थन हासिल किया। इस आंदोलन को पूरे असम में समर्थन मिला। आंदोलन के दौरान हिंसक और त्रासद घटनाएँ भी हुईं। बहुत-से लोगों को जान गंवानी पड़ी और धन-संपत्ति का नुकसान हुआ। आंदोलन के दौरान रेलगाड़ियों की आवाजाही तथा बिहार स्थित बरौनी तेलशोधक कारखाने को तेल-आपूर्ति रोकने की भी कोशिश की गई।

छह साल की सतत अस्थिरता के बाद राजीव गाँधी के नेतृत्व वाली सरकार ने 'आसू' के नेताओं से बातचीत शुरू की। इसके परिणामस्वरूप 1985 में एक समझौता हुआ। समझौते के अंतर्गत तय किया गया कि जो लोग बांग्लादेश-युद्ध के दौरान अथवा उसके बाद के सालों में असम आए हैं, उनकी पहचान की जाएगी और उन्हें वापस भेजा जाएगा। आंदोलन की कामयाबी के बाद 'आसू' और असम गण संग्राम परिषद् ने साथ मिलकर अपने को एक क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टी के रूप में संगठित किया। इस पार्टी का नाम 'असम गण परिषद्' रखा गया। असम गण परिषद् 1985 में इस वायदे के साथ सत्ता में आई थी कि विदेशी लोगों की समस्या को सुलझा लिया जाएगा और एक 'स्वर्णिम असम' का निर्माण किया जाएगा।

असम-समझौते से शांति कायम हुई और प्रदेश की राजनीति का चेहरा भी बदला लेकिन 'आप्रवास' की समस्या का समाधान नहीं हो पाया। 'बाहरी' का मसला अब भी असम और पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों की, राजनीति में एक जीवंत मसला है। यह समस्या त्रिपुरा में ज्यादा गंभीर है क्योंकि यहाँ के मूल निवासी खुद अपने ही प्रदेश में अल्पसंख्यक बन गए हैं। मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश के लोगों में भी इसी भय के कारण चकमा शरणार्थियों को लेकर गुस्सा है।

अंगमी जापू फिज़ो (1904-1990) : नगालैंड की आज़ादी के आंदोलन के नेता; नगा नेशनल काउंसिल के अध्यक्ष; भारत सरकार के खिलाफ़ सशस्त्र संघर्ष की शुरुआत की; 'भूमिगत' हुए; पाकिस्तान में शरण ली; जीवन के अंतिम तीन दशक ब्रिटेन में गुजारे।

© NCERT not to be republished

समाहार और राष्ट्रीय अखंडता

इन मामलों से पता चलता है कि आज़ादी के पचहत्तर साल बाद भी राष्ट्रीय अखंडता के कुछ मसलों का समाधान पूरी तरह से नहीं हो पाया है। हमने देखा कि क्षेत्रीय आकांक्षाएँ लगातार एक न एक रूप में उभरती

नईदुनिया

असम समझौता : उल्लेखनीय उपलब्धि

असम के बारे में केंद्र सरकार तथा असम के छात्र संगठनों के बीच पंद्रह तारीख को तड़के हुए समझौते से असम का छः वर्ष पुराना आंदोलन समाप्त हो गया है। असम के विभिन्न छात्र संगठनों द्वारा संचालित सरकार विरोधी आंदोलन के दौरान साढ़े तीन हजार से अधिक जानें गईं और अरबों रुपयों की आर्थिक हानि हुई। बारह अप्रैल १९८० को जब तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी गुआहाटी गई थीं तो छात्र नेता १९६७ को आधार वर्ष मानकर विदेशी नागरिकों की समस्या के समाधान के तैयार हो गए थे। पर प्रधानमंत्री तब १९७१ को आधार वर्ष माने जाने पर अड़ी रहीं। फलस्वरूप सरकार तथा छात्र संगठनों के बीच बातचीत टूट गई। श्रीमती गांधी ने असम समस्या को सुलझाने के लिए चार गृहमंत्रियों– (जैलसिंह, श्री आर. वेंकटरमन, श्री प्रकाशचंद सेठी तथा श्री नरसिंहराव) की सेवाओं का उपयोग किया। किंतु, अविश्वास और कठोर पैंतरों का जो वातावरण बना था, वह ऐसा नहीं था कि कोई समझौता हो पाता।

श्री राजीव गांधी के काम करने की शैली इस अर्थ में नई है कि वह सहज ही विपक्षी दल का विश्वास जीत लेती है। श्री गांधी रियायतें देने को तैयार रहते हैं, जिसके फलस्वरूप सामने वाला पक्ष भी रियायत देकर समझौता करने को तैयार हो जाता है। केंद्र सरकार के गृह सचिव श्री आर. डी. प्रधान ने असम के छात्र नेताओं के साथ बुनियादी बातचीत कर सहमति का आधार तैयार किया। गृहमंत्री श्री एस. बी. चव्हाण ने अंतिम दौर में बातचीत में भाग लिया। कुछ रुकावटों के बाद प्रधानमंत्री राजीव गांधी के हस्तक्षेप से छात्रों को समझौते के लिए राजी किया जा सका और दस सूत्री समझौते पर हस्ताक्षर हो गए।

समझौते को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि बुनियादी मामलों में केंद्र सरकार तथा छात्र संगठनों, "आसू" तथा "अखिल असम गण संग्राम परिषद्" के नेताओं, दोनों ने एक-दूसरे को उल्लेखनीय रियायतें दी हैं। इसलिए यह मानने का कोई आधार नहीं है कि पंद्रह अगस्त का असम समझौता किसी पक्ष विशेष की जीत या किसी पक्ष विशेष की हार है। असम समझौता एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उपलब्धि है, जिसका श्रेय भारत के युवा प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी को जाता है। असम के दोनों छात्र संगठनों के नेता भी बधाई के पात्र हैं कि गहरे विवेक और सौहार्द का परिचय देकर वे अपना छः वर्ष पुराना आंदोलन समाप्त करने को राजी हो गए हैं। प्रधानमंत्री की कीर्ति में असम समझौते ने एक और चांद जोड़ दिया है। अभी २४ जुलाई को ही उन्होंने पंजाब की खतरनाक रूप से

दिन बाद ही अनंत त्रासदी के नाम से पुकारी जाने वाली असम की समस्या का समाधान खोजकर श्री राजीव गांधी ने अपूर्व समाधानकर्ता का विशेषण अर्जित कर लिया है।

समझौते के अनुसार विदेशी नागरिकों की पहचान करने के लिए १ जनवरी १९६६ को आधार वर्ष माना गया है। इस तिथि के पहले आए विदेशियों को नियमसम्मत मान लिया जाएगा। एक अनुमान के अनुसार १९६१ और १९६५ के बीच ही लगभग पांच लाख विदेशी पूर्वी पाकिस्तान से असम राज्य में आए थे। १ जनवरी १९६... तथा २४ मार्च १९७१ के बीच असम में अनि... ...वाले विदेशियों को,
जिन...
के...
अ...
ज...
उ...
अधिकार...
रूप से असम में दाखिल होने...
(मुख्यत: बंगलादेशियों) को असम के बाहर निकाल दिया जाएगा।

समझौते के तहत भार...
से ल...

...के लिए चनाव...
उपरोक्त...
विकास, सांस्कृ...
के लिए केंद्र द्वा...
प्रावधान भी सम...

संसद के अ...
और आम जनता...
किया है। जैसे अक...
समझौते के बाद रा...
वैसे ही इस समझौते...
महसूस की है। इन स...
किया है कि श्री राज...
की कोई समस्या ऐसी...
जा सके। कहा जा सकत...
के समझौते ने राष्ट्र को...
और प्रगति के पथ पर...
हौसला दिया है। इसी भा...
कि समझौते का सब...
ईमानदारी, दृढ़ता तथा सद्भावना...

Cheers greet Assam pact announcement

Hindustan Times Correspondent

NEW DELHI Aug. 16—Cheers greeted Home Minister S B Chavan's ...sence of Prime Minister Rajiv Gandhi who broke the happy news amidst thunderous applause in his address to the nation from the ramparts of the... spearheaded the movem... off the agitatio... promised...

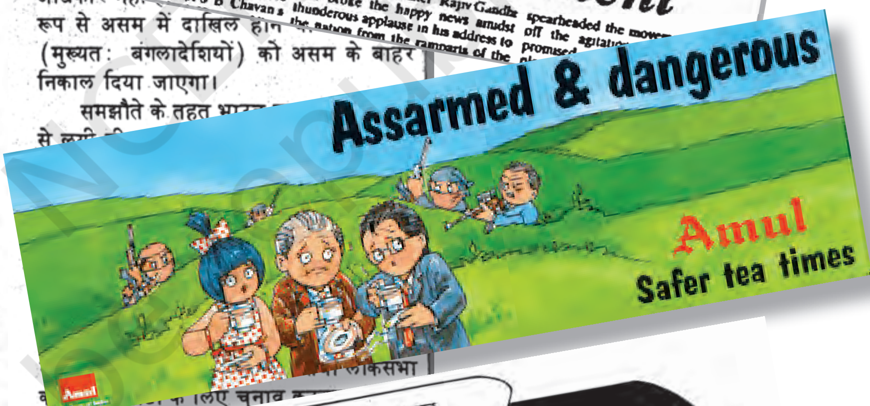

क्या आजकल भी आपको इस तरह के समाचार सुनने को मिलते हैं! किन-किन क्षेत्रों में आप स्थिति को सामान्य होते हुए पाते हैं?

सिक्किम का विलय

आज़ादी के समय सिक्किम को भारत की 'शरणागति' प्राप्त थी। इसका मतलब यह कि तब सिक्किम भारत का अंग तो नहीं था लेकिन वह पूरी तरह संप्रभु राष्ट्र भी नहीं था। सिक्किम की रक्षा और विदेशी मामलों का जिम्मा भारत सरकार का था जबकि सिक्किम के आंतरिक प्रशासन की बागडोर यहाँ के राजा चोग्याल के हाथों में थी। यह व्यवस्था कारगर साबित नहीं हो पायी क्योंकि सिक्किम के राजा स्थानीय जनता की लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को संभाल नहीं सके। सिक्किम की आबादी में एक बड़ा हिस्सा नेपालियों का था। नेपाली मूल की जनता के मन में यह भाव घर कर गया कि चोग्याल अल्पसंख्यक लेपचा-भूटिया के एक छोटे-से अभिजन तबके का शासन उन पर लाद रहा है। चोग्याल विरोधी दोनों समुदाय के नेताओं ने भारत सरकार से मदद माँगी और भारत सरकार का समर्थन हासिल किया।

सिक्किम विधानसभा के लिए पहला लोकतांत्रिक चुनाव 1974 में हुआ और इसमें सिक्किम कांग्रेस को भारी विजय मिली। यह पार्टी सिक्किम को भारत के साथ जोड़ने के पक्ष में थी। सिक्किम विधानसभा ने पहले भारत के 'सह-प्रान्त' बनने की कोशिश की और इसके बाद 1975 के अप्रैल में एक प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव में भारत के साथ सिक्किम के पूर्ण विलय की बात कही गई थी। इस प्रस्ताव के तुरंत बाद सिक्किम में जनमत-संग्रह कराया गया और जनमत-संग्रह में जनता ने विधानसभा के फैसले पर अपनी मुहर लगा दी। भारत सरकार ने सिक्किम विधानसभा के अनुरोध को तत्काल मान लिया और सिक्किम भारत का 22वाँ राज्य बन गया। चोग्याल ने इस फैसले को नहीं माना और उसके समर्थकों ने भारत सरकार पर साजिश रचने तथा बल-प्रयोग करने का आरोप लगाया। बहरहाल, भारत संघ में सिक्किम के विलय को स्थानीय जनता का समर्थन हासिल था। इस कारण यह मामला सिक्किम की राजनीति में कोई विभेदकारी मुद्दा न बन सका!

काजी लैंदुप दोरजी खांगसरपा (1904) : सिक्किम के लोकतंत्र बहाली आंदोलन के नेता; सिक्किम प्रजामंडल एवं सिक्किम राज्य कांग्रेस के संस्थापक; 1962 में सिक्किम नेशनल कांग्रेस की स्थापना; चुनावों में विजय के उपरांत सिक्किम के भारत में विलय के समर्थक; एकीकरण के बाद सिक्किम कांग्रेस का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में विलय।

रहीं। कभी कहीं से अलग राज्य बनाने की माँग उठी तो कहीं आर्थिक विकास का मसला उठा। कहीं-कहीं से अलगाववाद के स्वर उभरे। 1980 के बाद के दौर में भारत की राजनीति इन तनावों के घेरे में रही और समाज के विभिन्न तबको की माँगों में पटरी बैठा पाने की लोकतांत्रिक राजनीति की क्षमता की परीक्षा हुई। हम इन उदाहरणों से क्या सबक सीख सकते हैं।

पहला और बुनियादी सबक तो यही है कि क्षेत्रीय आकांक्षाएँ लोकतांत्रिक राजनीति का अभिन्न अंग हैं। क्षेत्रीय मुद्दे की अभिव्यक्ति कोई असामान्य अथवा लोकतांत्रिक राजनीति के व्याकरण से बाहर की घटना नहीं है। ग्रेट ब्रिटेन जैसे छोटे देश में भी स्कॉटलैंड, वेल्स और उत्तरी आयरलैंड में क्षेत्रीय आकांक्षाएँ उभरी हैं। स्पेन में बास्क लोगों और श्रीलंका में तमिलों ने अलगाववादी माँग की। भारत एक बड़ा लोकतंत्र है और यहाँ विभिन्नताएँ भी बड़े पैमाने पर हैं। अत: भारत को क्षेत्रीय आकांक्षाओं से निपटने की तैयारी लगातार रखनी होगी।

दूसरा सबक यह है कि क्षेत्रीय आकांक्षाओं को दबाने की जगह उनके साथ लोकतांत्रिक बातचीत का तरीका अपनाना सबसे अच्छा होता है। जरा अस्सी के दशक की तरफ़ नज़र दौड़ाएँ–पंजाब में उग्रवाद का जोर था; पूर्वोत्तर में समस्याएँ बनी हुई थीं; असम के छात्र आंदोलन कर रहे थे और कश्मीर घाटी में माहौल अशांत था।

© NCERT not to be republished

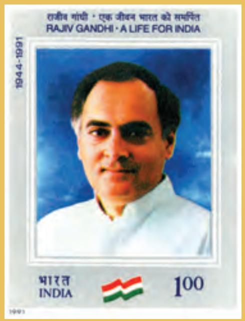

राजीव गाँधी
(1944-1991) : 1984 से 1989 के बीच भारत के प्रधानमंत्री; इंदिरा गाँधी के पुत्र; 1980 के बाद राजनीति में सक्रिय; पंजाब के आतंकवादियों, मिजो-विद्रोहियों तथा असम में छात्र संघ से समझौता; खुली अर्थव्यवस्था एवं कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के हिमायती; सिंहली-तमिल समस्या को सुलझाने के लिए भारतीय शांति सेना को श्रीलंका की सरकार के अनुरोध पर श्रीलंका भेजा; संदिग्ध एलटीटीई आत्मघाती द्वारा हत्या।

का साधारण मामला मानकर पूरी गंभीरता दिखाई। बातचीत के जरिए सरकार ने क्षेत्रीय आंदोलनों के साथ समझौता किया। इससे सौहार्द का माहौल बना और कई क्षेत्रों में तनाव कम हुआ। मिजोरम के उदाहरण से पता चलता है कि राजनीतिक सुलह के जरिए अलगाववाद की समस्या से बड़े कारगर तरीके से निपटा जा सकता है।

तीसरा सबक है सत्ता की साझेदारी के महत्त्व को समझना। सिर्फ लोकतांत्रिक ढाँचा खड़ा कर लेना ही काफ़ी नहीं है। इसके साथ ही विभिन्न क्षेत्रों के दलों और समूहों को केंद्रीय राजव्यवस्था में हिस्सेदार बनाना भी जरूरी है। ठीक इसी तरह यह कहना भी नाकफ़ी है कि किसी प्रदेश अथवा क्षेत्र को उसके मामलों में स्वायत्तता दी गई है। क्षेत्रों को मिलाकर ही पूरा देश बनता है। इसी कारण देश की नियति के निर्धारण में क्षेत्रों की बातों को वजन दिया जाना चाहिए। यदि राष्ट्रीय स्तर के निर्णयों में क्षेत्रों को वजन नहीं दिया गया तो उनमें अन्याय और अलगाव का बोध पनपेगा।

चौथा सबक यह है कि आर्थिक विकास के एतबार से विभिन्न इलाकों के बीच असमानता हुई तो पिछड़े क्षेत्रों को लगेगा कि उनके साथ भेदभाव हो रहा है। भारत में आर्थिक विकास प्रक्रिया का एक तथ्य क्षेत्रीय असंतुलन भी है। ऐसे में स्वाभाविक है कि पिछड़े प्रदेशों अथवा कुछ प्रदेशों के पिछड़े इलाकों को लगे कि उनके पिछड़ेपन को प्राथमिकता के आधार पर दूर किया जाना चाहिए। वे यह भी कह सकते हैं कि भारत सरकार ने जो नीतियाँ अपनायी हैं उसी के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय असंतुलन पैदा हुआ है। अगर कुछ राज्य गरीब रहें और बाकी तेजी से प्रगति करें तो क्षेत्रीय असंतुलन पैदा होगा। साथ ही, अंतर्प्रान्तीय अथवा अंतर्क्षेत्रीय आप्रवास में भी बढ़ोत्तरी होगी।

सबसे आखिरी बात यह कि इन मामलों से हमें अपने संविधान निर्माताओं की दूरदृष्टि का पता चलता है। वे विभिन्नताओं को लेकर अत्यंत सजग थे। हमारे संविधान के प्रावधान इस बात के साक्ष्य हैं। भारत ने जो संघीय प्रणाली अपनायी है वह बहुत लचीली है। अगर अधिकतर राज्यों के अधिकार समान हैं तो जम्मू-कश्मीर और पूर्वोत्तर के कुछ राज्यों के लिए विशेष प्रावधान भी किए गए हैं। हालांकि, जम्मू-कश्मीर के लिए विशेष प्रावधानों वाले अनुच्छेद 370 को अगस्त 2019 में निरस्त कर दिया गया। संविधान की छठी अनुसूची में विभिन्न जनजातियों को अपने आचार-व्यवहार और पारंपरिक नियमों को संरक्षित रखने की पूर्ण स्वायत्तता दी गई है। पूर्वोत्तर की कुछ जटिल राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने में ये प्रावधान बड़े निर्णायक साबित हुए।

भारत का संवैधानिक ढाँचा ज्यादा लचीला और सर्वसमावेशी है। जिस तरह की चुनौतियाँ भारत में पेश आयीं वैसी कुछ दूसरे देशों में भी आयी लेकिन भारत का संवैधानिक ढाँचा अन्य देशों के मुकाबले भारत को विशिष्ट बनाता है। क्षेत्रीय आकांक्षाओं को यहाँ अलगाववाद की राह पर जाने का मौका नहीं मिला। भारत की राजनीति ने यह स्वीकार किया है कि क्षेत्रीयता, लोकतांत्रिक राजनीति का अभिन्न अंग है।

© NCERT not to be republished

गोवा की मुक्ति

हालाँकि 1947 में भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का खात्मा हो गया था लेकिन पुर्तगाल ने गोवा, दमन और दीव से अपना शासन हटाने से इनकार कर दिया। यह क्षेत्र सोलहवीं सदी से ही औपनिवेशिक शासन में था। अपने लंबे शासनकाल में पुर्तगाल ने गोवा की जनता का दमन किया था। उसने यहाँ के लोगों को नागरिकों अधिकारों से वंचित रखा और बलात् धर्म-परिवर्तन कराया। आज़ादी के बाद भारत सरकार ने बड़े धैर्यपूर्वक पुर्तगाल को गोवा से अपना शासन हटाने पर रजामंद करने की कोशिश की। गोवा में आज़ादी के लिए एक मजबूत जन आंदोलन चला। इस आंदोलन को महाराष्ट्र के समाजवादी सत्याग्रहियों ने बल प्रदान किया। आखिरकार, दिसंबर 1961 में भारत सरकार ने गोवा में अपनी सेना भेजी। दो दिन की कार्रवाई में भारतीय सेना ने गोवा को मुक्त करा लिया। गोवा, दमन और दीव संघशासित प्रदेश।

जल्दी ही एक और समस्या उठ खड़ी हुई। महाराष्ट्रवादी गोमांतक पार्टी के नेतृत्व में एक तबके ने माँग रखी कि गोवा को महाराष्ट्र में मिला दिया जाए क्योंकि यह मराठी-भाषी क्षेत्र है। बहरहाल, बहुत-से गोवावासी गोवानी पहचान और संस्कृति की स्वतंत्र अहमियत बनाए रखना चाहते थे। कोंकणी भाषा के लिए भी इनके मन में आग्रह था। इस तबके का नेतृत्व यूनाइटेड गोअन पार्टी (यूजीपी) ने किया। 1967 के जनवरी में केंद्र सरकार ने गोवा में एक विशेष जनमत सर्वेक्षण कराया। इसमें गोवा के लोगों से पूछा गया कि आप लोग महाराष्ट्र में शामिल होना चाहते हैं अथवा अलग बने रहना चाहते हैं। इस मसले पर सरकार ने जनता की इच्छा को जानने के लिए जनमत-संग्रह जैसी प्रक्रिया अपनायी थी। अधिकतर लोगों ने महाराष्ट्र से अलग रहने के पक्ष में मत डाला। इस तरह गोवा संघशासित प्रदेश बना रहा। अंततः 1987 में गोवा भारत संघ का एक राज्य बना।

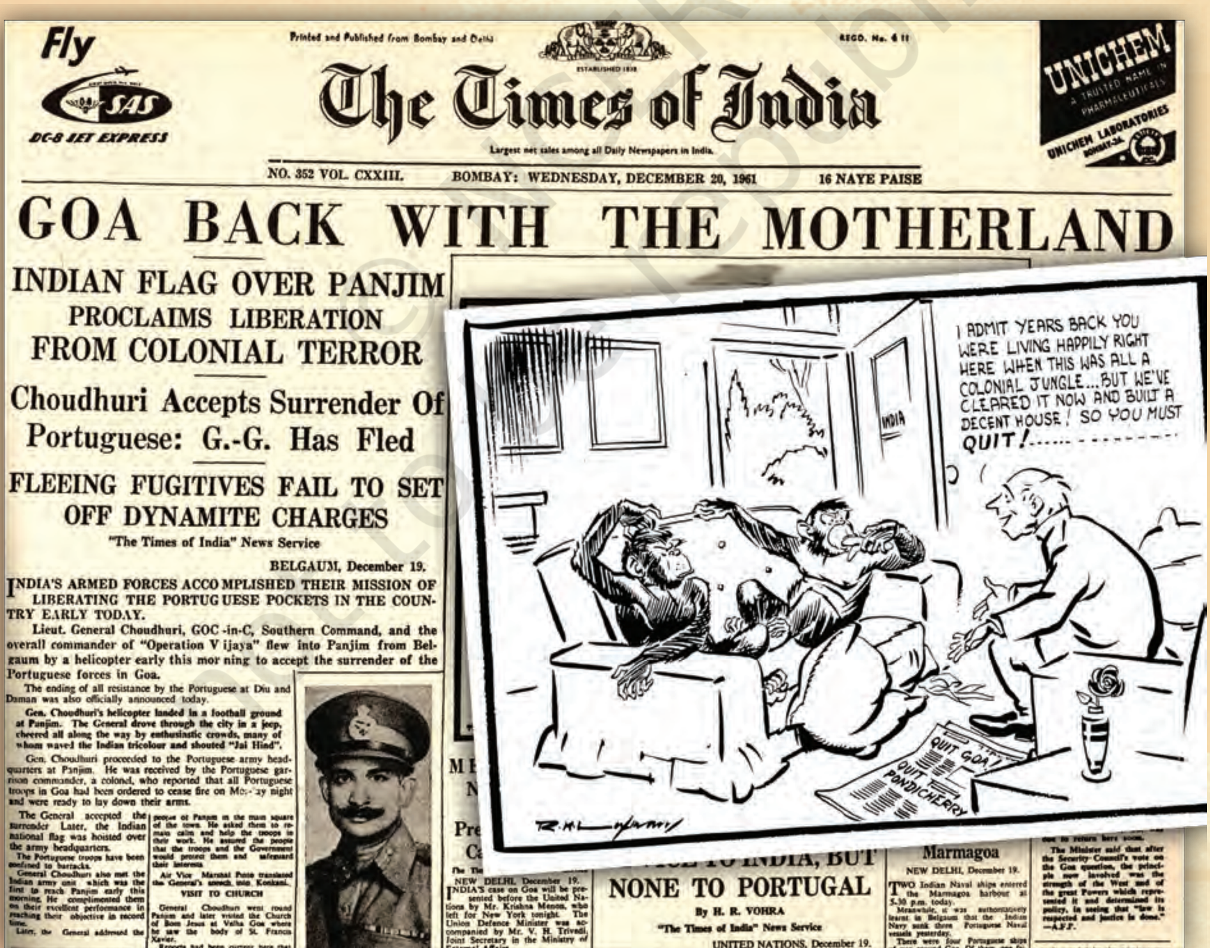

The Times of India

NO. 352 VOL. CXXIII. BOMBAY: WEDNESDAY, DECEMBER 20, 1961 16 NAYE PAISE

GOA BACK WITH THE MOTHERLAND

INDIAN FLAG OVER PANJIM PROCLAIMS LIBERATION FROM COLONIAL TERROR

Choudhuri Accepts Surrender Of Portuguese: G.-G. Has Fled

FLEEING FUGITIVES FAIL TO SET OFF DYNAMITE CHARGES

"The Times of India" News Service

BELGAUM, December 19.

INDIA'S ARMED FORCES ACCOMPLISHED THEIR MISSION OF LIBERATING THE PORTUGUESE POCKETS IN THE COUNTRY EARLY TODAY.

Lieut. General Choudhuri, GOC-in-C, Southern Command, and the overall commander of "Operation Vijaya" flew into Panjim from Belgaum by a helicopter early this morning to accept the surrender of the Portuguese forces in Goa.

The ending of all resistance by the Portuguese at Diu and Daman was also officially announced today.

Gen. Choudhuri's helicopter landed in a football ground at Panjim. The General drove through the city in a jeep, cheered all along the way by enthusiastic crowds, many of whom waved the Indian tricolour and shouted "Jai Hind".

Gen. Choudhuri proceeded to the Portuguese army headquarters at Panjim. He was received by the Portuguese garrison commander, a colonel, who reported that all Portuguese troops in Goa had been ordered to cease fire on Monday night and were ready to lay down their arms.

The General accepted the surrender. Later, the Indian national flag was hoisted over the army headquarters.

The Portuguese troops have been confined to barracks.

General Choudhuri also met the Indian army unit which was the first to reach Panjim early this morning. He complimented them on their excellent performance in reaching their objective in record time.

Later, the General addressed the people of Panjim in the main square of the town. He asked them to remain calm and help the troops in their work. He assured the people that the troops and the Government would protect them and safeguard their interests.

Air Vice Marshal Pinto translated the General's speech into Konkani.

VISIT TO CHURCH

General Choudhuri went round Panjim and later visited the Church of Bom Jesus at Velha Goa where he saw the body of St. Francis Xavier.

Reports had been current here that

NEW DELHI, December 19.

INDIA'S case on Goa will be presented before the United Nations by Mr. Krishna Menon, who left for New York tonight. The Union Defence Minister was accompanied by Mr. V. H. Trivedi, Joint Secretary in the Ministry of External Affairs.

... TO INDIA, BUT NONE TO PORTUGAL

By H. R. VOHRA

"The Times of India" News Service

UNITED NATIONS, December 19.

Marmagoa

NEW DELHI, December 19.

TWO Indian Naval ships entered the Marmagoa harbour at 5-30 p.m. today.

Meanwhile, it was authoritatively learnt in Belgaum that the Indian Navy sunk three Portuguese Naval vessels yesterday.

There were four Portuguese ships of war around Goa. Of them, one ...

The Minister said that after the Security Council's vote on the Goa question, the principle now involved was the strength of the West and of the great Powers which represented it and determined its policy, in seeing that "law is respected and justice is done." —A.F.P.

साभार: आर.के लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया, 21 अप्रैल 1954

प्रश्नावली

1. निम्नलिखित में मेल करें:

अ क्षेत्रीय आकांक्षाओं की प्रकृति		ब राज्य
(क) सामाजिक-धार्मिक पहचान के आधार पर राज्य का निर्माण	**(i)**	नगालैंड/मिजोरम
(ख) भाषायी पहचान और केंद्र के साथ तनाव	**(ii)**	झारखंड/छत्तीसगढ़
(ग) क्षेत्रीय असंतुलन के फलस्वरूप राज्य का निर्माण	**(iii)**	पंजाब
(ख) आदिवासी पहचान के आधार पर अलगाववादी माँग	**(iv)**	तमिलनाडु

2. पूर्वोत्तर के लोगों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति कई रूपों में होती है। बाहरी लोगों के खिलाफ़ आंदोलन, ज्यादा स्वायत्तता की माँग के आंदोलन और अलग देश बनाने की माँग करना-ऐसी ही कुछ अभिव्यक्तियाँ हैं। पूर्वोत्तर के मानचित्र पर इन तीनों के लिए अलग-अलग रंग भरिए और दिखाइए कि किस राज्य में कौन-सी प्रवृत्ति ज्यादा प्रबल है।

3. पंजाब समझौते के मुख्य प्रावधान क्या थे? क्या ये प्रावधान पंजाब और उसके पड़ोसी राज्यों के बीच तनाव बढ़ाने के कारण बन सकते हैं? तर्क सहित उत्तर दीजिए।

4. आनंदपुर साहिब प्रस्ताव के विवादास्पद होने के क्या कारण थे?

5. जम्मू-कश्मीर की अंदरुनी विभिन्नताओं की व्याख्या कीजिए और बताइए कि इन विभिन्नताओं के कारण इस राज्य में किस तरह अनेक क्षेत्रीय आकांक्षाओं ने सर उठाया है।

6. कश्मीर की क्षेत्रीय स्वायत्तता के मसले पर विभिन्न पक्ष क्या हैं? इनमें कौन-सा पक्ष आपको समुचित जान पड़ता है? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिए।

7. असम आंदोलन सांस्कृतिक अभिमान और आर्थिक पिछड़ेपन की मिली-जुली अभिव्यक्ति था। व्याख्या कीजिए।

8. हर क्षेत्रीय आंदोलन अलगाववादी माँग की तरफ अग्रसर नहीं होता। इस अध्याय से उदाहरण देकर इस तथ्य की व्याख्या कीजिए।

9. भारत के विभिन्न भागों से उठने वाली क्षेत्रीय मांगों से 'विविधता में एकता' के सिद्धांत की अभिव्यक्ति होती है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं? तर्क दीजिए।

10. नीचे लिखे अवतरण को पढ़ें और इसके आधार पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दें:

हजारिका का एक गीत...एकता की विजय पर है; पूर्वोत्तर के सात राज्यों को इस गीत में एक ही माँ की सात बेटियाँ कहा गया है... मेघालय अपने रास्ते गई... अरुणाचल भी अलग हुई और मिजोरम असम के द्वार पर दूल्हे की तरह दूसरी बेटी से ब्याह रचाने को खड़ा है... इस गीत का अंत असमी लोगों की एकता को बनाए रखने के संकल्प के साथ होता है

© NCERT not to be republished

और इसमें समकालीन असम में मौजूद छोटी-छोटी कौमों को भी अपने साथ एकजुट रखने की बात कही गई है... करबी और मिजिंग भाई-बहन हमारे ही प्रियजन हैं।

–संजीब बरुआ

(क) लेखक यहाँ किस एकता की बात कह रहा है?

(ख) पुराने राज्य असम से अलग करके पूर्वोत्तर के कुछ राज्य क्यों बनाए गए?

(ग) क्या आपको लगता है कि भारत के सभी क्षेत्रों के ऊपर एकता की यही बात लागू हो सकती है? क्यों?

© NCERT not to be republished

1990 के दशक में विभिन्न राजनीतिक दलों में बड़ी अफ़रा-तफ़री मची। इस कार्टून की ही तरह कइयों को यह सब ऊँची चरखी की सवारी जैसा जान पड़ा। यहाँ कार्टून में राजीव गाँधी, वी.पी. सिंह, एल.के. आडवाणी, चंद्रशेखर, ज्योति बसु, एन.टी. रामाराव, देवीलाल, पी.के. महंत और के. करुणानिधि को चरखी पर सवार दिखाया गया है।

इस अध्याय में...

इस अध्याय में हम पिछले दो दशकों की भारतीय राजनीति का एक संक्षिप्त जायज़ा लेंगे। इस अवधि में कुछ जटिल किस्म के बदलाव आए। कई कारकों ने एक साथ मिलकर इस अवधि में अप्रत्याशित परिणाम दिए। राजनीति के इस नए दौर का पूर्वानुमान कर पाना असंभव था और अब भी इसे समझना बहुत कठिन है। इस दौर के बदलाव बड़े विवादास्पद हैं, क्योंकि इनके साथ संघर्ष के कुछ गहरे मसले जुड़े हुए हैं और हम सब अभी इन बदलावों से इतने दूर नहीं जा पाए हैं कि इनके स्वरूप को साफ़-साफ़ परख सकें। बहरहाल इस दौर के राजनीतिक बदलावों को लेकर हम कुछ बुनियादी सवाल कर सकते हैं:

- गठबंधन की राजनीति के उदय का हमारे लोकतंत्र पर क्या असर पड़ा है?
- मंडलीकरण क्या है? इसने राजनीतिक प्रतिनिधित्व के स्वभाव को किन रूपों में बदला है?
- राम जन्मभूमि आंदोलन ने क्या विरासत छोड़ी है?
- नीतिगत मामलों पर एक सर्व-सहमति सी बन गई है—इसका राजनीतिक विकल्पों के चयन के लिहाज़ से क्या असर हुआ है?

  यह अध्याय इन सवालों के जवाब नहीं देता। इस अध्याय में आपको कुछ ज़रूरी सूचनाएँ दी गई हैं और कुछ तरीके बताए गए हैं, ताकि जब आप इस किताब को आखिर तक पढ़ लें, तो आप ये सवाल पूछ सकें और इनके जवाब तलाश सकें। ये सवाल राजनीतिक लिहाज़ से संवेदनशील हैं, लेकिन मात्र इसी कारण से हम इन सवालों को पूछने से बच नहीं सकते। आज़ादी के बाद की भारतीय राजनीति के इतिहास को आखिर पढ़ने का मकसद ही यही है कि हम अपने वर्तमान को समझ सकें।

© NCERT not to be republished

अध्याय 8

भारतीय राजनीति : नए बदलाव

1990 का दशक

आपने पिछले अध्याय में पढ़ा था कि इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बने। इंदिरा गाँधी की हत्या के कुछ दिनों बाद ही 1984 में लोकसभा के चुनाव हुए। राजीव गाँधी की अगुवाई में कांग्रेस को इस चुनाव में भारी विजय मिली। 1980 के दशक के आखिर के सालों में देश में ऐसे पाँच बड़े बदलाव आए, जिनका हमारी आगे की राजनीति पर गहरा असर पड़ा।

पहला, इस दौर की एक महत्त्वपूर्ण घटना 1989 के चुनावों में कांग्रेस की हार है। जिस पार्टी ने 1984 में लोकसभा की 415 सीटें जीती थीं वह इस चुनाव में महज 197 सीटें ही जीत सकी। 1991 में एक बार फिर मध्यावधि चुनाव हुए और कांग्रेस इस बार अपना आँकड़ा सुधारते हुए सत्ता में आयी। बहरहाल, 1989 में ही उस परिघटना की समाप्ति हो गई थी, जिसे राजनीति विज्ञानी अपनी खास शब्दावली में 'कांग्रेस प्रणाली' कहते हैं। यह बात तो प्रकट ही है कि कांग्रेस एक महत्त्वपूर्ण पार्टी के रूप में कायम रही और 1989 के बाद भी देश पर किसी अन्य पार्टी के बजाय उसका शासन ज़्यादा दिनों तक रहा। लेकिन, दलीय प्रणाली के भीतर जैसी प्रमुखता इसे पहले के दिनों में हासिल थी, वैसी अब न रही।

कांग्रेस नेता सीताराम केसरी ने देवगौड़ा की संयुक्त मोर्चा सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया।

दूसरा बड़ा बदलाव राष्ट्रीय राजनीति में 'मंडल मुद्दे' का उदय था। 1990 में राष्ट्रीय मोर्चा की नयी सरकार ने मंडल आयोग की सिफ़ारिशों को लागू किया। इन सिफ़ारिशों के अंतर्गत प्रावधान किया गया कि केंद्र सरकार की नौकरियों में 'अन्य पिछड़ा वर्ग' को आरक्षण दिया जाएगा। सरकार के इस फ़ैसले से देश के विभिन्न भागों में मंडल-विरोधी हिंसक प्रदर्शन हुए। अन्य पिछड़ा वर्ग को मिले आरक्षण के समर्थक और विरोधियों के बीच चले विवाद को 'मंडल मुद्दा' कहा जाता है। इसने 1989 के बाद की राजनीति में अहम भूमिका निभाई।

तीसरा, विभिन्न सरकारों ने इस दौर में जो आर्थिक नीतियाँ अपनायीं, वे बुनियादी तौर पर बदल चुकी थीं। इसे ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम अथवा नए आर्थिक सुधार के नाम से जाना

© NCERT not to be republished

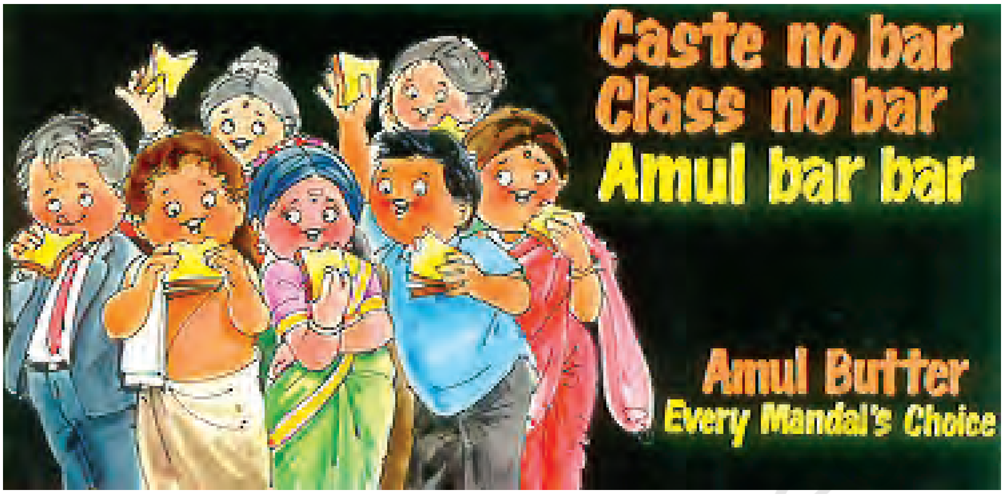

मंडलीकरण पर एक प्रतिक्रिया

गया। इनकी शुरुआत राजीव गाँधी की सरकार के समय हुई और 1991 तक ये बदलाव बड़े पैमाने पर प्रकट हुए। आज़ादी के बाद से अब तक भारतीय अर्थव्यवस्था जिस दिशा में चलती आई थी, वह इन नए आर्थिक सुधारों के कारण मूलगामी अर्थों में बदल गई। नयी आर्थिक नीतियों की विभिन्न आंदोलनों और संगठनों की तरफ़ से भरपूर आलोचना हुई। बहरहाल इस अवधि में जितनी सरकारें बनीं, सबने नयी आर्थिक नीति पर अमल जारी रखा।

चौथे, अयोध्या में राम जन्मभूमि मंदिर पर शताब्दियों से चले आ रहे विधिक एवं राजनीतिक विवाद ने भारत की राजनीति को प्रभावित करना आरम्भ किया जिसने अनेक

साभार: आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ़ इंडिया

तत्कालीन वित्तमंत्री मनमोहन सिंह और प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव को 'नयी आर्थिक नीति' के शुरुआती दौर में दिखाता एक कार्टून।

राजनीतिक परिवर्तनों को जन्म दिया। राम जन्मभूमि आंदोलन के केन्द्रीय विषय बनने से धर्म निरपेक्षता और लोकतंत्र के विमर्श की दिशा बदल गई। इन परिवर्तनों की परिणति सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ के निर्णय (जिसकी घोषणा 9 नवम्बर, 2019) के उपरांत अयोध्या में राम मन्दिर निर्माण के रूप में हुई।

इस सिलसिले की आखिरी बात यह है कि मई 1991 में राजीव गाँधी की हत्या कर दी गई और इसके परिणामस्वरूप कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व में परिवर्तन हुआ। राजीव गाँधी चुनाव

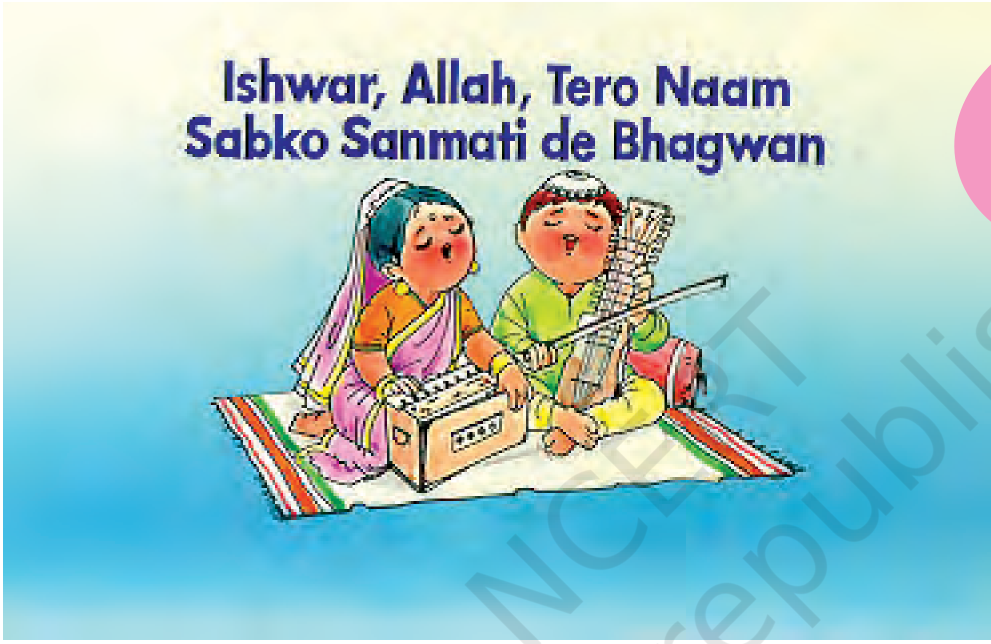

समरसता का संदेश देता एक विज्ञापन

अभियान के सिलसिले में तमिलनाडु के दौरे पर थे। तभी लिट्टे से जुड़े श्रीलंकाई तमिलों ने उनकी हत्या कर दी। 1991 के चुनावों में कांग्रेस सबसे बड़ी विजयी पार्टी के रूप में सामने आयी। राजीव गाँधी की मृत्यु के बाद कांग्रेस पार्टी ने नरसिम्हा राव को प्रधानमंत्री चुना।

25 अक्तूबर 1995 | 1 मई 1996 | 20 अगस्त 2001 | 25 अक्तूबर 2004

कांग्रेस नेतृत्व कई बार सुर्खियों में छाया रहा

© NCERT not to be republished

गठबंधन का युग

1989 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी की हार हुई थी, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि किसी दूसरी पार्टी को इस चुनाव में बहुमत मिल गया था। कांग्रेस अब भी लोकसभा में सबसे बड़ी पार्टी थी, लेकिन बहुमत में न होने के कारण उसने विपक्ष में बैठने का फ़ैसला किया। राष्ट्रीय मोर्चे को (यह मोर्चा जनता दल और कुछ अन्य क्षेत्रीय दलों को मिलाकर बना था) परस्पर विरुद्ध दो राजनीतिक समूहों – भाजपा और वाम मोर्चे – ने समर्थन दिया। इस समर्थन के आधार पर राष्ट्रीय मोर्चा ने एक गठबंधन सरकार बनायी, लेकिन इसमें भाजपा और वाम मोर्चे ने शिरकत नहीं की।

साभारः सुधीर तैलंग / एच.टी. बुक ऑफ कार्टून्स

वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय मोर्चा सरकार को वाम मोर्चा (यहाँ प्रतीक रूप में ज्योति बसु) और भाजपा (यहाँ प्रतीक रूप में एल.के. आडवाणी) ने समर्थन दिया था।

not to be republished

कांग्रेस का पतन

कांग्रेस की हार के साथ भारत की दलीय व्यवस्था से उसका दबदबा खत्म हो गया। अध्याय पाँच में कांग्रेस प्रणाली की पुनर्स्थापना की चर्चा की गई थी। क्या आपको यह चर्चा याद है। 1960 के दशक के अंतिम सालों में कांग्रेस के एकछत्र राज को चुनौती मिली थी, लेकिन इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने भारतीय राजनीति पर अपना प्रभुत्व फिर से कायम किया। नब्बे के दशक में कांग्रेस की अग्रणी हैसियत को एक बार फिर चुनौती मिली। बहरहाल इसका मतलब यह नहीं है कि कांग्रेस की जगह कोई दूसरी पार्टी प्रमुख हो गई।

इस दौर में कांग्रेस के दबदबे के खात्मे के साथ बहुदलीय शासन-प्रणाली का युग शुरू हुआ। यह तो निश्चित ही है कि अपने देश में अनेक पार्टियाँ चुनाव लड़ती आयी हैं। हमारी संसद में हमेशा कई दलों के सांसद रहे हैं। 1989 के बाद एक नयी बात देखने में आयी। अब कई पार्टियाँ इस तरह उभरीं कि किसी एक-दो पार्टी को ही अधिकाँश वोट या सीट नहीं मिल पाते थे। इसका मतलब यह भी हुआ कि 1989 के बाद से लोकसभा के चुनावों में कभी भी किसी एक पार्टी को 2014 तक पूर्ण बहुमत नहीं मिला। इस बदलाव के साथ केंद्र में गठबंधन सरकारों का दौर शुरू हुआ और क्षेत्रीय पार्टियों ने गठबंधन सरकार बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। यद्यपि, पुनः 2014 तथा 2019 के लोकसभा चुनावों में भा.ज.पा. दल को अकेले बहुमत प्राप्त हुआ है।

खोज-बीन

अपने माता-पिता से 1990 के दशक के बाद से हुई घटनाओं के बारे में पूछें और इस समय की उनकी यादों को कुरेदें। उनसे पूछिए कि उस दौर की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के बारे में वे क्या सोचते हैं। समूह बनाकर एक साथ बैठिए और अपने माता-पिता द्वारा बतायी गई घटनाओं की एक व्यापक सूची बनाइए। देखिए कि किस घटना का ज़िक्र ज़्यादा आया है। फिर, इस अध्याय में जिन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बदलावों का ज़िक्र आया है उनसे तुलना कीजिए। आप इस बात पर चर्चा कर सकते हैं कि कुछ घटनाएँ क्यों कुछ लोगों के लिए ज़्यादा महत्त्वपूर्ण थीं, जबकि दूसरों के लिए नहीं।

गठबंधन की राजनीति

नब्बे का दशक कुछ ताकतवर पार्टियों और आंदोलनों के उभार का साक्षी रहा। इन पार्टियों और आंदोलनों ने दलित तथा पिछड़े वर्ग (अन्य पिछड़ा वर्ग या ओबीसी) की नुमाइंदगी की। इन दलों में से अनेक ने क्षेत्रीय आकांक्षाओं की भी दमदार दावेदारी की। 1996 में बनी संयुक्त मोर्चे की सरकार में इन पार्टियों ने अहम किरदार निभाया। संयुक्त मोर्चा 1989 के राष्ट्रीय मोर्चे के ही समान था, क्योंकि इसमें भी जनता दल और कई क्षेत्रीय पार्टियाँ शामिल थीं। इस बार भाजपा ने सरकार को समर्थन नहीं दिया। संयुक्त मोर्चा की सरकार को कांग्रेस का समर्थन हासिल था। इससे पता चलता है कि राजनीतिक समीकरण किस कदर छुईमुई थे। 1989 में भाजपा और वाम मोर्चा दोनों ने राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार को समर्थन दिया था, क्योंकि ये दोनों कांग्रेस को सत्ता से बाहर रखना चाहते थे। इस बार वाममोर्चा ने गैर-कांग्रेसी सरकार को अपना समर्थन जारी रखा, लेकिन संयुक्त मोर्चा की सरकार को कांग्रेस पार्टी ने भी समर्थन दिया। दरअसल, कांग्रेस और वाममोर्चा दोनों इस बार भाजपा को सत्ता से बाहर रखना चाहते थे।

बहरहाल इन्हें ज़्यादा दिनों तक सफलता नहीं मिली और भाजपा ने 1991 तथा 1996 के चुनावों में अपनी स्थिति लगातार मज़बूत की। 1996 के चुनावों में यह सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी। इस नाते भाजपा को सरकार बनाने का न्यौता मिला। लेकिन अधिकांश दल, भाजपा की नीतियों के खिलाफ़ थे और इस वजह से भाजपा की सरकार लोकसभा में बहुमत हासिल नहीं कर सकी। आखिरकार भाजपा एक गठबंधन (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन–राजग)

© NCERT not to be republished

के अगुआ के रूप में सत्ता में आयी और 1998 के मई से 1999 के जून तक सत्ता में रही। फिर 1999 के अक्तूबर में इस गठबंधन ने दोबारा सत्ता हासिल की। राजग की इन दोनों सरकारों में अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री बने। 1999 की राजग सरकार ने अपना निर्धारित कार्यकाल पूरा किया।

साभार: अजीत मैनन/इंडिया टुडे

एक पार्टी के प्रभुत्व के दौर से लेकर बहुदलीय गठबंधन प्रणाली तक के सफ़र पर एक कार्टूनिस्ट की नज़र

इस तरह 1989 के चुनावों से भारत में गठबंधन की राजनीति के एक लंबे दौर की शुरुआत हुई। इसके बाद से केंद्र में 11 सरकारें बनीं। ये सभी या तो गठबंधन की सरकारें थीं अथवा दूसरे दलों के समर्थन पर टिकी अल्पमत की सरकारें थीं जो इन सरकारों में शामिल नहीं हुए। इस नए दौर में कोई सरकार क्षेत्रीय पार्टियों की साझेदारी अथवा उनके समर्थन से ही बनायी जा सकती थी। यह बात 1989 के राष्ट्रीय मोर्चा सरकार, 1996 और 1997 की संयुक्त मोर्चा सरकार, 1998 और 1999 की राजग, 2004 और 2009 की संप्रग सरकार पर समान रूप से लागू होती है। हालांकि, 2014 में यह प्रवृत्ति बदल गयी है।

आइए, अब तक जो हमने सीखा उसे इस बदलाव के साथ जोड़कर देखने की कोशिश करें। माना जा सकता है कि गठबंधन सरकारों का युग लंबे समय से जारी कुछ प्रवृत्तियों की परिणति है। पिछले कुछ दशकों से भारतीय समाज में गुपचुप बदलाव आ रहे थे और इन बदलावों ने जिन प्रवृत्तियों को जन्म दिया, वे भारतीय राजनीति को गठबंधन की सरकारों के युग की तरफ़ ले आयीं।

केंद्रीय सरकार 1989 के बाद

वी.पी. सिंह

चंद्र शेखर

पी. वी. नरसिम्हा राव

अटल बिहारी वाजपेयी

एच.डी. देवगौड़ा

इंद्रकुमार गुजराल

अटल बिहारी वाजपेयी

मनमोहन सिंह

नरेंद्र मोदी

अवधि	गठबंधन/सरकार में शामिल दल
दिसंबर 1989 – नवंबर 1990	**राष्ट्रीय मोर्चा**, वाम मोर्चा और भाजपा का समर्थन
नवंबर 1990 – जून 1991	**राष्ट्रीय मोर्चा** का एक तबका समाजवादी जनता पार्टी के नेतृत्व में; कांग्रेस का समर्थन
जून 1991 – मई 1996	**कांग्रेसः** एआईडीएमके तथा कुछ अन्य दलों का समर्थन
मई 1996 – जून 1996	**भाजपाः** अल्पमत सरकार
जून 1996 – अप्रैल 1997	कांग्रेस के समर्थन पर **संयुक्त मोर्चा** की सरकार
अप्रैल 1997 – मार्च 1998	कांग्रेस के समर्थन पर **संयुक्त मोर्चा** की सरकार
मार्च 1998 – अक्टूबर 1999; अक्टूबर 1999 – मई 2004	भाजपा-नीत **राजग** गठबंधन
मई 2004 – मई 2014	कांग्रेस-नीत **संप्रग** गठबंधन
मई 2014 के बाद	भाजपा-नीत **राजग** गठबंधन

वर्तमान और पूर्व प्रधान मंत्रियों के बारे में अधिक जानकारी के लिए, देखें http://pmindia.gov.in/hi

नोटः यहाँ कुछ खाली स्थान छोड़ दिए गए हैं। इनमें आप किसी सरकार की मुख्य नीतियों, कामकाज और उन पर उठे विवाद की कुछ सूचनाएँ लिख सकते हैं।

© NCERT not to be republished

दूसरे अध्याय में हमने पढ़ा था कि शुरुआती सालों में कांग्रेस खुद में ही एक गठबंधननुमा पार्टी थी। इसमें विभिन्न हित, सामाजिक समूह और वर्ग एक साथ रहते थे। इस परिघटना को 'कांग्रेस प्रणाली' कहा गया।

पाँचवें अध्याय में हम यह बात पढ़ चुके हैं कि 1960 के दशक से विभिन्न समूह कांग्रेस पार्टी से अलग होने लगे और इन्होंने अपनी खुद की पार्टी बनायी। हम इस बात पर भी गौर कर चुके हैं कि 1977 के बाद के सालों में कई क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ। इन सारे कारणों से कांग्रेस पार्टी कमज़ोर हुई, लेकिन कोई दूसरी पार्टी इस तरह से नहीं उभर पायी कि कांग्रेस का विकल्प बन सके।

अन्य पिछड़ा वर्ग का राजनीतिक उदय

इस अवधि का एक दूरगामी बदलाव था–अन्य पिछड़ा वर्ग का उदय। आप 'ओबीसी' शब्द से परिचित होंगे। इससे विचार-विवेचन की एक प्रशासनिक कोटि 'अन्य पिछड़ा वर्ग' अथवा 'अदर बैकवर्ड क्लासेज्' का संकेत किया जाता है। यह अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति से अलग एक कोटि है, जिसमें शैक्षणिक और सामाजिक रूप से पिछड़े समुदायों की गणना की जाती है। इन समुदायों को 'पिछड़ा वर्ग' भी कहा जाता है। छठे अध्याय में हम यह देख चुके हैं कि पिछड़ी जातियों के अनेक तबके कांग्रेस से दूर जा रहे थे। उनमें कांग्रेस के लिए समर्थन कम होता जा रहा था। ऐसे में गैर-कांग्रेसी दलों के लिए एक जगह पैदा हुई और इन दलों ने इस तबके का समर्थन हासिल किया। आपको याद होगा कि गैर-कांग्रेसी दलों के राजनीतिक अभ्युदय की अभिव्यक्ति 1977 की जनता पार्टी की सरकार के रूप में हुई। जनता पार्टी के कई घटक मसलन भारतीय क्रांतिदल और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का ग्रामीण इलाकों के अन्य पिछड़े वर्ग में ताकतवर जनाधार था।

'मंडल' का लागू होना

1980 के दशक में अन्य पिछड़ा वर्गों के बीच लोकप्रिय ऐसे ही राजनीतिक समूहों को जनता दल ने एकजुट किया। राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने मंडल आयोग की सिफ़ारिशों को लागू करने का फ़ैसला किया। इससे अन्य पिछड़ा वर्ग की राजनीति को सुगठित रूप देने में मदद मिली। नौकरी में आरक्षण के सवाल पर तीखे वाद-विवाद हुए और इन विवादों से 'अन्य पिछड़ा वर्ग' अपनी पहचान को लेकर ज़्यादा सजग हुआ। जो इस तबके को लामबंद करना चाहते थे, उन्हें इसका फायदा हुआ। इस दौर में ऐसी अनेक पार्टियाँ आगे आयीं, जिन्होंने रोज़गार और शिक्षा के क्षेत्र में अन्य पिछड़ा वर्ग को बेहतर अवसर उपलब्ध कराने की माँग की। इन दलों ने सत्ता में 'अन्य पिछड़ा वर्ग' की हिस्सेदारी का सवाल भी उठाया। इन दलों का कहना था कि भारतीय समाज में अन्य पिछड़ा वर्ग का एक बड़ा हिस्सा है। इसे देखते हुए अन्य पिछड़ा वर्ग का शासन में समुचित प्रतिनिधित्व और सत्ता में समुचित मौजूदगी तय करना लोकतांत्रिक कदम होगा।

मंडल आयोग की रिपोर्ट को लागू करने पर राजनीतिक माहौल सरगर्म हो उठा। जगह-जगह विरोध प्रदर्शन हुए।

मंडल आयोग

दक्षिण के राज्यों में अगर बहुत पहले से नहीं तो भी कम-से-कम 1960 के दशक से अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण का प्रावधान चला आ रहा था। बहरहाल, यह नीति उत्तर भारत के राज्यों में लागू नहीं थी। 1977-79 की जनता पार्टी की सरकार के समय उत्तर भारत में पिछड़े वर्ग के आरक्षण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर मज़बूती से आवाज़ उठाई गई। बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर इस दिशा में अग्रणी थे। उनकी सरकार ने बिहार में 'ओबीसी' को आरक्षण देने के लिए एक नयी नीति लागू की। इसके बाद केंद्र सरकार ने 1978 में एक आयोग बैठाया। इसके जिम्मे पिछड़ा वर्ग की स्थिति को सुधारने के उपाय बताने का काम सौंपा गया। आज़ादी के बाद से यह दूसरा अवसर था, जब सरकार ने ऐसा आयोग नियुक्त किया। इसी कारण आधिकारिक रूप से इस आयोग को 'दूसरा पिछड़ा वर्ग आयोग' कहा गया। आमतौर पर इस आयोग को इसके अध्यक्ष बिन्देश्वरी प्रसाद मंडल के नाम पर 'मंडल कमीशन' कहा जाता है।

मंडल आयोग का गठन भारतीय समाज के विभिन्न तबकों के बीच शैक्षिक और सामाजिक पिछड़ेपन की व्यापकता का पता लगाने और इन पिछड़े वर्गों की पहचान के तरीके बताने के लिए किया गया था। आयोग से यह भी अपेक्षा की गई थी कि वह इन वर्गों के पिछड़ेपन को दूर करने के उपाय सुझाएगा। आयोग ने 1980 में अपनी सिफारिशें पेश कीं। इस वक्त तक जनता पार्टी की सरकार गिर चुकी थी। आयोग का मशविरा था कि पिछड़ा वर्ग को पिछड़ी जाति के अर्थ में स्वीकार किया जाए, क्योंकि अनुसूचित जातियों से इतर ऐसी अनेक जातियाँ हैं, जिन्हें वर्ण व्यवस्था में 'नीच' समझा जाता है। आयोग ने एक सर्वेक्षण किया और पाया कि इन पिछड़ी जातियों की शिक्षा संस्थाओं तथा सरकारी नौकरियों में बड़ी कम मौजूदगी है। इस वजह से आयोग ने इन समूहों के लिए शिक्षा संस्थाओं तथा सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत सीट आरक्षित करने की सिफारिश की। मंडल आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्ग की स्थिति सुधारने के लिए कई और समाधान सुझाए जिनमें भूमि-सुधार भी एक था।

बी.पी. मंडल (1918-1982): 1967-1970 तथा 1977-1979 में बिहार से सांसद चुने गए। दूसरा पिछड़ा वर्ग आयोग की अध्यक्षता की। इस आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्ग को आरक्षण देने की सिफ़ारिश की। बिहार के समाजवादी नेता। 1968 में डेढ़ माह तक बिहार के मुख्यमंत्री पद पर रहे। 1977 में जनता पार्टी में शामिल हुए।

1990 के अगस्त में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने मंडल आयोग की सिफ़ारिशों में से एक को लागू करने का फ़ैसला किया। यह सिफ़ारिश केंद्रीय सरकार और उसके उपक्रमों की नौकरियों में अन्य पिछड़ा वर्ग को आरक्षण देने के संबंध में थी। सरकार के फ़ैसले से उत्तर भारत के कई शहरों में हिंसक विरोध का स्वर उमड़ा। इस फ़ैसले को सर्वोच्च न्यायालय में भी चुनौती दी गई और यह प्रकरण 'इंदिरा साहनी केस' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सरकार के फ़ैसले के खिलाफ़ अदालत में जिन लोगों ने अर्जी दायर की थी, उनमें एक नाम इंदिरा साहनी का भी था। 1992 के नवंबर में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार के निर्णय को सही ठहराते हुए अपना फ़ैसला सुनाया। राजनीतिक दलों में इस फ़ैसले के क्रियान्वयन के तरीके को लेकर कुछ मतभेद था। बहरहाल अन्य पिछड़ा वर्ग को आरक्षण देने के मसले पर देश के सभी बड़े राजनीतिक दलों में सहमति थी।

© NCERT not to be republished

राजनीतिक परिणाम

1980 के दशक में दलित जातियों के राजनीतिक संगठनों का भी उभार हुआ। 1978 में 'बामसेफ' (बैकवर्ड एंड माइनॉरिटी कम्युनिटीज़ एम्पलाइज़ फेडरेशन) का गठन हुआ। यह सरकारी कर्मचारियों का कोई साधारण-सा ट्रेड यूनियन नहीं था। इस संगठन ने 'बहुजन' यानी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यकों की राजनीतिक सत्ता की ज़बरदस्त तरफ़दारी की। इसी का परवर्ती विकास 'दलित-शोषित समाज संघर्ष समिति' है, जिससे बाद के समय में बहुजन समाज पार्टी का उदय हुआ। इस पार्टी की अगुआई कांशीराम ने की। बहुजन समाज पार्टी (बसपा) अपने शुरुआती दौर में एक छोटी पार्टी थी और इसे पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के दलित मतदाताओं का समर्थन हासिल था, लेकिन 1989 और 1991 के चुनावों में इस पार्टी को उत्तर प्रदेश में सफलता मिली। आज़ाद भारत में यह पहला मौका था, जब कोई राजनीतिक दल मुख्यतया दलित मतदाताओं के समर्थन के बूते ऐसी राजनीतिक सफलता हासिल कर पाया था।

दरअसल कांशीराम के नेतृत्व में बसपा ने अपने संगठन की बुनियाद व्यवहार केंद्रित नीतियों पर रखी थी। बहुजन (यानी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और धार्मिक अल्पसंख्यक) देश की आबादी में सबसे ज़्यादा हैं और संख्या के लिहाज़ से एक मजबूत राजनीतिक ताकत का रूप ले सकते हैं—बसपा के आत्मविश्वास को इस तथ्य से बड़ा बल मिला था। इसके बाद बसपा राज्य में एक बड़ी राजनीतिक ताकत के रूप में उभरी और उसने एक से ज़्यादा दफे यहाँ सरकार बनायी। इस पार्टी का सबसे ज़्यादा समर्थन दलित मतदाता करते हैं, लेकिन अब इसने समाज के विभिन्न वर्गों के बीच अपना जनाधार बढ़ाना शुरू किया है। भारत के कई हिस्सों में दलित राजनीति और अन्य पिछड़ा वर्ग की राजनीति ने स्वतंत्र रूप धारण किया है और इन दोनों के बीच अकसर प्रतिस्पर्धा भी चलती है।

कांशीराम (1934-2006):

बहुजन समाज के सशक्तीकरण के प्रतिपादक और बहुजन समाज पार्टी (बसपा) के संस्थापक; सामाजिक और राजनीतिक कार्य के लिए केंद्र सरकार की नौकरी से इस्तीफ़ा; बामसेफ; डीएस-4 और अंततः 1984 में बसपा की स्थापना; कुशाग्र रणनीतिकार; आप राजनीतिक सत्ता को सामाजिक समानता का आधार मानते थे; उत्तर भारत के राज्यों में दलित राजनीति के संगठनकर्ता

सांप्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र

इस अवधि में आया एक दूरगामी परिवर्तन, धार्मिक पहचान पर आधारित राजनीति का प्रत्यक्ष उदय रहा जिसने धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के बारे में बहस को दिशा दी। हमने छठे अध्याय में पढ़ा था कि आपातकाल के बाद भारतीय जनसंघ का जनता पार्टी के साथ विलय हो गया था । जनता पार्टी के पतन और बिखराव के बाद पूर्ववर्ती जनसंघ के समर्थकों ने 1980 में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) बनाई। आरंभ में भाजपा ने जनसंघ की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ा राजनीतिक पटल अपनाया। भाजपा ने गांधीवादी समाजवाद के साथ-साथ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को अपनी विचारधारा के रूप में अपनाया। किंतु 1984 के चुनावों में भाजपा को बहुत सफलता नहीं मिली। 1986 के बाद इस दल ने राष्ट्रवाद पर अपनी विचारधारा के केन्द्र के रूप में बल देना प्रारम्भ किया। भाजपा ने राजनीतिक लामबन्दी के लिए हिन्दुत्व की राजनीति को भी अपनाया।

हिन्दुत्व को विनायक दामोदर सावरकर ने भारतीय राष्ट्रीयता के आधार के रूप में लोकप्रिय किया था। इसका मूल आशय यह था कि एक भारतीय होने के लिए आवश्यक है कि वह भारतभूमि को अपनी 'पितृभूमि' और साथ ही 'पुण्यभूमि' भी स्वीकार करे। हिंदुत्व के विश्वासियों का तर्क है कि एक सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण एक संगठित राष्ट्रीय संस्कृति के आधार पर संभव है। वे यह भी मानते हैं कि भारत के सन्दर्भ में हिन्दुत्व, यह आधार प्रदान कर सकता है।

1986 की दो घटनाएं भाजपा की राजनीति का केन्द्र बिंदु बन गईं। पहला 1985 का शाहबानो वाद था। इस प्रकरण में एक 62 वर्षीय तलाकशुदा मुस्लिम महिला ने अपने भूतपूर्व पति से गुजारा भत्ता के लिए वाद किया था। सर्वोच्च न्यायालय ने शाहबानो के पक्ष में निर्णय दिया । पुरातन पंथी मुसलमानों ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को 'मुस्लिम पर्सनल लॉ' में हस्तक्षेप माना । कुछ मुस्लिम नेताओं की मांग पर सरकार ने मुस्लिम महिला (तलाक से जुड़े अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 पारित किया जिसने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निरस्त कर दिया । सरकार के इस कार्य का अनेक महिला संगठनों, अनेक मुस्लिम समूहों तथा अधिकांश बुद्धिजीवियों ने विरोध किया। भाजपा ने कांग्रेस सरकार के इस कार्य को अल्पसंख्यक समुदाय को दी गयी अनावश्यक छूट और उसका तुष्टिकरण बताकर आलोचना की।

क्या आप जानते हैं ?

28 नवंबर 1858 की एक बहुत ही रोचक घटना है, जब निहंग सिखों ने औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा बलपूर्वक निकाले जाने से पहले, जन्मभूमि स्थल पर नियंत्रण कर लिया तथा पूजन और हवन किया ।

अयोध्या विषय

दूसरी प्रमुख घटना के रूप में अयोध्या विषय, देश के सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास में गहराई तक बैठा हुआ था जिसमें विभिन्न हितधारकों के भिन्न दृष्टिकोण थे। यह विषय श्री राम के जन्मस्थान, जोकि पवित्रतम धार्मिक स्थलों में से एक माना जाता है, के स्वामित्व से संबधित विवाद था। अयोध्या में राम जन्मभूमि स्थान की महत्ता इस तथ्य से परखी जा सकती है कि 1528 से प्रारम्भ होकर 500 वर्ष के सुदीर्घ इतिहास में अनेक संघर्ष लखनऊ, बाराबंकी और फैजाबाद के गजेटियर में अंकित हैं। 1528 में श्री राम के जन्मस्थान पर तीन-गुम्बद ढाँचा निर्मित किया गया, परन्तु ढाँचे के आन्तरिक और बाह्य भागों में हिन्दू

© NCERT not to be republished

प्रतीकों तथा अवशेषों को प्रत्यक्ष देखा जा सकता था। अत: अयोध्या राम जन्मभूमि विषय प्राचीन सभ्यता में राष्ट्रीय गौरव से जुड़ गया। कालान्तर में यह विषय एक लम्बे विधिक विवाद में परिणत हो गया जिसमें न्यायिक प्रक्रिया प्राम्भ होने के कारण 1949 में ढाँचे को सील कर दिया गया।

1986 में फैजाबाद (अब अयोध्या) जिला न्यायालय के एक निर्णय से तीन-गुम्बद ढाँचे की स्थिति में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया जिसमें ढांचे का ताला खोल दिया गया और लोगों को वहाँ पूजा की अनुमति दे दी गई। यह विवाद अनेक दशकों से चल रहा था क्योंकि यह माना जाता था कि श्री राम के जन्मस्थान पर एक मन्दिर को ध्वस्त कर तीन-गुम्बद ढाँचा बनाया गया था। तथापि, मन्दिर का शिलान्यास हुआ किन्तु आगे का निर्माण प्रतिबन्धित रहा। इसे हिन्दू समुदाय ने श्री राम के जन्मस्थान विषयक अपनी चिन्ताओं की उपेक्षा समझा, जबकि मुस्लिम समाज ढाँचे पर अधिकार के आश्वासन की मांग करता रहा। तदनन्तर, स्वामित्व के अधिकार को लेकर दोनों समुदायों में तनाव बढ़ गया जिसका परिणाम अनगिनत विवादों और विधिक संघर्षों के रूप में दिखा। दोनों समुदाय दीर्घकाल से लम्बित इस विषय का समुचित समाधान चाहते थे। 1992 में ढांचे के ध्वंस के बाद कुछ आलोचकों ने माना कि इस घटना ने भारतीय लोकतन्त्र के सिद्धान्तों को बड़ी चुनौती दी है।

विधिक कार्यवाही से मैत्रीपूर्ण स्वीकृति

यह समझना महत्वपूर्ण है कि किसी भी समाज में विवाद होते ही हैं। परन्तु एक बहु-धार्मिक और बहु-सांस्कृतिक लोकतांत्रिक समाज में इन विवादों का हल सामान्यत: विधि की उचित प्रक्रिया से होता है। अनेक लोकतान्त्रिक और विधिक प्रक्रियाओं के जरिये जिसमें न्यायालय में सुनवाईयां, मध्यस्थता के प्रयास तथा जन आन्दोलन सम्मिलित हैं अन्तत: 9 नवम्बर 2019 को उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक पीठ के 5-0 के निर्णय के फलस्वरूप अयोध्या विवाद का समाधान हो गया। इस निर्णय ने इस विवाद से सम्बन्धित विभिन्न हित धारकों के विरोधाभासी हितों का सामंजस्यपूर्ण समाधान किया।

इस निर्णय ने *श्री राम जन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र ट्रस्ट* को विवादित स्थल राम मन्दिर निर्माण के लिए आवंटित कर दिया और संबंधित सरकार को *सुन्नी सेन्ट्रल वक्फ बोर्ड* को एक मस्जिद निर्माण के लिए उपयुक्त भूमि आवंटित करने का आदेश दिया। इस प्रकार से हमारे जैसे विविधतापूर्ण समाज में लोकतन्त्र संविधान की समावेशी भावना के अनुरूप संघर्ष के समाधान का मार्ग खोलता है। यह विषय पुरातात्विक उत्खनन और ऐतिहासिक अभिलेखों जैसे साक्ष्यों के आधार पर विधि की उचित प्रक्रिया का पालन करते हुए सुलझाया गया। समाज में व्यापक रूप से सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उत्सवपूर्वक लिया गया। यह एक उदाहरण है जिसमें एक संवेदनशील विषय पर सर्वसम्मति का निर्माण किया गया, यह भारत के सभ्यतागत स्वभाव में निहित लोकतान्त्रिक प्रकृति की परिपक्वता को प्रदर्शित करता है।

© NCERT not to be republished

सुप्रीम कोर्ट की संवैधानिक पीठ के फैसले का जिक्र करने वाले अंश (9 नवम्बर, 2019)

"......संविधान के हृदय में कानून के शासन द्वारा कायम और लागू की गई समानता के प्रति प्रतिबद्धता है। हमारे संविधान के तहत, दैवीय उत्पत्ति की तलाश करने वाले सभी धर्मों, विश्वासों और पंथों के नागरिक कानून के अधीन हैं और कानून के समक्ष समान हैं। इस न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को न केवल संविधान और उसके मूल्यों को बनाए रखने का काम सौंपा गया है, बल्कि उन्हें बनाए रखने की शपथ भी दिलाई गई है। संविधान एक धर्म और दूसरे धर्म की आस्था और विश्वास के बीच अंतर नहीं करता है। सभी प्रकार के विश्वास, पूजा और प्रार्थना समान हैं..."

(विवरण के लिए देखें, सुप्रीम कोर्ट निर्णय, 9 नवंबर 2019, पृष्ठ 920, https://main.sci.gov.in/supremecourt/2010/36350/36350_2010_1_1502_18205_Judgement_09-Nov-2019.pdf)

"इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला गया है....... कि मस्जिद के निर्माण से पहले और उसके बाद से हिंदुओं की आस्था और विश्वास हमेशा यही रहा है कि भगवान राम का जन्मस्थान ही वह स्थान है जहां बाबरी मस्जिद का निर्माण किया गया है, जो कि ऊपर चर्चा किये गये दस्तावेजों और मौखिक साक्ष्यों से साबित होता है।"

(विवरण के लिए देखें, सुप्रीम कोर्ट निर्णय, 9 नवंबर 2019, पृष्ठ 1045, https://main.sci.gov.in/supremecourt/2010/36350/36350_2010_1_1502_18205_Judgement_09-Nov-2019.pdf)

एक नयी सहमति का उदय

1989 के बाद की अवधि को कभी-कभार कांग्रेस के पतन और भाजपा के अभ्युदय की भी अवधि कहा जाता है। यदि आप इस दौर की राजनीति के जटिल चरित्र को समझना चाहते हैं, तो आपको कांग्रेस और भाजपा की चुनावी हार-जीत की तुलना करनी पड़ेगी।

कांग्रेस और भाजपा की चुनावी जीत-हार : बदलता परिदृश्य

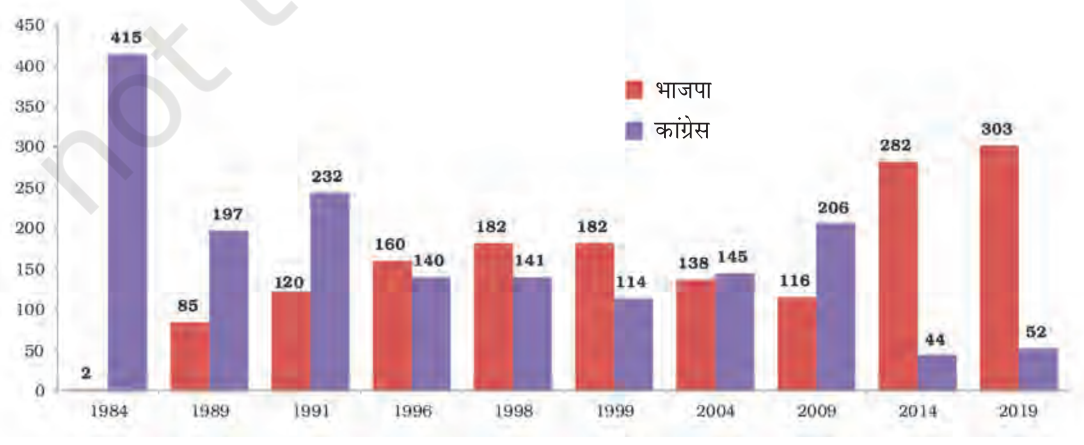

Reprint 2026-27

वोट में हिस्सा

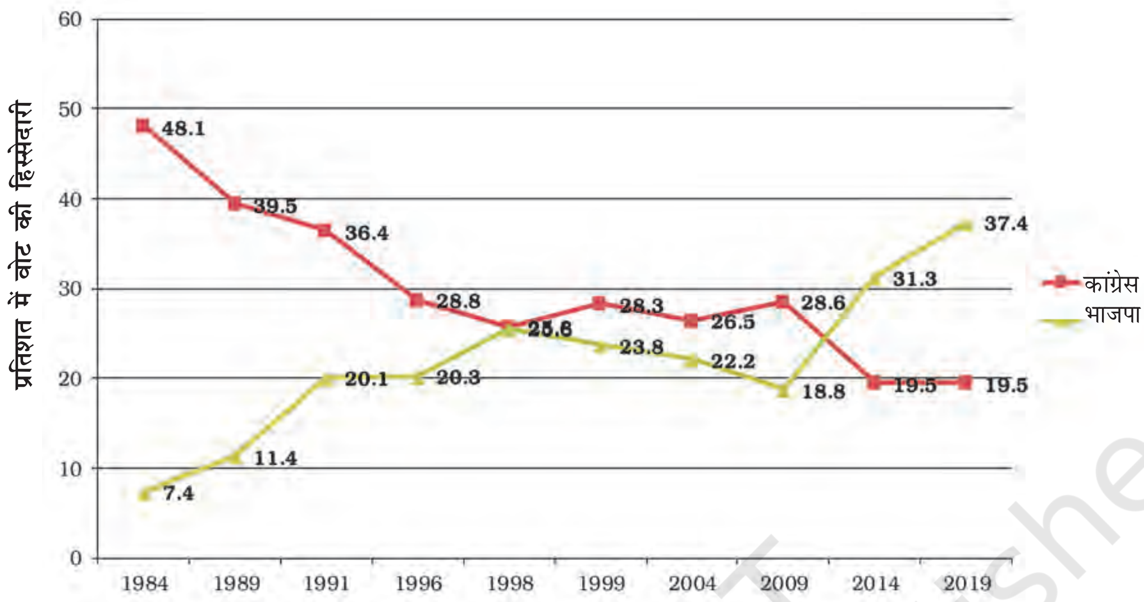

आइए, ऊपर दी गई तालिका की सूचनाओं के अर्थ खोजने की कोशिश करें।

- गौर कीजिए कि अधिकतर इस अवधि में भाजपा और कांग्रेस कठिन प्रतिस्पर्धा में लगे हुए थे। 1984 के चुनावों से तुलना करने पर आप इन पार्टियों की चुनावी सफलता में क्या अंतर पाते हैं?
- आप देखेंगे कि 1989 के चुनाव के बाद से, 1996, 2004 और 2009 को छोड़कर ज्यादातर समय दोनों पार्टियों कांग्रेस और भाजपा को मिले वोटों का योग 50 फीसदी से ज्यादा रहा है।
- आइए, दूसरे अध्याय की बातों को याद करें। आपने इस अध्याय में दो-पार्टी तंत्रों के बारे में पढ़ा था। आइए, इस किताब के आख़िरी पन्नों पर नज़र डालते हैं। यहाँ कांग्रेस और जनता पार्टी-तंत्र के आरेख पर ग़ौर कीजिए। मौजूदा दलों में ऐसे कौन-कौन-से दल हैं, जो न तो दलों के कांग्रेस परिवार में थे और न ही जनता पार्टी परिवार में? नब्बे के दशक में राजनीतिक मुकाबला भाजपा-नीत गठबंधन और कांग्रेस-नीत गठबंधन के बीच चला। क्या आप ऐसी पार्टियों की सूची बना सकते हैं, जो दोनों में से किसी गठबंधन में शामिल नहीं हैं?

लोकसभा चुनाव (2004-2019)

2004 के चुनावों में कांग्रेस भी पूरे ज़ोर के साथ गठबंधन में शामिल हुई। राजग की हार हुई और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) की सरकार बनी। इस गठबंधन का नेतृत्व कांग्रेस ने किया। संप्रग को वाम मोर्चा ने समर्थन दिया। 2004 के चुनावों में एक हद तक कांग्रेस का पुनरुत्थान भी हुआ। 1991 के बाद इस दफा पार्टी की सीटों की संख्या एक बार फिर बढ़ी। बहरहाल, 2004 के चुनावों में राजग और संप्रग को मिले कुल वोटों का अंतर बड़ा कम था। इस तरह दलीय प्रणाली सत्तर के दशक की तुलना में एकदम ही बदल गई है।

© NCERT not to be republished

भारत-अमेरिका परमाणु समझौते के मुद्दे पर जुलाई 2008 में वाम दलों द्वारा समर्थन वापस लेने के बावजूद कांग्रेस के नेतृत्व वाली संप्रग सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया। 2009 में 15वीं लोकसभा के लिए चुनाव हुए। परिणाम कांग्रेस के पक्ष में आए, वास्तव में, कांग्रेस की सीटों की संख्या में वृद्धि देखी गई (2004 में 145 से 2009 में 206) और कांग्रेस के नेतृत्व वाली संप्रग सरकार बनी। डॉ. मनमोहन सिंह ने दूसरे कार्यकाल के लिए प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ली और एक बार फिर संप्रग की गठबंधन सरकार का नेतृत्व किया।

भारतीय जनता पार्टी ने सितंबर 2013 में नरेंद्र मोदी (तत्कालीन गुजरात के मुख्यमंत्री) को अपना प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया। 2014 में हुए 16वें लोकसभा चुनाव में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा को स्पष्ट बहुमत मिला। भाजपा ने अपने दम पर 282 सीटें जीतीं। 30 साल बाद एकल पार्टी बहुमत हासिल करने वाली पहली पार्टी बन गई। अपने स्वयं के एकल दल के बहुमत के बावजूद, भाजपा ने अपने गठबंधन सहयोगियों के साथ राजग सरकार बनाने का विकल्प चुना।

वर्ष 2014, भारतीय राजनीति के लिए एक ऐतिहासिक क्षण था। नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली राजग सरकार ने सामाजिक क्षेत्र, विदेश नीति और आर्थिक नीति में तेजी से निर्णय लिए। 2019 के लोकसभा चुनाव में भाजपा फिर से 303 सीटों के साथ विजयी हुई। जब भाजपा को पूर्ण बहुमत मिल रहा है तब भी गठबंधन की राजनीति की मान्यता अभी भी प्रासंगिक है।

इस तरह दलीय प्रणाली सत्तर के दशक की तुलना में एकदम ही बदल गई है।

बढ़ती सहमति

बहरहाल, अनेक महत्त्वपूर्ण मसलों पर अधिकतर दलों के बीच एक व्यापक सहमति है। कड़े मुकाबले और बहुत-से संघर्षों के बावजूद अधिकतर दलों के बीच एक सहमति उभरती सी जान पड़ रही है। इस सहमति में चार बातें हैं।

पहला, नयी आर्थिक नीति पर सहमति : कई समूह नयी आर्थिक नीति के खिलाफ़ हैं, लेकिन ज़्यादातर राजनीतिक दल इन नीतियों के पक्ष में हैं। अधिकतर दलों का मानना है कि नई आर्थिक नीतियों से देश समृद्ध होगा और भारत, विश्व की एक आर्थिक शक्ति बनेगा।

दूसरा, पिछड़ी जातियों के राजनीतिक और सामाजिक दावे की स्वीकृति : राजनीतिक दलों ने पहचान लिया है कि पिछड़ी जातियों के सामाजिक और राजनीतिक दावे को स्वीकार करने की ज़रूरत है। इस कारण आज सभी राजनीतिक दल शिक्षा और रोज़गार में पिछड़ी जातियों के लिए सीटों के आरक्षण के पक्ष में हैं। राजनीतिक दल यह भी सुनिश्चित करने के लिए तैयार हैं कि 'अन्य पिछड़ा वर्ग' को सत्ता में समुचित हिस्सेदारी मिले।

तीसरा, देश के शासन में प्रांतीय दलों की भूमिका की स्वीकृति : प्रांतीय दल और राष्ट्रीय दल का भेद अब लगातार कम होता जा रहा है। हमने इस अध्याय में देखा कि प्रांतीय दल केंद्रीय सरकार में साझीदार बन रहे हैं और इन दलों ने पिछले बीस सालों में देश की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

© NCERT not to be republished

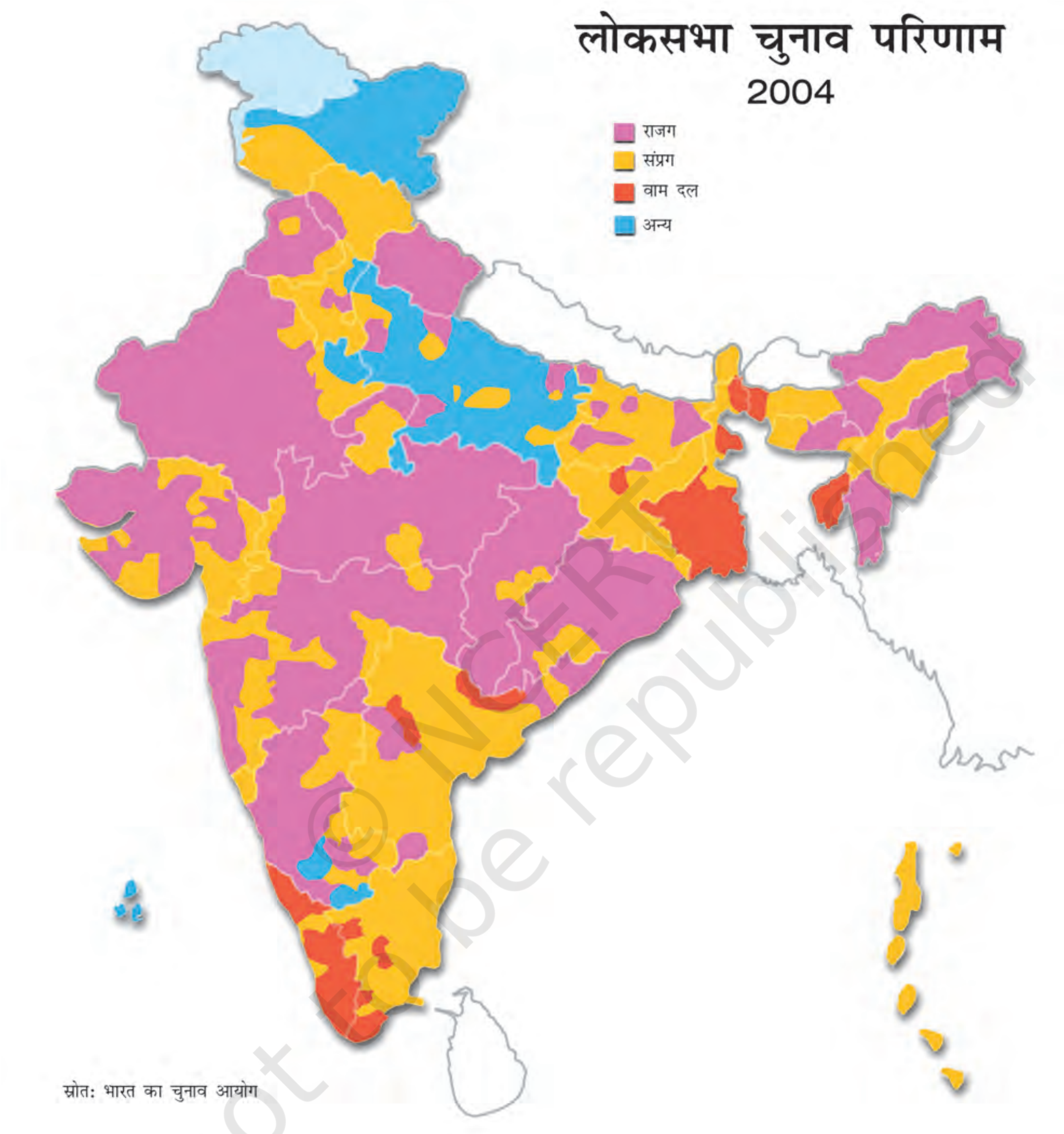

चौथा, विचारधारा की जगह कार्यसिद्धि पर ज़ोर और विचारधारागत सहमति के बगैर राजनीतिक गठजोड़ : गठबंधन की राजनीति के इस दौर में राजनीतिक दल विचारधारागत अंतर की जगह सत्ता में हिस्सेदारी की बातों पर ज़ोर दे रहे हैं, जो मिसाल के लिए अधिकतर दल भाजपा की 'हिंदुत्व' की विचारधारा से सहमत नहीं हैं, लेकिन ये दल भाजपा के साथ गठबंधन में शामिल हुए और सरकार बनाई, जो पाँच साल तक चली।

नोटः यह नक्शा किसी पैमाने के हिसाब से बनाया गया भारत का मानचित्र नहीं है। इसमें दिखाई गई भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को प्रामाणिक सीमा रेखा न माना जाए।

ये सभी महत्त्वपूर्ण बदलाव हैं और आगामी राजनीति इन्हीं बदलावों के दायरे में आकार लेगी। भारत की राजनीति के इस अध्ययन की शुरुआत में हमने चर्चा की थी कि कांग्रेस किस तरह एक प्रभावशाली पार्टी बनकर उभरी। इस स्थिति से चलकर अब हम एक ऐसे पड़ाव पर पहुँचे हैं, जहाँ राजनीतिक प्रतिस्पर्धा कहीं ज़्यादा तेज़ है लेकिन इस प्रतिस्पर्धी राजनीति के बीच मुख्य राजनीतिक दलों में कुछेक मसलों पर सहमति है। अगर राजनीतिक दल इस सहमति के दायरे में सक्रिय हैं, तो जन आंदोलन और संगठन विकास के नए रूप, स्वप्न और तरीकों की पहचान कर रहे हैं। गरीबी, विस्थापन, न्यूनतम मज़दूरी, आजीविका और सामाजिक सुरक्षा के मसले जन आंदोलनों के ज़रिए राजनीतिक एजेंडे के रूप में सामने आ रहे हैं। ये आंदोलन राज्य को उसकी ज़िम्मेदारियों के प्रति सचेत कर रहे हैं। इसी तरह लोग जाति, लिंग, वर्ग और क्षेत्र के संदर्भ में न्याय तथा लोकतंत्र के मुद्दे उठा रहे हैं। हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि भारत में लोकतांत्रिक राजनीति जारी रहेगी और यह राजनीति इस अध्याय में वर्णित कुछ चीज़ों के मंथन के बीच आकार ग्रहण करेगी।

जैसा कि आप जानते हैं भारत की आजादी के आसपास कई अन्य देश भी आजाद हुए और लोकतंत्र को अपनाया। हालाँकि, भारत सामाजिक समानता और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने में एक महान भूमिका निभाते हुए एक परिपक्व लोकतंत्र के रूप में उभरा, लेकिन उनमें से कुछ देशों में ऐसा नहीं हुआ है। उन कारकों के बारे में आपस में चर्चा करें जिन्होंने भारत में लोकतंत्र को पनपने में सक्षम बनाया है।

17वीं लोकसभा में विभिन्न दलों की स्थिति

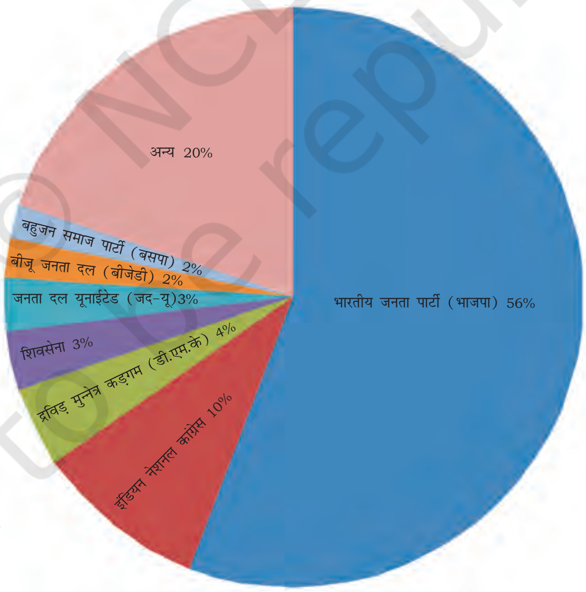

भारतीय जनता पार्टी (भाजपा)	303	जनता दल यूनाईटेड (जद-यू)	16
इंडियन नेशनल कांग्रेस	52	बीजू जनता दल (बीजेडी)	12
द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम (डी.एम.के)	24	बहुजन समाज पार्टी (बसपा)	10
शिवसेना	18	अन्य पार्टियाँ	108

स्रोतः http://loksabha.nic.in

© NCERT not to be republished

प्रश्नावली

1. उन्नी-मुन्नी ने अखबार की कुछ कतरनों को बिखेर दिया है। आप इन्हें कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित करें:

(क) मंडल आयोग की सिफारिश को लागू करना
(ख) जनता दल का गठन
(ग) राम जन्मभूमि पर सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय
(घ) इंदिरा गाँधी की हत्या
(ङ) राजग सरकार का गठन
(च) संप्रग सरकार का गठन

2. निम्नलिखित में मेल करें:

(क) सर्वानुमति की राजनीति	(i) शाहबानो मामला
(ख) जाति आधारित दल	(ii) अन्य पिछड़ा वर्ग का उभार
(ग) पर्सनल लॉ और लैंगिक न्याय	(iii) गठबंधन सरकार
(घ) क्षेत्रीय पार्टियों की बढ़ती ताकत	(iv) आर्थिक नीतियों पर सहमति

3. 1989 के बाद की अवधि में भारतीय राजनीति के मुख्य मुद्दे क्या रहे हैं? इन मुद्दों से राजनीतिक दलों के आपसी जुड़ाव के क्या रूप सामने आए हैं?
4. "गठबंधन की राजनीति के इस नए दौर में राजनीतिक दल विचारधारा को आधार मानकर गठजोड़ नहीं करते हैं।" इस कथन के पक्ष या विपक्ष में आप कौन-से तर्क देंगे।
5. आपातकाल के बाद के दौर में भाजपा एक महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरी। इस दौर में इस पार्टी के विकास-क्रम का उल्लेख करें।
6. कांग्रेस के प्रभुत्व का दौर समाप्त हो गया है। इसके बावजूद देश की राजनीति पर कांग्रेस का असर लगातार कायम है। क्या आप इस बात से सहमत हैं? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिए।
7. अनेक लोग सोचते हैं कि सफल लोकतंत्र के लिए दो-दलीय व्यवस्था ज़रूरी है। पिछले तीस सालों के भारतीय अनुभवों को आधार बनाकर एक लेख लिखिए और इसमें बताइए कि भारत की मौजूदा बहुदलीय व्यवस्था के क्या फ़ायदे हैं।
8. निम्नलिखित अवतरण को पढ़ें और इसके आधार पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दें:
भारत की दलगत राजनीति ने कई चुनौतियों का सामना किया है। कांग्रेस-प्रणाली ने अपना खात्मा ही नहीं किया, बल्कि कांग्रेस के जमावड़े के बिखर जाने से आत्म-प्रतिनिधित्व की नयी प्रवृत्ति का भी ज़ोर बढ़ा। इससे दलगत व्यवस्था और विभिन्न हितों की समाई करने की इसकी क्षमता पर भी सवाल उठे। राजव्यवस्था के सामने एक महत्त्वपूर्ण काम एक ऐसी दलगत व्यवस्था खड़ी करने अथवा राजनीतिक दलों को गढ़ने की है, जो कारगर तरीके से विभिन्न हितों को मुखर और एकजुट करें...

– जोया हसन

(क) इस अध्याय को पढ़ने के बाद क्या आप दलगत व्यवस्था की चुनौतियों की सूची बना सकते हैं?
(ख) विभिन्न हितों का समाहार और उनमें एकजुटता का होना क्यों ज़रूरी है।
(ग) इस अध्याय में आपने अयोध्या विवाद के बारे में पढ़ा। इस विवाद ने भारत के राजनीतिक दलों की समाहार की क्षमता के आगे क्या चुनौती पेश की?

© NCERT not to be republished

खुद करें-खुद सीखें

- इस अध्याय में 2004 के चुनाव (14वीं लोकसभा) तक भारतीय राजनीति की प्रमुख घटनाओं को शामिल किया गया है। इसके बाद लोकसभा चुनाव 2009 में आयोजित किए गए, जिसके दौरान कांग्रेस के नेतृत्व में संप्रग की जीत हुई। 2014 तथा 2019 के चुनाव में भाजपा के नेतृत्व वाली राजग विजेता बन कर उभरी। 17वीं लोकसभा में विभिन्न दलों की स्थिति पृष्ठ 154 पर दर्शाई गई है।
- 17वीं लोकसभा के सदस्यों का एक विस्तृत अध्ययन लोकसभा की वेबसाइट (http://loksabha.nic.in) पर उपलब्ध है।
- भारत निर्वाचन आयोग की वेबसाइट (http://eci.nic.in) से परिणामों के बारे में आँकड़े एकत्र करके 2009 के चुनाव (15वीं लोकसभा) और 2019 के चुनाव (17वीं लोकसभा) में विभिन्न राजनीतिक दलों के चुनावी प्रदर्शन की तुलना करें।
- 2004 के बाद से भारत में प्रमुख राजनीतिक घटनाओं का एक घटनाक्रम तैयार करें और अपनी कक्षा में उस पर चर्चा करें।

सन् 2004 से संसद में दलीय स्थिति

	पार्टी	2004	2009	2014	2019
1	आम आदमी पार्टी	–	–	4	1
2	ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम	0	9	37	1
3	बहुजन समाज पार्टी	19	21	–	10
4	भारतीय जनता पार्टी	138	116	282	303
5	बीजू जनता दल	11	14	20	12
6	कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया—मार्क्सवादी	43	16	9	3
7	कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया	10	4	1	2
8	द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम	16	18	–	24
9	इंडियन नेशनल कांग्रेस	145	206	44	52
10	जनता दल—यूनाइटेड	8	20	2	16
11	जनता दल—सेक्यूलर	3	3	2	1
12	लोक जनशक्ति पार्टी	4	–	6	6
13	नेशनलिस्ट कांग्रेस पार्टी	9	9	6	5
14	राष्ट्रीय जनता दल	24	4	4	–
15	राष्ट्रीय लोकदल	3	5	1	–
16	समाजवादी पार्टी	36	23	5	5
17	शिरोमणि अकाली दल	8	4	4	2
18	शिवसेना	12	11	18	18
19	अन्य	54	60	98	82
	कुल	543	543	543	543

संसद सदस्यों की कुल संख्या – 543 (राज्यों से 530 और केंद्रशासित प्रदेशों से 13)

© NCERT not to be republished

केन्द्रीय सतर्कता आयोग
CENTRAL VIGILANCE COMMISSION

सत्यनिष्ठा प्रतिज्ञा
INTEGRITY PLEDGE

मेरा विश्वास है कि हमारे देश की आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक प्रगति में भ्रष्टाचार एक बड़ी बाधा है। मेरा विश्वास है कि भ्रष्टाचार का उन्मूलन करने के लिए सभी संबंधित पक्षों जैसे सरकार, नागरिकों तथा निजी क्षेत्र को एक साथ मिल कर कार्य करने की आवश्यकता है।

मेरा मानना है कि प्रत्येक नागरिक को सतर्क होना चाहिए तथा उसे सदैव ईमानदारी तथा सत्यनिष्ठा के उच्चतम मानकों के प्रति वचनबद्ध होना चाहिए तथा भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष में साथ देना चाहिए।

अत:, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि :-

- जीवन के सभी क्षेत्रों में ईमानदारी तथा कानून के नियमों का पालन करूँगा ;
- ना तो रिश्वत लूँगा और ना ही रिश्वत दूँगा ;
- सभी कार्य ईमानदारी तथा पारदर्शी रीति से करूँगा ;
- जनहित में कार्य करूँगा ;
- अपने निजी आचरण में ईमानदारी दिखाकर उदाहरण प्रस्तुत करूँगा ;
- भ्रष्टाचार की किसी भी घटना की रिपोर्ट उचित एजेन्सी को दूँगा ।

केंद्रीय सतर्कता आयोग (सी.वी.सी.) के बारे में जानकारी के लिए लॉग ऑन करें,
www.cvc.nic.in

© NCERT not to be republished

स्रोत: भारत निर्वाचन आयोग।

स्वतंत्र भारत में राजनीति

कक्षा 12 के लिए राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तक

© NCERT
not to be republished

12122

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

Reprint 2026-27

12122 – स्वतंत्र भारत में राजनीति
कक्षा 12 के लिए पुनर्संयोजित पाठ्यपुस्तक

ISBN 81-7450-769-8

प्रथम संस्करण
जून 2007 ज्येष्ठ 1929

पुनर्मुद्रण
जनवरी 2008, मार्च 2009,
जनवरी 2010, नवंबर 2010,
मार्च 2013, जनवरी 2014,
दिसम्बर 2014, दिसम्बर 2015,
फ़रवरी 2017, दिसंबर 2017,
जनवरी 2019, जनवरी 2020,
मार्च 2021 और दिसंबर 2021

संशोधित संस्करण
नवंबर 2022 कार्तिक 1944

पुनर्मुद्रण
मार्च 2024, चैत्र 1946
दिसंबर 2024 पौष 1946
दिसंबर 2025 अग्रहायण 1947

PD 25T BS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2007, 2022

₹ 135.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110016 प्रकाशित तथा चंदू प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली-110092 द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन सी ई आर टी के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बेंगलूर 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781 021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	:	*एम.वी. श्रीनिवासन*
मुख्य संपादक	:	*बिज्ञान सुतार*
मुख्य व्यापार प्रबंधक	:	*अमिताभ कुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी (प्रभारी)	:	*दीपक जैसवाल*
सहायक संपादक	:	*शशि चड्डा*
उत्पादन अधिकारी	:	*सुनील शर्मा*

आवरण, सज्जा
श्वेता राव

चित्र
इरफ़ान

कार्टोग्राफी
एआरके ग्रॉफ़िक्स

© NCERT not to be republished

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और अपने अनुभव पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों व स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितना वार्षिक कैलेण्डर के अमल में चुस्ती ताकि शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक बच्चों के स्कूली जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में विचार-विमर्श और ऐसी गतिविधियों को प्राथमिकता देती है जिन्हें करने के लिए व्यावहारिक अनुभवों की आवश्यकता होती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् सामाजिक विज्ञान सलाहकार समूह के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर हरि वासुदेवन और राजनीति विज्ञान पाठ्यपुस्तक समिति के मुख्य सलाहकार प्रोफ़ेसर सुहास पळशीकर, प्रोफ़ेसर योगेंद्र यादव तथा सलाहकार डॉ. उज्जवल कुमार सिंह का विशेष तौर पर आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में कई शिक्षकों ने योगदान दिया; इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री और सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक

© NCERT not to be republished

एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों व सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान

और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली

20 दिसंबर 2006

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तकों में पाठ्य सामग्री का पुनर्संयोजन

कोविड-19 महामारी को देखते हुए, विद्यार्थियों के ऊपर से पाठ्य सामग्री का बोझ कम करना अनिवार्य है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में भी विद्यार्थियों के लिए पाठ्य सामग्री का बोझ कम करने और रचनात्मक नज़रिए से अनुभवात्मक अधिगम के अवसर प्रदान करने पर जोर दिया गया है। इस पृष्ठभूमि में, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने सभी कक्षाओं में पाठ्यपुस्तकों को पुनर्संयोजित करने की शुरुआत की है। इस प्रक्रिया में रा.शै.अ.प्र.प. द्वारा पहले से ही विकसित कक्षावार सीखने के प्रतिफलों को ध्यान में रखा गया है।

पाठ्य सामग्रियों के पुनर्संयोजन में निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखा गया है–

- एक ही कक्षा में अलग-अलग विषयों के अंतर्गत समान पाठ्य सामग्री का होना;
- एक कक्षा के किसी विषय में उससे निचली कक्षा या ऊपर की कक्षा में समान पाठ्य सामग्री का होना;
- कठिनाई स्तर;
- विद्यार्थियों के लिए सहज रूप से सुलभ पाठ्य सामग्री का होना, जिसे
- शिक्षकों के अधिक हस्तक्षेप के बिना, वे खुद से या सहपाठियों के साथ पारस्परिक रूप से सीख सकते हों;
- वर्तमान संदर्भ में अप्रासंगिक सामग्री का होना।

वर्तमान संस्करण, ऊपर दिए गए परिवर्तनों को शामिल करते हुए तैयार किया गया पुनर्संयोजित संस्करण है।

© NCERT not to be republished

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1][**संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य**] बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2][**राष्ट्र की एकता**

और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''राष्ट्र की एकता'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

पाठकों के नाम एक पत्र

हिंदुस्तान की आज़ादी और लोकतांत्रिक राजनीति ने अपने साठ साल पूरे कर लिए हैं। ऐसे में यह उचित ही है कि हम पीछे मुड़कर देखें और इस अवधि पर सोच-विचार करें। इन छह दशकों में हमारी राजनीति में कई प्रवृतियाँ उभरीं – हमारी राजनीति का रूप-विन्यास कई दफे बदला। इस क्रम में हमारी लोकतांत्रिक राजनीति की खूबियाँ और खामियाँ उजागर हुईं। लेकिन, यह सोचकर बड़ा आश्चर्य होता है कि अपने देश के नौज़वान नागरिक स्वतंत्र भारत की राजनीति के इतिहास के बारे में बड़ा कम जानते हैं। आपको आज़ादी के आंदोलन के बारे में अच्छी जानकारी हो गई होगी क्योंकि आपने इसके बारे में इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में पढ़ा है। मीडिया की खबरों से आप समकालीन राजनीति के बारे में भी थोड़ा-बहुत जानते हैं। लेकिन, आज़ादी के आंदोलन के बाद का जो दौर राजनीति के मौजूदा मुकाम तक पहुँचा है उसके बारे में बहुत कम नौज़वानों को ज़्यादा जानकारी होगी। यह किताब आज़ादी के आंदोलन और समकालीन राजनीति के बीच की इसी अवधि के बारे में आपसे बातें करती है। इस किताब में हमारे लोकतंत्र की पिछले साठ सालों की यात्रा की कथा कही गई है ताकि जिस राजनीतिक वास्तविकता के परिवेश में हम-सब जी रहे हैं, आप उसके अर्थ समझ सकें।

पिछले साठ सालों में जो घटनाएँ हुई हैं, उन सबका अथवा प्रमुख घटनाओं का ही इस किताब में कोई कालक्रमानुसार ब्यौरा नहीं दिया गया है। हमने पिछले साठ सालों के इतिहास को कुछ बड़े मसलों और विषयवस्तु के इर्द-गिर्द बुनने की कोशिश की है। इस किताब के शुरुआती आठ अध्यायों में भारतीय राजनीति की एक खास अवधि को समेटने की कोशिश की गई है लेकिन ऐसा करते हुए घटनाओं के चयन का ध्यान रखा गया है। किन्हीं सालों में जिस मसले अथवा प्रवृत्ति का ज़ोर ज़्यादा रहा हो, हमने उसी के इर्द-गिर्द घटनाओं का चयन किया है। आखिरी अध्याय में ऐसे कई मुद्दों पर एक सरसरी नज़र डाली गई है जो हाल-फिलहाल के सालों में उभरे हैं।

माना जाता है कि राजनीति सत्ता का शतरंज है जिसे कुछ बड़े नेता खेलते हैं। एक तरह से यह सही भी है कि राजनीति का सरोकार सत्ता से होता है। लेकिन राजनीति का आशय मिलजुल कर फ़ैसला करने, मतभेदों के बीच ताल-मेल बैठाने और सबकी रजामंदी हासिल करना भी होता है। इसी कारण अगर कोई सामूहिक मामला हो तो हम बगैर राजनीति के उसका निपटारा नहीं कर सकते। ठीक उसी तरह यह बात सच है कि बड़े नेता राजनीति के अमल पर असर डालते हैं लेकिन राजनीति किसी व्यक्ति की महत्वाकांक्षाओं और कुंठाओं के घेरे में कैद कोई कथा नहीं है – इसकी सरहद इससे बहुत आगे तक जाती है। इसी कारण, आप देखेंगे कि इस किताब में राजनीति की कथा के पात्रों पर खास ज़ोर नहीं दिया गया है। हाँ, आपको अलग-अलग पन्नों पर राजनेताओं के राजनीतिक जीवन से संबंधित कुछ प्रमुख सूचनाएँ ज़रूर मिल जाएँगी ताकि जिस दौर के बारे में आप पढ़ रहे हैं उसको भली-भाँति समझ सकें। बहरहाल, हमारी कत्तई यह मंशा नहीं कि आप जीवनीपरक इन सूचनाओं का रट्टा लगाएँ।

गुज़रे वक्त की एक जीवंत छवि आपके मन में कौंधे – इसके लिए हमने इस किताब में अनेक फोटोग्राफ्स, कार्टून, मानचित्र तथा अन्य तस्वीरें शामिल की हैं। राजनीति विज्ञान की पिछली किताबों की तरह इस बार भी आपकी भेंट 'उन्नी-मुन्नी' से होगी। इस बार भी वे आपके सामने अपने भोले मगर चोखे और चुभते सवालों-टिप्पणियों के साथ नमूदार होंगे। बहरहाल, अब तक आप जान गए होंगे कि 'उन्नी-मुन्नी' जो कुछ कह रहे हैं वह इस पाठ्यपुस्तक की आधिकारिक राय नहीं है। आप ही नहीं, संभव है, इस पाठ्यपुस्तक के लेखक भी 'उन्नी-मुन्नी' की बातों से असहमत हों। लेकिन, इन दोनों की तरह आपको भी हर चीज़ पर सवाल उठाना चाहिए।

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

इस किताब में जिस दौर की चर्चा की गई है उसके कथा–नायकों अथवा किसी घटना पर कोई दो–टूक फ़ैसला सुनाने से परहेज़ किया गया है। किताब की मंशा आपको सूचनाओं और दृष्टिकोण से परिचित कराना है ताकि आप राजनीति विज्ञान के छात्र अथवा देश के नागरिक के रूप में राजनीति पर कहीं ज़्यादा सुचिन्तित और जानकारी भरा पक्ष ले सकें। इसी वजह से हमने यह कथा खुले ढंग से कही है और बातों को तटस्थ होकर लिखा है। यह कोई आसान काम नहीं था क्योंकि इस किस्म की किताब को लिखने में सारे 'विवादास्पद' मुद्दों को एक तरफ खिसकाकर नहीं चला जा सकता। किताब में जिस दौर की चर्चा की गई है उससे जुड़े कई अहम मुद्दों पर गहरे राजनीतिक मतभेद रहे हैं और अब भी बने हुए हैं।

इस किताब को जिस टोली ने तैयार किया है उसने विषय के साथ तटस्थता का बरताव करने के लिए कुछ कायदों का पालन किया। पहली बात तो यही कि किसी विवादास्पद मुद्दे पर लिखते हुए एक से ज़्यादा दृष्टिकोण दिए गए हैं। दूसरे, यथासंभव प्रामाणिक स्रोतों मसलन विभिन्न आयोगों की रिपोर्ट या अदालत के फ़ैसलों का इस्तेमाल किया गया है और इन स्रोतों के आधार पर महत्त्वपूर्ण ब्यौरों का खाका खींचा गया है। तीसरे, यह किताब स्वतंत्र भारत की राजनीति की कथा, विभिन्न सामग्रियों के आधार पर सुनाती है जिसमें अकादमिक लेखन से लेकर अखबार और पत्रिकाओं की कतरन तक शामिल है। चौथे, किताब में मौजूदा नेताओं की राजनीतिक भूमिका की विस्तृत चर्चा से परहेज़ किया गया है।

इस पाठ्यपुस्तक को लिखना खासतौर पर चुनौती भरा काम साबित हुआ क्योंकि हमारे पास विवेच्य अवधि पर पर्याप्त सूचनाएँ नहीं थीं। अधिकांश ऐतिहासिक सामग्री अब भी शोधकर्त्ताओं की पहुँच से बाहर हैं। इस दौर पर केंद्रित ऐसा मानक इतिहास लेखन भी ज़्यादा मौजूद नहीं कि उसके आधार पर किसी पाठ्यपुस्तक को तैयार किया जा सके। पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति ने इस चुनौती को एक संभावना के रूप में लिया। हम टोली के सदस्यों के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने विभिन्न अध्यायों के प्रारूप लिखने के लिए अपना कीमती समय निकाला। जम्मू–कश्मीर और पंजाब से जुड़ी इस पुस्तक की पाठ्यसामग्री का प्रारूप तैयार करने के लिए हम क्रमशः प्रोफेसर रेखा चौधरी और सुरिंदर जोधका के कृतज्ञ हैं।

इस पुस्तक की पाठ्यसामग्री के महत्व और संवेदनशील प्रकृति को देखते हुए फ़ैसला किया गया था कि प्रारूप को राजनीति विज्ञानियों और इतिहासकारों की एक टोली कई दफे जाँचेगी। हमने ऐसे तीन 'पाठकों' – डा. रामचंद्र गुहा, प्रोफेसर सुनील खिलनानी और डा. महेश रंगराजन से इस पुस्तक के पूरे प्रारूप को पढ़ने का अनुरोध किया ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि विषयवस्तु के साथ पूरी तटस्थता बरती गई है और दी गई जानकारी सटीक है। हम इन तीन 'पाठकों' के कृतज्ञ हैं। इन्होंने हमारे अनुरोध को स्वीकार किया और अपना बेशकीमती वक्त निकालकर पूरे प्रारूप को पढ़ा तथा अपनी राय दी। इन तीनों की टिप्पणियों से हमारा उत्साह बढ़ा और इनके सुझावों की वज़ह से हम पुस्तक में कई गलतियों से बच सके। हम रामचंद्र गुहा के विशेष रूप से आभारी हैं। हमने उनकी पुस्तक 'इंडिया ऑफ्टर गाँधी' से भरपूर मदद ली है। डा. फिलिप ओल्डेनबर्ग ने भी इस पुस्तक के कई हिस्सों को पढ़ा और मूल्यवान टिप्पणी की। एक सौभाग्य यह भी रहा कि राष्ट्रीय निगरानी समिति की एक उप–समिति में प्रोफ़ेसर मृणाल मिरी, जी.पी. देशपांडे और गोपाल गुरू जैसे प्रसिद्ध विद्वान शामिल थे और इन्होंने इस किताब को कम से कम तीन दफे शुरू से लेकर आखिर तक पढ़ा। इस किताब को आद्योपांत पढ़ने और अपनी विस्तृत टिप्पणी देने के लिए हम राजनीति विज्ञानी टीना चक्रवर्ती के भी आभारी हैं। हम एनसीईआरटी के निदेशक प्रोफेसर कृष्ण कुमार और पाठ्यपुस्तक परामर्श समिति के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर हरि वासुदेवन को हृदय से आभार देना चाहते हैं। इन्होंने इस नाजुक काम में समय–समय पर हमें मशविरा दिया और मार्ग–दर्शन किया। हम प्रोफ़ेसर यशपाल के आभारी हैं कि उन्होंने इस पुस्तक में रुचि ली और अपना समर्थन दिया।

© NCERT not to be republished

हम दिल्ली स्थित विकासशील समाज अध्ययन पीठ के 'लोकनीति कार्यक्रम' के आभारी हैं। इस पाठ्यपुस्तक की रचना के लिए ज़रूरी संसाधन को जुटाने और पुस्तक को तैयार करने के दौरान घर जैसा माहौल प्रदान करने में 'लोकनीति' ने कोई कसर नहीं रखी। विकासशील समाज अध्ययन पीठ से जुड़े उनके सदस्यों मसलन, लोकनीति के संजीर आलम, अविनाश झा, बालाजी मदीक, हिमांशु भट्टाचार्य और 'सराय' के रविकांत तथा मुहम्मद कुरैशी शामिल हैं, ने इस पुस्तक के निर्माण में भरपूर सहायता दी। हम डाक-टिकट संग्राहक विभाग के अधिकारियों, खासकर कावेरी बनर्जी और भारतीय डाक सेवा से संबद्ध नीरज कुमार और संध्या आर. कनेगंति के आभारी हैं। इन्होंने हमें बड़ी संख्या में डाक-टिकट उपलब्ध कराए और उन्हें छापने की अनुमति दी। हम इस पुस्तक की सामग्री के रूप में फिल्मों के चयन के क्रम मदद देने के लिए मिलिन्द चंपानरकर; कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारियों के लिए राधिका मेनन; हिंदुस्तान टाइम्स फोटो लाइब्रेरी के समृद्ध संग्रह से जरूरी सामग्री जुटाने में मदद देने के लिए विपुल मुद्गल, रीतु और धर्मवीर; नई दुनिया के पुराने अंकों की प्रति उपलब्ध कराने के लिए भानु चौबे और अभय छजलानी; 'द हिन्दू' अखबार के पुस्तकालय से चित्र और खबरों की कतरन जुटाने में मददगार राजेन्द्र बाबू; यूनिवर्सिटी ऑव मिशिगन के पुस्तकालय तथा नेहरू मेमोरियल म्यूज़ियम एंड लाइब्रेरी नई दिल्ली के अधिकारियों के आभारी हैं। पुस्तक को सुधारने में मिनि राय का सहयोग भी उल्लेखनीय है।

एलेक्स जार्ज, पंकज पुष्कर, के.के. कैलाश और एम. मनीषा इस किताब को तैयार करने में जुटी टोली के मेरूदंड साबित हुए। बात पुस्तकालयों और स्रोत-सामग्रियों के अन्य भंडारों को खंगालने की हो अथवा दृश्य-सामग्री जुटाने और तथ्यों की जाँच करने की, इस टोली ने हर काम को भरपूर लगन से अंजाम दिया। इन लोगों के बहुमुखी सहयोग और खासकर पंकज पुष्कर की अटूट कार्यनिष्ठा के बगैर यह पुस्तक इस शक्ल में मुकम्मल नहीं हो पाती। इस पुस्तक को हिंदी में लाते समय हमारा आग्रह था कि पुस्तक अनूदित होकर भी मूल का सा स्वाद दे। इस चुनौती को सामने रखकर पुस्तक को हिंदी में अनूदित करने का श्रमसाध्य कार्य चंदन श्रीवास्तव ने किया। इस संस्करण की तैयारी के लिए आयोजित एक कार्यशाला में नरेश गोस्वामी, राजेश कुमार यादव और मेधा ने भागीदारी की और अपनी विशेषज्ञता से कई चरणों में हमारा सहयोग किया। पाठगत अशुद्धियों को सुधारने में सहयोग देने के लिए हम नवनीत सहाय 'बेदार' और सैयद अज़फ़र अहसन के आभारी हैं। इस किताब को संवारने में उन्नी-मुन्नी के रचयिता इरफ़ान ख़ान, नक्शों और आरेखों के संयोजक एआरके ग्राफिक्स तथा पुस्तक की रूप-सज्जा की शिल्पी श्वेता राव का विशेष योगदान रहा। इन्होंने अपने कलाबोध से इस किताब को रंगो-आब दिया। हम इनके सहयोग के लिए आभार प्रकट करते हैं। कहना न होगा कि एनसीईआरटी की मुख्य संपादक श्वेता उप्पल ने इस पुस्तक की तैयारी में अटूट कर्तव्यनिष्ठा का परिचय दिया। हम उनके धैर्य और कार्य-कौशल के लिए आभारी हैं। पुस्तक की रूप सज्जा को सजाने-संवारने की प्रक्रिया में अरविंद शर्मा, उत्तम कुमार, दीप्ति शर्मा, अंजना बख्शी और शशी देवी ने पूरी लगन से साथ दिया। इस कार्य में रवि भंडारी, विक्रम सिंह रावत एवं योगेश कुमार भी हमारे सहयोगी रहे।

यह पुस्तक भारतीय लोकतंत्र की परिपक्वता के प्रति हमारा यह नम्र निवेदन है। देश के लोकतांत्रिक चिन्तन-मनन में चंद बातें और जुड़ें – यही इस पुस्तक का विनम्र प्रयास है। हमें पूरी उम्मीद है कि किताब को इसी जज़्बे से देखा-पढ़ा जाएगा और यह पुस्तक सिर्फ छात्रों के लिए ही नहीं बल्कि देश के अन्य नौज़वान नागरिकों के लिए भी उपयोगी साबित होगी।

उज्ज्वल कुमार सिंह
सलाहकार

सुहास पळशीकर और योगेन्द्र यादव
मुख्य सलाहकार

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27

पढ़ने समझने के लिए कुछ और सामग्री...

अचिन विनायक. 1990. द *पेनफुल ट्रांजिशन: बुर्जुआ'जी डेमोक्रेसी इन इंडिया.* वरसो. लंदन और न्यूयार्क

नीरजा गोपाल जयाल (संपा.). 2001. *डेमोक्रेसी इन इंडिया.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

पार्थ चटर्जी (संपा.). 1997. *स्टेट एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

प्रताप भानु मेहता. 2003. द बर्डेन ऑफ़ डेमोक्रेसी, पेंग्विन बुक्स, दिल्ली

पॉल आर. ब्रास. 1994 (द्वितीय संस्करण). द *पॉलिटिक्स ऑफ़ इंडिया सिंस इंडिपेंडेंस.* कैंब्रिज़ यूनिवर्सिटी प्रेस (भारत में फांउडेशन बुक्स, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित)

बिपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी और आदित्य मुखर्जी. 2000. *इंडिया ऑफ्टर इंडिपेंडेंस (1947-2000).* पेंग्विन बुक्स, दिल्ली

रजनी कोठारी. 1950. *पॉलिटिक्स इन इंडिया.* ओरिएंट लाँगमैन, दिल्ली

रामचंद्र गुहा, 2007. इंडिया ऑफ्टर गाँधी: *हिस्ट्री ऑफ़ द वर्ल्ड्स् लार्जेस्ट डेमोक्रेसी.* पैन मैकमिलन, पिकाडोर, इंडिया, दिल्ली

सुदीप्त कविराज (संपा.). 1997. *पॉलिटिक्स इन इंडिया.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

सुनील खिलनानी. 2003. द *आइडिया ऑफ़ इंडिया.* पेंग्विन, लंदन

ग्रेनविल ऑस्टिन. 1999 *वर्कइंग ए डेमोक्रेटिक कान्सटीट्यूशन.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

फ्रेंकिन आर. फ्रेंकल. 2005. *इंडियाॅज़ पोलिटीकल इकोनॉमी* (1947-2004). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

अभय कुमार दुबे (संपा). 2002. *लोकतंत्र के सात अध्याय,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

अभय कुमार दुबे (संपा). 2002. *आधुनिकता के आइने में दलित,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

अभय कुमार दुबे (संपा). 2003. *राजनीति की किताब,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

अभय कुमार दुबे (संपा). 2005. *बीच बहस में सेक्युलरवाद,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

अभय कुमार दुबे. 2003. *भारत का भूमण्डलीकरण,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

आशीष नंदी. 2005. *राष्ट्रवाद बनाम देशभक्ति,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

आशीष नंदी. 2005. *राष्ट्रवाद का अयोध्याकाण्ड,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

पवन कुमार वर्मा. *मध्यवर्ग की अजीब दास्तान,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली

मधु किश्वर. 2005. *राष्ट्रवाद की चाकरी में धर्म,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान सलाहकार समिति

हरि वासुदेवन, *प्रोफ़ेसर,* इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

मुख्य सलाहकार

सुहास पळशीकर, *प्रोफ़ेसर,* राजनीति एवं लोक प्रशासन विभाग, पुणे विश्वविद्यालय, पुणे

योगेंद्र यादव, *सीनियर फेलो,* विकासशील समाज अध्ययन पीठ, दिल्ली

सलाहकार

उज्ज्वल कुमार सिंह, *रीडर,* राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सदस्य

आदित्य निगम, *फेलो,* विकासशील समाज अध्ययन पीठ, दिल्ली

अखिल रंजन दत्त, *लेक्चरर* (राजनीति विज्ञान) गुवाहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी

एलेक्स जॉर्ज, *स्वतंत्र अनुसंधानकर्ता,* इरूवट्टी, केरल

अनुराधा सेन, *पूर्व प्रिंसिपल,* द सृजन स्कूल, नयी दिल्ली

भरणी दीक्षित, *फैकल्टी,* इंटरनेशनल एकेडमी ऑफ़ क्रिएटिव टीचिंग, बंगलोर

द्वैपायन भट्टाचार्य, *फेलो,* सीएसएसएस, कोलकाता।

कैलाश के. के., *लेक्चरर* (राजनीति विज्ञान), पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

एम. मनीषा, *सीनियर लेक्चरर* (राजनीति विज्ञान), लॉरेटो कॉलेज, कोलकाता

मंजरी काटजू, *रीडर* (राजनीति विज्ञान), हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

पंकज पुष्कर, *सीनियर लेक्चरर* (राजनीति विज्ञान), विकासशील समाज अध्ययन पीठ, दिल्ली

मल्ला वी.एस.वी. प्रसाद, *लेक्चरर* (राजनीति विज्ञान), सा.वि.मा.शि.वि., राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली

राजेश्वरी देशपांडे, *रीडर* (राजनीति विज्ञान), पुणे विश्वविद्यालय, पुणे

सजल नाग, *प्रोफ़ेसर* (इतिहास), असम विश्वविद्यालय, सिलचर

संदीप शास्त्री, *निदेशक,* इंटरनेशनल एकेडमी ऑफ़ क्रिएटिव टीचिंग, बंगलोर

शैलेन्द्र खरत, *लेक्चरर* (राजनीति विज्ञान), शिंडे सरकार कॉलेज, कोल्हापुर, महाराष्ट्र

श्रीलेखा मुखर्जी, *पी.जी.टी.,* सेंट पॉल स्कूल, नयी दिल्ली

हिंदी अनुवाद

चंदन कुमार श्रीवास्तव, *स्वतंत्र अनुसंधानकर्ता,* नयी दिल्ली
नरेश गोस्वामी, *स्वतंत्र अनुसंधानकर्ता,* नयी दिल्ली
मेधा, *स्वतंत्र पत्रकार एवं अनुसंधानकर्ता,* नयी दिल्ली
पंकज पुष्कर, *लोकनीति,* विकासशील समाज अध्ययन पीठ, दिल्ली

सदस्य-समन्वयक

संजय दुबे, *रीडर,* सा.वि.मा.शि.वि., राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली

© NCERT not to be republished

© NCERT not to be republished

अपनी राय ज़रूर दें

आपको यह किताब कैसी लगी? इसे पढ़ने या इसका प्रयोग करने का आपका अनुभव कैसा रहा? आपको इसमें क्या-क्या परेशानियाँ हुईं? पुस्तक के अगले संस्करण में आप इसमें क्या-क्या बदलाव चाहेंगे? इन सबके बारे में या किसी भी नए सुझाव के संबंध में हमें अवश्य लिखें। आप अध्यापक हों, अभिभावक हों, छात्र हों या सामान्य पाठक, हर कोई सलाह दे सकता है। किताबों में बदलाव की प्रक्रिया में आपके सुझाव अमूल्य हैं। हम हर सुझाव का सम्मान करते हैं।

कृपया हमें इस पते पर लिखें

समन्वयक (राजनीति विज्ञान)
सामाजिक विज्ञान शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली–110 016

आभार

इस पुस्तक में इस्तेमाल किए गए विभिन्न डाक-टिकट, कार्टून, अख़बार की कतरन, तस्वीर तथा पाठांशों के लिए हम निम्नलिखित के आभारी हैं:

डाक-टिकट

इस पुस्तक में इस्तेमाल किए गए समस्त डाक-टिकटों के लिए डाक और तार विभाग (भारत सरकार) के द नेशनल फिलाटेली ब्यूरो के हम आभारी हैं।

कार्टून

पृष्ठ 60, 61, 72, 75, 83, 88, 95, 98, 104, 107, 109, 117, 133 और 138 पर अंकित आर.के. लक्ष्मण कृत कार्टून के लिए शंकर नारायणन और टाइम्स ऑफ इंडिया का; पृष्ठ 21, 22, 26, 28 और 40 पर अंकित शंकर कृत कार्टून के लिए चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट का; पृष्ठ 80, 85 और 88 पर अंकित कुट्टी कृत कार्टून के लिए लाफिंग विद कुट्टी, फ्री प्रेस का; पृष्ठ 50 पर अंकित कार्टून के लिए सुधीर दर, सुधीर तैलंग और यूएनडीपी तथा प्लानिंग कमीशन का; पृष्ठ 93 पर अंकित अबु कृत कार्टून के लिए जानकी अब्राहम का; 107 पर अंकित अतनु राय कृत कार्टून के लिए इंडिया टुडे का; 136 और 142 पर अंकित कार्टून के लिए अजीत नैनन का; पृष्ठ 130 पर अंकित रामबाबू माथुर कृत कार्टून और पृष्ठ 140 पर अंकित सुधीर तैलंग कृत कार्टून के लिए एचटी बुक्स ऑफ कार्टून का हम आभार व्यक्त करते हैं।

तस्वीर

पृष्ठ 2 और 13 पर अंकित तस्वीर के लिए सुनील जना का; पृष्ठ 7, 33 और 116 पर अंकित तस्वीर के लिए 'द हिन्दू' का; डीपीए/पीआईबी का पृष्ठ 9 और 17 पर अंकित कार्टून के लिए; पृष्ठ 47 और 105 कवर पृष्ठ पर अंकित कोलॉज के लिए हिन्दुस्तान टाइम्स का; पृष्ठ 3, 10 और 54 पर अंकित तस्वीर के लिए नेहरू मेमोरियल म्यूज़ियम एंड लाइब्रेरी का; पृष्ठ 6, 7, 41 और 59 पर अंकित होमी वेयरवाला की तस्वीरों के लिए सबीना गडीहोक का; पृष्ठ 76 और 130 पर अंकित तस्वीर के लिए रघु राय का, तथा बैककवर पर अंकित तस्वीर के लिए आऊटलुक क्लासिक और www.thesouthasian.org का हम आभार व्यक्त करते हैं।

अखबार की कतरन

पृष्ठ 4, 49, 59, 65, 67, 73, 85, 100, 118, 130 और 145 पर अंकित कतरनों (सभी 'हिस्ट्री इन द मेकिंग: 75 ईयर्स ऑफ द हिन्दुस्तान टाइम्स' से) के लिए 'द हिन्दुस्तान टाइम्स का; पृष्ठ 7, 65, 67, 99, 117, 120, 124, 125, 128 और 133 पर अंकित कतरनों के लिए टाइम्स ऑफ इंडिया का; पृष्ठ 32 और 33 पर अंकित कतरन तथा पृष्ठ 45 पर अंकित ख़बर के लिए 'द हिन्दू' का; पृष्ठ 33, 61, 92, 99, 100, 123, 130 और 145 पर अंकित कतरन के लिए नई दुनिया का हम आभार व्यक्त करते हैं।

© NCERT not to be republished

पोस्टर/विज्ञापन

पृष्ठ 61, 81, 100, 112, 130, 137, 138 और 139 पर अंकित 'अमूल' के विज्ञापन के लिए जीसीएम एमएफ इंडिया का; पृष्ठ 112 पर अंकित पोस्टर के लिए उत्तरांखड सांस्कृतिक मोर्चा का हम आभार व्यक्त करते हैं।

पाठांश, रिपोर्ट-अंश और पुस्तक

पृष्ठ 153, 179, 172, 417, 501 और 496 पर अंकित उद्धरण के लिए पहले आम चुनाव से संबंधित पीठासीन पदाधिकारी के कथ्य, इस चुनाव से संबद्ध अखबार और पत्रिकाओं के पाठांश तथा 'द गार्जियन' के अंश के लिए पैन मैक्मिलन एंड पिकाडोर इंडिया (2007) से प्रकाशित रामचंद्र गुहा कृत 'इंडिया आफ्टर गाँधी का; फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ की कविता 'सुबह-ए-आज़ादी' के लिए राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित 'प्रतिनिधि कविताएँ' (1991) का; अमृता प्रीतम की कविता के लिए भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित 'प्रतिनिधि संकलन (1994) का; सआदत हसन मंटो की लघुकथा के लिए राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित मंटो की समग्र रचनावली का; फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'मैला आँचल' और श्रीलाल शुक्ल कृत 'राग दरबारी' के अंश के लिए राजकमल प्रकाशन का; नामदेव ढ़साल की मराठी कविता के अंग्रेजी अनुवाद [अनुवाद-जयंत कर्वे एवं एलनोर ज़ेलिएट; मुल्क राज आनंद और एलनोर जेलिएट (संपादित); एन एंथोलॉजी ऑफ दलित लिटरेचर; नई दिल्ली, ज्ञान बुक्स, 1992] को हिन्दी में रूपान्तरित करने के लिए चंदन श्रीवास्तव का; रजनी कोठारी कृत 'पॉलिटिक्स इन इंडिया' के अंश के लिए ओरियंट एंड लॉन्गमैन (तीसरा संस्करण, दिल्ली) का; पार्थो चटर्जी द्वारा संपादित 'स्टेट एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया' से उद्धत रजनी कोठारी (पृ-446) तथा डेविड बटलर, अशोक लाहिड़ी, प्रणव रॉय (पृ-448) अंश के लिए ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली का हम आभार व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार सूचना प्रसारण मंत्रालय (भारत सरकार) के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित 'जवाहर लाल नेहरू 'स्पीचेज' सितंबर 1957-अप्रैल 1961, खंड-4 का; फ्रैंकिन आर. फ्रैंकल कृत 'इंडिया पॉलिटिकल इकॉनामी (1947-2004) के अंश के लिए ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस का; जोया हसन कृत पार्टीज् एंड पार्टी पॉलिटिक्स इन इंडिया' (पृ-33-34) के अंश के लिए ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2004) दिल्ली का; ए.एम. शाह द्वारा संपादित 'द ग्रासरूट ऑफ डेमोक्रेसी' में संक. लित आनंद चक्रवर्ती कृत 'अ विलेज इन चोमू असेंबली कांस्टीट्यूएन्सी इन राजस्थान' के अंश के लिए परमानेन्ट ब्लैक, दिल्ली (2007) का हम आभार व्यक्त करते हैं। न्यायमूर्ति नानावती जाँच आयोग की रिपोर्ट, खंड-1, 2005, पृष्ठ 180; राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग; वार्षिक रिपोर्ट, 2001-2002, पृष्ठ-317-318 और शाह आयोग, अंतरिम रिपोर्ट 96-101, 120-139 के हम आभारी हैं।

परिषद्, इस संस्करण के पुनर्संयोजन के लिए पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों एवं विषय सामग्री के विश्लेषण हेतु दिए गए महत्वपूर्ण सहयोग के लिए कविता जैन, *पी.जी.टी.*, राजनीति विज्ञान, अशोक विहार, फ़ेज I, दिल्ली; मनीषा पांडेय, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, राजनीति विज्ञान विभाग, हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय; शंकर शरण, *प्रोफ़ेसर*, डी.ई.एस.एस., एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली; वांथांगपुई खोबंग, *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, डी.ई.एस.एस., एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली; सुनिता कथूरिया, *पी.जी.टी.*, राजनीति विज्ञान, एम.सी.एल., सरस्वती बाल मंदिर, एल ब्लॉक, हरिनगर, नयी दिल्ली के प्रति आभार व्यक्त करती है।

© NCERT not to be republished

विषय सूची

आमुख *iii*
पाठ्यपुस्तकों में पाठ्य सामग्री का पुनर्संयोजन *v*
पाठकों के नाम एक पत्र *vii*

अध्याय 1
राष्ट्र-निर्माण की चुनौतियाँ 2

अध्याय 2
एक दल के प्रभुत्व का दौर 26

अध्याय 3
नियोजित विकास की राजनीति 44

अध्याय 4
भारत के विदेश संबंध 54

अध्याय 5
कांग्रेस प्रणाली : चुनौतियाँ और पुनर्स्थापना 72

अध्याय 6
लोकतांत्रिक व्यवस्था का संकट 92

अध्याय 7
क्षेत्रीय आकांक्षाएँ 112

अध्याय 8
भारतीय राजनीति : नए बदलाव 136

© NCERT not to be republished

Reprint 2026-27